ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला——हिन्दी ग्रन्थाङ्क ४२

शरत्के नारी पात्र

शरत्के नारी पात्रोंका उनकी रचनाओंकी समयानुक्रमणिकाके आधारपर आलोचनात्मक अध्ययन

श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

प्रथम संस्करण
१९५५ ई०
मूल्य [illegible] रुपये
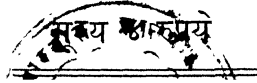
मुद्रक
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस, बनारस
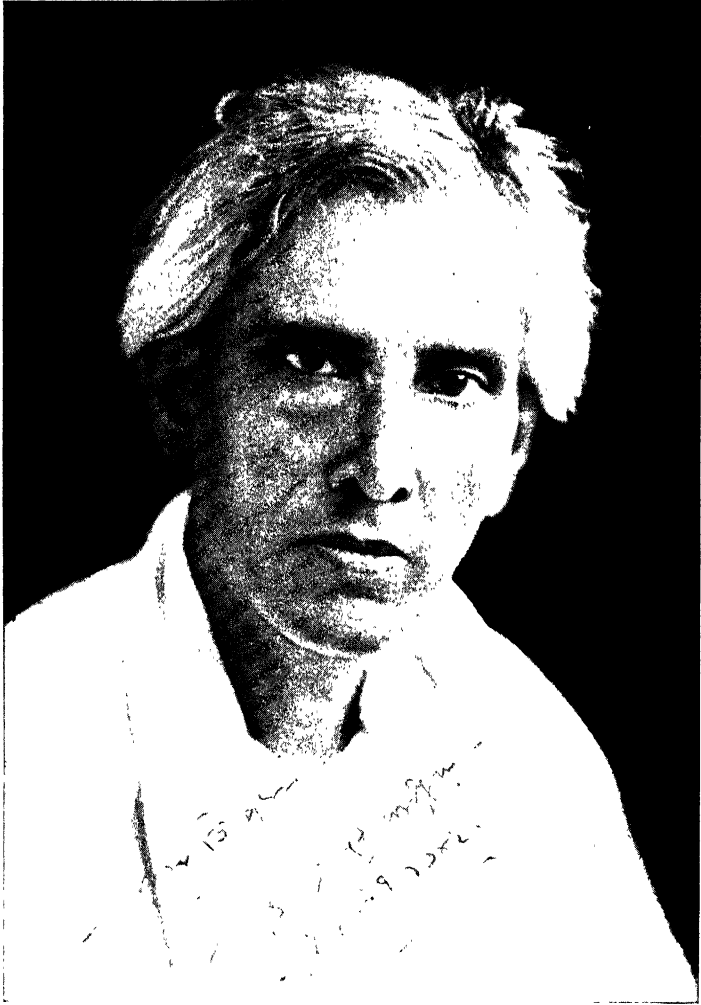
श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

'सुसभ्य मनुष्यकी स्वस्थ, संयत तथा शुभ बुद्धि नारी जातिको जो अधिकार अर्पित करनेके लिए कहती है, वही मनुष्यकी सामाजिक नीति है और उसीसे समाजका कल्याण होता है। समाजका कल्याण इस बातसे नहीं होता कि किसी जातिकी धर्म-पुस्तकमें क्या लिखा है और क्या नहीं लिखा है। नारीके मूल्यका विवेचन करते हुए हम अब तक इसी नीति और इसी अधिकारकी बात कहते आये हैं। हमने supply और demand अर्थात् उपज और माँगकी क़ीमत भी नहीं कही और यह आशा भी नहीं की कि कोई ऐसा समय आवेगा, जब कि पुरुषोंकी संख्या बहुत बढ़ जायगी और स्त्रियाँ बिलकुल विरल हो जायेंगी। नारीका मूल्य निर्भर करता है पुरुषके स्नेह, सहानुभूति और न्याय-धर्म पर। भगवान्ने उसे दुर्बल ही बनाया है और पुरुष उसके बलके इस अभावकी पूर्ति ऊपर बतलाई हुई वृत्तियोंकी ओर देखकर ही कर सकता है, धर्म-पुस्तकोंकी बातोंकी बालकी खाल निकालकर और उनके अबोध्य अर्थोंकी सहायतासे उसकी पूर्ति नहीं कर सकता।'

'नारी का मूल्य' —शरच्चंद्र चट्टोपाध्याय :

कृतज्ञता-ज्ञापन

लेखक उन अनुवादकोंके प्रति आभार प्रदर्शित करता है, जिनके शरत्-साहित्यके रूपांतरोंका प्रस्तुत ग्रंथमें उपयोग किया गया है।

लेखक श्रद्धेय वाचस्पतिजी पाठक तथा कलाभवन, काशीके अध्यक्ष श्री रायकृष्णदासका भी आभारी है जिनके सौजन्यसे शरत्का चित्र इस पुस्तकमें दिया जा सका है।

जिससे बँगला-साहित्यके अध्ययनकी प्रेरणा मिली

तथा

शरच्चंद्रके उन सभी वास्तविक-अवास्तविक चरित्रोंको

जिन्होंने जीवनके मर्मको

अधिकाधिक समझ सकनेके प्रयत्नमें

सहयोग दिया है।

●

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक मेरे शरत्के नारी पात्रोंपर तीन वर्षके लंबे व्यवधानमें समय-समयपर लिखे हुए क्रमागत निबंधोंका संकलन है, जिनमें-से अधिकांश धारावाहिक रूपसे मासिक 'सुमित्रा'में प्रकाशित हुए थे। स्वतंत्र रूपसे लिखे जानेपर भी ये निबंध एक निश्चित योजनाके अंतर्गत हैं, और पुस्तकाकारमें प्रकाशित होते समय इनमें कुछ सामग्री बढ़ाई गई है। पूरे ग्रंथकी योजना जुलाई १९५१ ई० में बनी थी, और इसकी समाप्ति दिसंबर १९५४ ई० में हुई। समयानुक्रमणिकाके आधारपर शरच्चंद्रके नारी पात्रोंका यह प्रथम विस्तृत तथा वैज्ञानिक अध्ययन है। सच तो यह है कि इस प्रकारके अध्ययन अभी हिंदीमें थीसिसके रूपोंके अतिरिक्त साधारणतः देखनेमें नहीं आते। हिंदी-आलोचनाके क्षेत्रमें इस दृष्टिकोणसे इसे अपने ढंगका प्रथम प्रयास कहा जा सकता है।

विश्व-कथा-साहित्यमें शरच्चंद्रके नारी-चरित्रोंका अपना विशिष्ट स्थान है। नारी-जीवनके विभिन्न तथा विरोधी पहलुओंने उनके उपन्यासों तथा कहानियोंमें अत्यंत मार्मिक अभिव्यक्ति पाई है। बंगालके नारीसमाजकी मुक्तिमें शरच्चंद्रका कितना अधिक हाथ रहा है, इसे वहाँके सामाजिक इतिहासकार आनेवाले वर्षोंमें भली भाँति पहिचान सकेंगे। भारतीय नारीकी दुरवस्था शरत्की कलाकी मूल प्रेरक शक्ति रही होगी, ऐसा मानना बहुत असंगत नहीं कहा जा सकता। उपन्यासकारका प्रसिद्ध निबंध 'नारीर मूल्य' मानो उनकी कलाका 'मेनीफेस्टो' है। तत्कालीन नारी-जीवनकी दुर्दशाका विवेचन तथा समाधान उन्होंने अपने इस विस्तृत निबंधमें प्रस्तुत किया था, और इसीका कलात्मक निरूपण उन्होंने अपने कथा-साहित्यमें किया है। बंगालकी नारीकी अपरिसीम वेदना उनकी रचनाओंमें उमड़ पड़ी है। शरच्चंद्रकी आत्मा मूलतः एक कलाकारकी आत्मा है, परंतु मानव-जीवनकी

गहरी सहानुभूतियों तथा समस्याओंने उनकी कलाको एकांगी नहीं बनने दिया है। कला और उद्देश्य उनकी कृतियोंमें इतने घुले-मिले दिखाई देते हैं कि उन्हें अलग-अलग करके नहीं पहिचाना जा सकता।

अपनी इस पुस्तकके द्वारा मैंने शरच्चंद्रके नारी-समाजकी एक विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत करनेका यत्न किया है। शरत्के सभी उपन्यासों तथा कहानियोंके नारी-चरित्रोंका इसमें विश्लेषण किया गया है; केवल उनकी अपूर्ण कृतियोंको इस समीक्षामें सम्मिलित नहीं किया गया है। पुस्तकमें न केवल उपन्यासकारके नारी पात्रोंका स्वतंत्र विश्लेषण किया गया है; वरन् उसकी नारी संबंधी साधारण विचार-भूमिका भी विवेचन हुआ है। साथ ही समीक्षाका क्रम शरत्की रचनाओंकी समयानुक्रमणिकापर आधारित होने के कारण, इससे उनकी नारी-संबंधी विचार-धाराके स्वाभाविक विकासको भी समझा जा सकता है। पुस्तकके अंतमें तीन परिशिष्ट जोड़कर विवेचनको यथासाध्य अपनेमें पूर्ण बनानेका प्रयत्न किया गया है।

एक बात इस पुस्तकमें अपनाई गई समीक्षा-शैलीके संबंधमें भी कहना चाहूँगा। इस अध्ययनमें शरत्के नारी पात्रोंका यथातथ्य एवं वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। उन पात्रोंके मूल्यांकनकी विशेष चेष्टा नहीं की गई है। इसीलिए इस विवेचनमें पाठकको विवादग्रस्त विषय अधिक नहीं मिल सकेंगे। इससे संभव है कि शरत्के नारी पात्रोंका यह विश्लेषण कुछ रूखा तथा इतिवृत्तात्मक अधिक हो गया हो, परंतु वैज्ञानिक आलोचना-प्रणालीमें यह एक दोष नहीं, वरन् गुणके ही रूपमें माना जाता है। हाँ, शरत्के इतने रसमय चरित्र-चित्रणका इतने इतिवृत्तात्मक ढंगसे विश्लेषण करनेमें कभी-कभी मैंने स्वयं असंतोषका अनुभव किया है। पाठक तथा आलोचकका यह संघर्ष मेरे मनमें एकसे अधिक बार हुआ है।

अत्यंत परिश्रमपूर्वक लिखी जानेपर भी पुस्तकके दोषोंके प्रति लेखकसे अधिक जागरूक और कोई व्यक्ति नहीं होगा। लेखकके अबंगाली होनेके कारण यदि विषय-विवेचनमें एक ओर संतुलन आ सकता है तो उसके साथ ही साथ दूसरी ओर उसमें कुछ भूलोंका हो जाना भी बहुत असंभव नहीं है।

अंतमें अपने मित्रों तथा सहयोगियोंके प्रति आभार-प्रदर्शनका प्रिय कर्तव्य मेरे निकट शेष रह जाता है। पुस्तककी प्रारंभिक योजना बनाते समय श्रीमती सुजाता गुहा तथा पुष्पा मित्राने जो सहायता दी थी उसके बिना लेखनका कार्य आगे ही नहीं बढ़ सकता था। श्री विट्ठल शर्मा ने मेरे प्रारंभिक प्रयत्नोंको सफल बताकर आगे बढ़नेके लिए प्रोत्साहन दिया था। डॉ० रघुवंश तथा डॉ० धर्मवीर भारतीके स्नेह तथा सत्परामर्शने मेरे शरत्-संबंधी विवेचनको कितना अधिक स्पष्ट बनाया है, इसका अनुमान मैं स्वयं नहीं कर पाता। श्रद्धेय इलाचंद्र जोशीजीने समय-समयपर विषय-संबंधी अनेक कठिनाइयोंको सुलझानेमें सहायता दी है। पुस्तकको प्रकाशनके लिए तैयार करवानेका अधिकांश श्रेय श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदीको है। इस प्रसंगमें भारतीय ज्ञानपीठ, काशीके लोकोदय ग्रंथमालाके संपादक श्री लक्ष्मीचंद्र जैन तथा मंत्री श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीयके सहयोगका उल्लेख होना आवश्यक है, जिसके अभावमें पुस्तक प्रेस तक कठिनाईसे ही पहुँच पाती। अंतमें मैं अपने सहयोगी डॉ० जगदीश गुप्तका सस्नेह स्मरण करता हूँ, जिन्होंने पुस्तककी सज्जाके संबंधमें अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। लेखक अपने इन सभी मित्रों तथा गुरुजनोंके प्रति हृदयसे कृतज्ञता व्यक्त करता है।

प्रयाग: १५ मार्च १९५५] —**रामस्वरूप चतुर्वेदी**

शरत्का संक्षिप्त जीवन-वृत्त

शरच्चंद्र चट्टोपाध्यायका जन्म अपने पिता मतिलाल चट्टोपाध्यायकी ननिहाल हुगली ज़िलाके अंतर्गत देवानन्दपुर नामक गाँवमें १५ सितंबर १८७६ ई०को हुआ था। उनका बाल्यकाल देवानन्दपुरमें तथा कैशोर्य भागलपुरमें व्यतीत हुआ। भागलपुरमें छात्रवृत्ति पाकर शरत्ने टी० एन० जुबिली कालेजिएट स्कूलमें प्रवेश किया। १८९३ ई० में हुगली स्कूलके विद्यार्थी रहनेके समय उनकी साहित्य-साधनाका सूत्रपात हुआ। १८९४ ई० में शरत्ने एन्ट्रेन्स परीक्षा द्वितीय श्रेणीमें पास की। इसी समय भागल-पुरकी साहित्य-सभाकी उन्होंने स्थापना की। सभाका मुखपत्र हस्तलिखित मासिकपत्र 'छाया' था। १८९६ ई० से लेकर १८९९ ई० तकका समय इधर-उधर साहित्य-चर्चामें व्यतीत हुआ। कॉलेजका अध्ययन इसके पूर्व ही समाप्त हो चुका था। इसी समयमें शरत्ने बनेली इस्टेटमें नौकरी कर ली थी। १९०० ई० में वे संन्यासीके वेषमें निरुद्देश्य देश-भ्रमण के लिए निकल पड़े। पिताकी मृत्युके उपरांत १९०२ ई० में वे अपने मामा लालमोहन गंगोपाध्यायके पास कलकत्ते आ पहुँचे। १९०३ ई०की जनवरीमें बर्मा-यात्रा की। इसी वर्ष 'कुंतलीन पुरस्कार १३०९ सन्' शीर्षक पुस्तकमें मामा सुरेन्द्रनाथके नामसे 'मंदिर' कहानी प्रकाशित हुई। १९०७ ई०में 'भारती'में 'बड़दिदि' उपन्यास छपा। मासिक पत्रोंमें प्रकाशित उपन्यास-कारकी यह प्रथम रचना है। १९१३ ई०में 'बड़ दिदि' पुस्तकाकार मुद्रित हुआ। यह शरत्की प्रथम मुद्रित पुस्तक है। १९१५ ई०में लेखकका 'यमुना' पत्रिकासे संबंध-विच्छेद हुआ, और इसके उपरांत वे नियमित रूपसे 'भारतवर्ष'में लिखने लगे। स्वास्थ्य ठीक न रहनेके कारण १९१६ ई० में शरत् बर्मा छोड़ आये और वाजे-शिवपुरमें रहने लगे। १९२१ ई०में उन्होंने कांग्रेसके आंदोलनमें योग दिया। १९२२ ई०में आक्सफोर्ड यूनि-

र्सिटी प्रेससे 'श्रीकान्त' (प्रथम पर्व) का अंग्रेजी रूपांतर प्रकाशित हुआ। इसके बादसे शरत्‌के यशमें उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। अनेक सभाओं तथा संस्थाओंके वे अध्यक्ष तथा मान्य सदस्य बनाये जाने लगे। १९३६ ई० में ढाका विश्वविद्यालयने उन्हें आनरेरी डी० लिट्०की उपाधि प्रदान की। अपने जीवनके उत्तर कालमें शरत् रवीन्द्रनाथके भी स्नेह तथा प्रशंसाके भागी रहे। १६ जनवरी १९३८ ई० को कलकत्ता पार्क नर्सिंग होममें ६२ वर्षकी अवस्थामें शरच्चंद्रकी मृत्यु हुई।

●

इस संक्षिप्त जीवन-वृत्तके लिए सामग्री श्री व्रजेन्द्रनाथ बंद्योपाध्याय-की पुस्तक 'शरत्-परिचय'से ली गई है।

विषय-सूची

१. बड़ी बहिन [बड़ दिदि] १९
२. सुमति [रामेर सुमति] २४
३. चन्द्रनाथ २९
४. बिन्दोका लल्ला [बिंदुर छेले] ३५
५. विराज बहू [विराज बौउ] ४२
६. परिणीता ५१
७. चरित्रहीन ५८
८. पण्डितजी [पण्डित मॉशाई] ७६
९. मँझली बहिन [मेजदिदि] ८४
१०. ग्रामीण समाज [पल्ली-समाज] ९१
११. अरक्षणीया ९७
१२. श्रीकान्त [श्री कान्तेर भ्रमण काहिनी] १०७
१३. देवदास १२९
१४. दत्ता १४१
१५. गृह-दाह १५१
१६. ब्राह्मणकी बेटी [बामुनेर मेये] १६९
१७. लेन-देन [देना-पाउना] १८३
१८. पथके दावेदार [पथेर दावी] १९५
१९. नव-विधान २१७
२०. शेष प्रश्न २३३
२१ विप्रदास २८३

परिशिष्ट

शरत्‌के नारी पात्र : सामान्य प्रवृत्तियाँ	३००
शरत्‌के अपेक्षाकृत गौण नारी पात्र	३०९
शरत्‌के नारीपात्रोंकी सामाजिक पृष्ठभूमि	३३१
समयानुक्रमणिका	३३७
सहायक ग्रंथोंकी संक्षिप्त सूची	३३९
अनुक्रमणिका	३४५

शरत्के नारी पात्र

बड़ी बहिन

[बड़ दिदि]

●

शरत्की 'बड़ी बहिन' का प्रकाशन बँगला-साहित्यमें एक घटना है। जिस कथावस्तुको लेकर यह उपन्यास चलता है, उसका तत्कालीन बंग-समाजने तीव्र विरोध किया, और उसके अज्ञात लेखकको बड़े ही आड़े हाथों लिया गया। इस तीखे विरोधका एकमात्र कारण यह था कि 'बड़ी बहिन'में एक विधवा नारीके हृदयमें फिरसे रागात्मिका वृत्तिका प्रादुर्भाव दिखाया गया है। परंतु महान् कलाकार तो सदैव ही अपने समयके सबसे बड़े विद्रोही हुआ करते हैं। शरत्ने अपनी आँखों देखा था कि केवल मात्र एक श्वेत साड़ीके पहिना देनेसे ही एक विधवा नारीकी वासना एवं उसके हृदयकी रंगीनियाँ शांत नहीं हो जातीं। वे सूक्ष्म मानव-जीवनके अंतर्द्रष्टा थे। उन्होंने नारीके अंतःकरणमें पैठकर देख लिया था कि वहां सदैव ही असीम स्नेहका सतत स्रोत वर्त्तमान है, जो सरस्वतीकी भांति गुप्त रहनेपर भी यथावसर प्रकट हुए बिना नहीं रहता।

और फिर 'बड़ी बहिन'का कथानक ऐसा विशेष आघात पहुँचानेवाला भी नहीं है। एक धनी पिताका एकमात्र पुत्र सुरेन्द्र अपने घरसे रूठकर कलकत्ते चला जाता है। वह शिशुके समान सरल एवं निरीह तथा परले सिरेका लापरवाह है। वहाँ वह एक ज़मींदारकी छोटी पुत्रीके शिक्षकके रूपमें रहने लगता है। ज़मींदारकी बड़ी लड़की माधवी (बड़ी बहिन), जो बाल-विधवा है, घरका सारा प्रबंध करती है। उसकी ममताका एक भाग सुरेन्द्रको भी मिलता है। एक दिन जब वह अचानक ही ज़मींदार-का घर छोड़कर चल देता है तो उसे तथा माधवी दोनोंको ही ज्ञात होता

है कि वे परस्पर एक दूसरेके स्नेहमें कितने बँधे हुए थे। माधवी अपना पितृ-गृह छोड़कर अपनी निर्धन ससुरालमें चली जाती है, जहाँ सुरेन्द्रका मैनेजर उसकी सारी जायदाद कुर्क करा लेता है। अपनी मृत्यु-शय्यापर सुरेन्द्र एक बार फिर माधवीसे मिलता है और मरनेके पहले उससे कह जाता है, 'बड़ी बहन, उस दिनकी बात याद है, जिस दिन तुमने मुझे निकाल दिया था ? मैंने इसीलिए अब तुमसे बदला लिया है। तुम्हें भी निकाल दिया। क्यों, बदला चुक गया न ?"

माधवीका हृदय प्रारंभसे लेकर अंत तक, हमें अगाध स्नेहसे भरा हुआ दिखाई देता है। शरत्के अनुसार नारी और स्नेह एक दूसरेके पर्यायसे जान पड़ते हैं। माधवीके वैधव्यने उसे और भी कोमल तथा सजल बना दिया है। उसकी ममताका आधार ही सुरेन्द्रको उसके आगामी वर्षोंमें प्रेरणा देता है। वह उसके नाम तकका सम्मान करने लग जाता है, परंतु माधवीका यह स्नेह असहाय है और इसीलिए 'बड़ी बहिन'का अंत हम दुःखद पाते हैं। कुछ भी हो, स्नेह और ममतासे नारीका निर्माण हुआ है, शरत्का यह अटूट विश्वास हमें उनकी प्रथम कृतिमें ही देखनेको मिल जाता है।

माधवी विधवा नहीं, बाल-विधवा है, किंतु उसके पितृ-गृहके पारिवारिक स्नेहने उसके यौवनके उद्दाम वेगको दबा-सा रखा है। वस्तुतः स्नेह और ममता ये ही वे दो तत्त्व हैं, जिनके सहारे मांसका प्रबल विद्रोह शांत किया जा सकता है। जबतक माधवीके पति जीवित थे, तबतक उसका सर्वस्व उन्हींपर केन्द्रीभूत था, किंतु मरते समय वे स्वयं ही कह गये थे, "माधवी, जो जीवन तुम मेरे सुखके लिए समर्पित करतीं, वही जीवन अब सबके सुखके लिए समर्पण करना। जिसका मुख कष्टपूर्ण और उदास देखना, उसीका मुख प्रफुल्लित करनेकी चेष्टा करना" और इसीलिए अब माधवीका स्नेह सबके लिए समान है। अपने रूपके प्रति वह जागरूक नहीं; अपने यौवनके प्रति वह उदासीन है। लेकिन फिर भी "अब स्वामी नहीं हैं, इसलिए उसने फूलोंके सब पेड़ कटवा नहीं डाले हैं। अब भी उसमें उसीप्रकार फूल

खिलते हैं, लेकिन वे ज़मीनपर गिरकर मुरझा जाते हैं। अब वह उन फूलोंकी माला पिरोने नहीं बैठती, लेकिन फिर भी उन सबको एकत्र करके और उन्हें अँजुलीमें भर-भर दीन-दुखियोंमें बाँट देती है। जिनके पास नहीं है, उन्हींको देती है।" वस्तुतः माधवीका यह रूप जितना करुणापूर्ण है, उतना ही श्रद्धास्पद भी। उसकी दशा उस मलय-चंदनके समान हो गई है जो किसी देवताके मस्तकपर न चढ़कर पवनकी प्रेरणासे समस्त वनको सुगंधिसें आप्लावित करता फिरता है; अब उसकी सत्ता एकांतिक न होकर सार्वजनीन है।

परंतु इतना सब होनेपर भी नारीकी अवचेतनामें छिपी हुई किसी व्यक्तिविशेषको अपनानेकी प्रवृत्ति जाग ही उठती है। "इस जीवनमें कितनी साध और कितनी आकांक्षाएँ होती हैं! विधवा होने पर वे सब कहीं चली नहीं जातीं!" इसी तथ्यको अत्यंत मनोवैज्ञानिक ढंगसे शरत्‌ने 'बड़ी बहिन'में प्रतिपादित किया है। अनजाने ही में माधवी सुरेन्द्रकी ओर आकर्षित होती चली जाती है, परंतु सुरेन्द्रका स्नेह तो एकदम बालकों जैसा है—निर्मल तथा विकारहीन, उसका 'वृद्धोंका-सा वैराग्य, बालकोंकी-सी सरलता और पागलोंकी-सी उपेक्षा माधवीके समर्पणको पहिचाननेमें असमर्थ है।' यह एक अनोखा व्यंग है कि माधवी भी अपने समर्पणको तभी जान पाती है, जब कि सुरेन्द्र वापिस अपने घर चला जाता है।

यहाँ पर एक बात ध्यान देने योग्य है और वह यह कि माधवी मन-ही-मन सुरेन्द्रसे प्रेम करती हुई भी लोक-मर्यादाका पूरा ध्यान रखती है, और इसीलिए वह अस्पतालमें रोगी सुरेन्द्रको देखनेके लिए नहीं जाती। वस्तुतः संयमके साँचेमें ही उसका प्रेम और सौंदर्य निखरा है। उसके जीवनमें उच्छृंखलताका कोई स्थान नहीं।

सुरेन्द्रको खो देनेपर माधवी अपने पितृ-गृहको छोड़कर अपनी ससुराल चली जाती है, परंतु उसे वहाँ भी चैन नहीं मिलता। विधवा नारीके जीवनका सबसे बड़ा अभिशाप रूप और यौवन जो उसके साथ है। "स्वामीके मरनेके उपरांत जब वह अपने पिताके घर लौट आई, तब सभीने कहा 'बड़ी बहिन', सभीने पुकारा 'माँ'। इन सम्मानपूर्ण संबोधनोंने उसके

मनको और भी अधिक वृद्ध कर डाला था। कहाँका रूप और कहाँका यौवन!" परंतु समयने बता दिया कि उसके रूप और यौवनका उसके लिए कोई महत्त्व भले ही न हो, पर औरोंके लिए वह निश्चय ही विशेष महत्त्वपूर्ण है, और तभी उसे अपना गाँव छोड़कर बाहर जाना पड़ा।

'बड़ी बहिन'में माधवीकी कहानी किसी एक नारी-विशेषकी नहीं है; वह तो शतशः विधवाओंकी करुण कथा है। मनोरमाके शब्दोंमें शरत् स्पष्ट बोलते हुए जान पड़ते हैं—"तुम ठीक कहते हो, स्त्रियोंका कोई विश्वास नहीं। मैं भी अब यही कहती हूँ, क्योंकि माधवीने आज मुझे यह सिखला दिया है। मैं उसे बाल्यावस्थासे ही जानती हूँ, इसलिए उसे दोष देनेको जी नहीं चाहता, साहस नहीं होता, समस्त स्त्री-जातिको दोष देती हूँ, विधाताको दोष देती हूँ कि उन्होंने क्यों इतने कोमल और जलके समान तरल पदार्थसे नारीका हृदय गढ़ा था। उनके चरणोंमें प्रार्थना है कि वे हृदयको कुछ और कठोर बनाया करें," परंतु हम निश्चित रूपसे जानते हैं कि शरत्की यह प्रार्थना सुनी नहीं जायेगी। तब फिर इस समस्याका हल क्या है? इस संबंधमें शरत्का कलाकार मौन है। विश्वामित्रने तो एक अधूरी सृष्टिकी रचना की थी, परंतु शरत्ने एक संपूर्ण सृष्टिका सृजन किया है, और जिस प्रकार कि विधाता अपनी निर्मित वस्तुओंके संबंधमें मौन है, उसी प्रकार शरत् भी। यहीं हमें उनकी कला अपने चरम रूपमें दिखाई पड़ती है।

'बड़ी बहिन'की नारीका हृदय निश्छल एवं सरल है। उसमें कोई गहनता नहीं है। माधवीका जीवन उतना जटिल नहीं है, जितना कि 'गृहदाह'की अचला और 'शेष प्रश्न'की कमलका। संभवतः शरत्की प्रार्थना विधाताने 'शेष प्रश्न'में सुनी है, जहाँ उनकी नारीका हृदय 'कुछ और कठोर' बनाया गया है, परंतु फिर शीघ्र ही लेखक 'विप्रदास'में अपनी पुरानी मान्यताओंपर पहुँच गया है। अस्तु, 'बड़ी बहिन'की नारी अपनी प्राथमिक अवस्थामें है, इसमें कोई संदेह नहीं। स्नेह और ममतासे निर्मित नारीकी यह जीवित प्रतिमा कलाकारने बड़ी कुशलतासे निर्मित की है और यद्यपि

उसमें जीवनके विभिन्न रंगों एवं रंगीनियोंका अभाव है, फिर भी उसकी शुभ्रता श्रद्धास्पद है।

'बड़ी बहिन'के अन्य नारी-पात्रोंमें सुरेन्द्रकी विमाता भी कम उल्लेखनीय नहीं है। 'यह विमाता स्वयं अपनी संतानके प्रति बहुत कुछ उदासीन रहनेपर भी सुरेन्द्रकी इतनी हिफ़ाजत करती है, जिसकी कोई हद नहीं।' ऐसा जान पड़ता है कि 'बड़ी बहिन'की राय-गृहिणी ही आगे 'रामेर सुमति'की नारायणी हो गई है, जिसके स्मरण मात्रसे ही वात्सल्यका एक अत्यंत कोमल तथा सजल रूप हमारी आँखोंके सामने आ जाता है। यहाँ भी हमें शरत्की नारीकी ममता और स्नेहका वह दृश्य देखनेको मिलता है, जो सहज ही भुलाया नहीं जा सकता।

सुरेन्द्रकी पत्नी शांति और शिवचंद्रकी स्त्रीके चरित्र विशेष (individual) न होकर सामान्य (type) है, यद्यपि शिवचंद्रकी स्त्रीकी अपेक्षा शांतिका चरित्र अधिक उभारा गया है। उसके जीवनमें उन्हीं विशेषताओंका उन्मेष दृष्टिगत होता है, जिनसे शरत्के सभी नारी-पात्र ओत-प्रोत है, परंतु यह एकदम निश्चित है कि 'बड़ी बहिन'में शरत् भले ही एक विद्रोही कलाकारके रूपमें दिखाई पड़ें, किंतु उनके इस उपन्यासमें किसी विद्रोहिनी नारी-पात्रकी अवतारणा नहीं की गई है। सच तो यह है कि बड़ी बहिन (माधवी) अपने आँसुओंमें भी मौन है। विधवा नारीके मूक रुदनके ही कारण शरत्का यह उपन्यास आदिसे अंत तक सिसकता हुआ जान पड़ता है।

सुमति

[रामेर सुमति]

●

'रामेर सुमति' शरत्‌की उत्कृष्टतम कहानियोंमें-से एक है। स्नेह, ममता और वात्सल्यका जितना सुंदर परिपाक लेखककी इस रचनामें हुआ है, वह किसी भी साहित्यकी कृतिमें मिलना मुश्किल है। नारीका नारीत्व वात्सल्य-में है, इस तथ्यका प्रतिपादन हमें शरत्‌की इस कहानीमें मिलता है। 'बड़ी बहिन'में जिस राय-गृहिणीके दर्शन हमें सुरेन्द्रकी विमाताके रूपमें होते हैं, उसीका परिवर्द्धित संस्करण 'रामेर सुमति'में रामकी मातातुल्य भाभी नारायणी है।

नारीका एक रूप विमाताका है। साहित्यमें विमाता सदैव ही दुष्ट, क्रोधी एवं ईर्ष्यालु प्रकृतिकी चित्रित की जाती है, परंतु शरत् परंपराओंको लेकर चलनेवाले न थे। उनके मनोविज्ञानने उन्हें नारीका सम्मान करना सिखाया और इसीलिए उन्होंने नारीत्वके इस महान् अभिशापको, इस गहरे कलंकको 'रामेर सुमति'में मिटानेकी चेष्टा की है; और इस संबंधमें कोई दो राय नहीं हो सकतीं कि अपने इस कार्यमें वे पूर्ण सफल हुए हैं। साथ ही नारी-समाजकी इस वकालतमें उन्होंने साधारण मानव-जीवनके तथ्योंकी कहीं अवहेलना नही की है। उन्होंने वही कहा है जो मनोविज्ञानसम्मत है।

जैसा कि उनके निबंध 'नारीका मूल्य' (नारीर मूल्य) से स्पष्ट है, शरत् प्रारंभसे ही नारीसमाजको सामाजिक मुक्ति न सही तो साहित्यिक मुक्ति दिलानेका दृढ़ संकल्प करके चले ही थे। उनका यह दावा नितांत सत्य है। अपने मंतव्यकी पुष्टिमें उन्होंने बड़ी सीधी, सरल, परंतु मर्मस्पर्शी युक्तियाँ उपस्थित की हैं, और जिरह करनेका कलात्मक ढंग तो उनका

अपना ही है। इसीलिए उनकी कृतियोंका सामाजिक मूल्य होनेके साथ ही साथ, साहित्यिक मूल्य भी कम नहीं है।

ऐसा जान पड़ता है कि 'रामेर सुमति'की नारायणी और दिगंबरीमें शरत्‌ने संपूर्ण नारीत्वको चित्रित कर दिया है। नारायणी अपने चरित्रकी उज्ज्वलतामें हिमालयसे भी ऊँची है, और उसी प्रकार दिगंबरी अपने चरित्र की नीचतामें समुद्रसे भी गहरी है। इन दोनोंके चरित्रके विरोधाभासके कारण नारायणीका व्यक्तित्व और भी उज्ज्वल तथा कोमल हो गया है। एक ओर नारी हमें अपने उत्कृष्टतम रूपमें दिखाई देती है तो दूसरी ओर अपने निकृष्टतम रूपमें भी, परंतु स्वाभाविकता दोनों ही में है, इसमें कोई संदेह नहीं। एकमें उदात्त भावनाओंकी स्वीकृति है तो दूसरीमें ईर्ष्या एवं अकारण क्रोधकी प्रवृत्तिने स्थान पाया है।

'रामेर सुमति'का कथानक सीधा, सरल एवं छल-प्रपंचोंसे मुक्त है। इसीलिए वह हमारे हृदयको छूता ही नहीं, वरन् वह उसे हिला डालता है। राम अपनी बड़ी भाभी नारायणीके स्नेहकी छायामें पलकर बड़ा होता है, क्योंकि उसकी विधवा जननीकी मृत्यु हो चुकी है। इसी बीचमें नारायणीकी निराश्रया माँ दिगंबरी अपनी लड़कीके घर रहनेको आ जाती है। न जाने क्यों उसे राम अच्छा नहीं लगता। ऐसा जान पड़ता है कि राम उसके जीवनमें सबसे बड़ा शत्रु है। नारायणीकी दैनिक-चर्यामें बाधा पड़ती है और कुछ दिनोंके लिए उसकी गृहस्थीमें कलहका राज्य हो जाता है। इसी बीचमें शरत्‌ने बालक रामको आलंबन बनाकर जिन करुण दृश्योंकी सर्जना की है, वे अपने क्षेत्रमें अपूर्व हैं। अंतमें नारायणीके प्रबल स्नेहके आगे दिगंबरीकी दुष्ट प्रवृत्तियोंको दबना पड़ता है, और वही रामके पीछे घर छोड़कर चल देती है। फिर नारायणीकी गृहस्थीमें स्नेह और ममताका साम्राज्य पूर्ववत् स्थापित हो जाता है।

राम यदि नारायणीके हृदयकी सबसे बड़ी कमज़ोरी है तो दिगंबरीके हृदयकी भी। दोनोंके दृष्टिकोणमें भेद है। एक यदि उसे अपने जीवनमें ममताका केन्द्र बनाती है तो दूसरी अकारण ही सदैव उसके प्रति

अपना क्रोध प्रदर्शित करती रहती है। दिगंबरीकी ईर्ष्या निर्बल एवं साधनहीन है,अन्यथा वह रामके जीवनपर भी अवश्य आघात करती (अपने मुखसे तो वह रामकी मृत्युकामना प्रायः ही किया करती है) । इन दोनों नारियोंके मनोभावोंके घात-प्रतिघातमें नारायणीके स्नेहकी अपूर्व झाँकीके दर्शन होते है और उसके वात्सल्यकी अमिट प्रतिमूर्त्ति हमारे हृदयपर अंकित हो जाती है।

नारायणीका अपने पुत्रतुल्य देवर रामके प्रति अगाध स्नेह, यही इस कहानी की मूल संवेदना है, परंतु शरत्ने भाभीके इस स्नेहको एकदम आदर्शात्मक एवं अतिमानवीय नहीं बनाया है । राममे नाराज होनेपर नारायणी उसका तिरस्कार करती है, उसे मारती भी है, परंतु इसमे उसके हृदयकी ममतामें कोई कमी नहीं होती। यहीं शरत्का मनोविज्ञान जो दूरसे आदर्शवादी जान पड़ता हुआ भी नितांत तथ्यात्मक है, अपनी चरम सीमापर पहुँच जाता है। नारायणीका चरित्र अपने आपमें एक पूर्ण कलाकृति है। तेरह वर्षकी अवस्थामे ही उसने बालक रामको पाला पोसा है। इसीलिए उसकी ममताका केन्द्र प्रारंभसे लेकर अंततक राम ही दिखाई देता है। रामके प्रति उसका प्रत्येक संबोधन उसके अपार स्नेहका प्रतीक है। देवरके प्रति उसका क्रोध भी अधिकारपूर्ण एवं ममत्वसे भरा हुआ है।

जिस व्यक्तिसे हम किसी भी प्रकार संबंधित होते हैं, उसका कोई दुष्कृत्य सुनकर हमें लज्जा आती है । नारायणी भी रामके सब कार्योंके लिए अपनेको ही उत्तरदायी समझती है। जब वह डाक्टरसे सुनती है कि रामने उसके घरमें आग लगानेकी धमकी दी है तो मारे शरमके नारायणीका तो मरना हो जाता है । वस्तुतः ऐसे पारस्परिक दृढ़ संबंध ही प्रबल स्नेह एवं ममताके परिचायक है । रामको कोई बुरा-भला कहे, यह नारायणीके लिए असह्य है। ऐसे स्थलोंपर उसका स्वर रुँध जाता है और आँखें डबडबा आती हैं। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, राम उसके हृदयकी सबसे बड़ी कमजोरी है। घरकी दासी कहती है, "भगवान् जानें क्या बात है! हर बातमें जिसकी इतनी बुद्धि, इतना धीरज है, वह इतनी-सी बात क्यों नहीं समझती ?" और अंतमें हम देखते हैं कि नारायणी अपनी माँको छोड़ देती है, परंतु

उसके लिए रामका त्याग असंभव है। स्नेहकी इस प्रबल धारामें बड़ी-से-बड़ी शपथें भी बह जाती हैं। रामको घरमे अलग कर देनेके प्रस्तावपर वह दृढ़तासे कहती है, "अब अगर तुम मेरी घर-गृहस्थीमें दखल दोगे तो, सच कहती हूँ, मैं नदीमें डूब मरूँगी। तब दूसरा ब्याह करना और रामको न्यारा करके जो जीमें आये सो करना। न मैं देखने आऊँगी, न कुछ कहूँगी-सुनूँगी, मगर मेरे सामने नहीं।"

यहाँ यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि रामके बालहृदयमें अपनी भाभीके प्रेमके प्रति क्या प्रतिक्रिया है। जब उसके फेंके हुए कच्चे अमरूद-द्वारा भाभीके माथेमें चोट लग जाती है तो वह अत्यंत व्याकुल हो उठता है और स्वयं अपने मस्तकपर अमरूद मारकर यह समझनेका प्रयत्न करता है कि उस चोटने भाभीको कितनी पीड़ा दी होगी। वह अपने मनको बहुत प्रकारसे समझाता है और बाहरसे अपनी शान बनाये रखनेके लिए निष्फल चेष्टा करता है, परंतु जब भाभी उसे खाने तकके लिए नहीं बुलाती, तब वह सहम जाता है, और उसकी सारी उच्छृंखलता चूर-चूर हो जाती है। राम और नारायणीके इस पारस्परिक संबंधमें वात्सल्यके जो अपूर्व दर्शन हमें होते हैं, उसीकी चरम परिणति शायद शरत्की प्रख्यात कहानी 'बिंदुर छेले'में हुई है। उसमें तो बिंदु अपनी जिठानीके लड़के अमूल्यसे अलग हो जानेपर मरणासन्न हो जाती है। नारायणी तथा बिंदु एवं राम तथा अमूल्यमें पर्याप्त अंतर होते हुए भी वे वात्सल्यके आश्रय एवं आलंबन एक ही प्रकार-से हैं। वस्तुतः इन दोनों ही कहानियोंमें नारीके हृदयकी महानताका हमें चरम रूप देखनेको मिलता है, क्योंकि नारीका मातृत्व ही उसका सर्वस्व है। शरत्की कृतियोंमें पूर्वापर संबंधका ध्यान रखते हुए हम कह सकते हैं कि 'रामेर सुमति'की नारायणी यदि एक ओर 'बड़ दिदि'की राय-गृहिणीका उत्तररूप है तो दूसरी ओर 'बिंदुर छेले'की बिंदुका पूर्वरूप भी।

'सुमति'में नारायणीके अतिरिक्त अन्य प्रमुख नारी-पात्र दिगंबरी है। दिगंबरीका चरित्र दुष्ट प्रकृतिका होते हुए भी अत्यंत स्वाभाविक है, यह हमें न भूल जाना चाहिए। हमें उसके ऊपर क्रोध भी आता है, हँसी भी आती

है और इसके साथ-ही-साथ उसके दुष्कृत्योंके प्रति घृणा रखते हुए भी हम उसकी वृद्धावस्थाके कारण उसके प्रति अज्ञात रूपसे सहानुभूति भी रखते हैं, हमें उसके ऊपर दया आती है। इस प्रकार वह एक साथ ही हमारी भाव-शबलताका आलंबन होती है। रामके प्रति दुर्भावना एवं अपनी लड़कीके प्रति जड़ एवं कृत्रिम मोह, यही उसके चरित्रके दो सर्वप्रमुख तत्त्व हैं। उसके प्रत्येक कार्यमें हमें एक वृद्धा नारीके मस्तिष्ककी विकृति दिखाई देती है।

अपनी प्रसिद्ध कृति 'दुइ बौन' (दो बहिनें) का प्रारंभ करते हुए कविगुरु रवीन्द्र कहते हैं—"स्त्रियाँ दो जातिकी होती हैं—एक तो माता और दूसरी प्रिया।" शरत्ने इसी विभाजनको ध्यानमें रखते हुए अपने प्रसिद्ध नारीपात्रोंको निर्मित किया है। पहले प्रकारके चरित्र हमें उनकी कहानियोंमें अधिक मिलते हैं। 'रामेर सुमति' एवं 'बिदुर छेले' इसके सर्व-श्रेष्ठ उदाहरण हैं, परंतु नारीका दूसरा रूप चित्रित करनेके लिए लेखकको जीवनके अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत क्षेत्रकी आवश्यकता जान पड़ी है। इसीलिए स्त्रीका प्रिया स्वरूप उन्होंने अधिकतर अपने प्रसिद्ध उपन्यासोंमें ही अंकित किया है। इस दृष्टिसे उनके 'गृहदाह' एवं 'शेष प्रश्न'की विशेष ख्याति है। परंतु कुछ भी हो, शरत्की प्रारंभिक कृतियोंमें हमें नारीके जननी रूपकी ही अधिक सुंदर व्यंजना मिलती है, जो अपनी प्रकृतिमें अत्यंत पवित्र एवं सरल है, और यह नितांत स्वाभाविक है, क्योंकि नारीका अध्ययन हम उसके मातृस्वरूपसे ही प्रारंभ करते हैं। समाजके क्षेत्रमें भी और साहित्यके क्षेत्रमें भी।

———

चंद्रनाथ

•

पात्रोंके दृष्टिकोणसे शरतकी रचनाओंके मोटे तौरपर दो विभाग किये जा सकते हैं। उनके कुछ उपन्यासों और कहानियोंमें पुरुष-चरित्रोंकी प्रधानता है और कुछमें स्त्री-चरित्रोंकी। किंतु पहले प्रकारकी रचनाएँ दूसरे प्रकारकी रचनाओंसे संख्यामें अपेक्षाकृत कम हैं। जिन उपन्यासों अथवा कहानियोंमें पुरुष-पात्रोंकी प्रधानता है उनमें शरत् अधिक मार्मिक नहीं हो सके हैं; उनकी कलाका निखार तो उनके नारी-पात्रोंमें ही द्रष्टव्य है। 'चंद्रनाथ'की गणना उपर्युक्त दो प्रकारोंमें से पहले प्रकारके ही अंतर्गत की जायगी। परंतु फिर भी उपन्यासकी नायिका सरयूका चित्र शरत्के सामान्य नारी-पात्रोंके व्यक्तित्वका भलीभाँति प्रतिनिधित्व करता है। शरत्के जीवन-दर्शनमें दुर्बलताका नाम नारी नहीं है, वरन् उनके अनुसार तो जो विपत्तियोंके सागरकी ऊँची-से-ऊँची लहरोंसे होड़ ले सके, वही सच्चे अर्थोंमें सहिष्णुताकी प्रतीक नारी कही जा सकती है।

'चंद्रनाथ'में सरयूका चरित्र ऐसा ही है। वह एक कुल-परित्यक्ता विधवा ब्राह्मणीकी पुत्री है। उपन्यासका नायक चंद्रनाथ इस बातको जाने बिना ही, उसके प्रेममें आबद्ध होकर उससे विवाह कर लेता है, बादमें जब इस रहस्यका उद्घाटन होता है तो समाजके ठेकेदारोंके भयके कारण चंद्रनाथको गर्भवती सरयूका परित्याग करना पड़ता है, परंतु अंतमें अनेक विघ्न-बाधाओंके उपरांत, चंद्रनाथ और सरयूके बीच जो झूठी कुल-मर्यादाकी दीवार खड़ी हो गई थी, गिरपड़ती है, और दोनोंका परस्पर सुखद सम्मिलन होता है। इसप्रकार 'चंद्रनाथ'के माध्यमसे शरत्ने जो ज़ोरदार सामाजिक क्रांतिका संदेश दिया है, उसका एक-एक अक्षर सरयूकी आँखके

एक-एक आँसूकी ही भाँति मर्मस्पर्शी है। वृद्ध मणिशंकर कहते हैं, "समाज हम हैं, समाज तुम हो। यहाँ और कोई नहीं है। जिसके पास धन है, वही समाज-पति है। यदि मैं चाहूँ तो तुम्हारी जाति बिगाड़ सकता हूँ, और यदि तुम चाहो तो मेरी जाति बिगाड़ सकते हो। समाजके लिए चिंता मत करो।"

इसप्रकार हम देखते हैं कि सरयूका चरित्र उन शतशः नारियोंका प्रतिनिधित्व करता है, जिनका कुल, अपने दोषके कारण नहीं, वरन् परिवारके अन्य किसी भी व्यक्तिके दोषके कारण, क्षण मात्रमें कलंकित हो जाता है। तब प्रश्न है कि क्या ऐसी नारियोंको समाजसे बहिष्कृत कर दिया जाय ? इस संबंधमें लेखकका अपना मत ऊपर उद्धृत किया ही जा चुका है। यही नहीं, शरत्ने तो सदैव ही गिरी हुई नारियोंके चरित्रोंको ऊँचा उठाया है। पापीके प्रति सहानुभूति एवं पापके प्रति घृणा उनके जीवनकी चरम साधना रही है। और साथ-ही-साथ पापकी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमिका उदघाटन उनकी कलाकी चरम साधना रही है। पतितको उठाना ही सच्ची वैष्णवी-भावना है। समाजके कुत्सित कार्य-कलापोंकी व्याख्या एक शैवकी भाँति करते हुए शरत् अपने दृष्टिकोणमें परम वैष्णव थे, इसमें कोई संदेह नहीं।

सरयूके चरित्रमें हमें प्रारंभसे लेकर अंततक एक हीनता-ग्रंथि (Inferiority complex) का आभास मिलता रहता है, क्योंकि अपनी माँके दुराचरणसे वह अपरिचित नहीं। इस हीनता-ग्रंथिको उसकी नम्रता एवं शीलने ऐसा ढँक लिया है कि हमें एकाएक उसका पता नहीं चलता। वह सदैव ही अपने आपको चंद्रनाथकी दासी समझती है। जब हरिबाला उससे पूछती है कि चंद्रनाथ उसे कितना प्यार करते हैं तो वह कुछ लज्जित होकर कहती है, "वे मुझपर बहुत दया रखते हैं।" और यहीं उसकी सखी सोचती है, "स्त्री यह नहीं जानती कि पति उसे कितना अधिक प्यार करता है ! बस, यहीं मुझे बहुत भय होता है।" यह कहना व्यर्थ ही है कि हरिबालाका भय कितना वास्तविक है !

यहाँपर पति और पत्नीके पारस्परिक संबंधका विवेचन शरत्ने बड़े मनोयोगसे किया है। वे कहते हैं, "पर केवल दासी प्राप्त करनेके लिए ही

कोई विवाह नहीं करता, स्त्रीसे और भी किसी बातकी आशा रखी जाती है। जान पड़ता है कि दासीके आचरणके साथ स्त्रीका आचरण सर्वतो-भावसे मिल न जाना ही अच्छा है।" परंतु भाग्यसे चंद्रनाथको तो एक पुण्यवती, पवित्र, साध्वी और स्नेहमयी दासी मिली है। इसीलिए उसके और सरयूके बीचकी खाई बढ़ती ही चली गई। और अंतमें उसने इन दोनों निरीह प्राणियोंको अलग कर दिया।

सरयूके चरित्रमें ऐसा जान पड़ता है कि सरलता अपने सारे अवयवोंके साथ उसके रक्तके अंदर घुल-मिल गई है। केवल एक ही स्थान पर उसकी सचाईमें संदेह किया जा सकता है और वह उस जगह जहाँ कि वह अपने पतिको अपने माँका दुराचरण नहीं बताती, परंतु यहाँ भी शायद उसकी अत्यधिक भीरुता ही उसे ऐसा करनेमें रोकती है। परंतु इस कठोर सत्यने जैसे उसकी सारी प्रसन्नताको छीन लिया है। वह अपने पतिको खुलकर प्यार भी नहीं कर पाती; वह उससे डरती-सी रहती है। उपन्यासकारके शब्दोंमें "सरयूका समस्त हृदय कृतज्ञतासे परिपूर्ण था, इसीलिए उसका प्रेम सिर नहीं उठा सकता था। वह अंतःसलिला फल्गुके समान चुपचाप धीरे-धीरे हृदयके सबसे भीतरी भागमें बहता रहता था, उच्छृङ्खल नहीं हो सकता था।" यह नियतिका व्यंग्य है कि स्नेहका इतना प्रबल स्रोत अपनी अभिव्यक्तिमें नितान्त असहाय ही रहा।

सरयूके चरित्रका उज्ज्वलतम रूप हमें तब दिखाई पड़ता है जब हम उसकी तुलना चंद्रनाथकी मामी हरकालीसे करते हैं। 'सरयू यदि झगड़ालू या ज़बाँ-दराज़ होती, स्वार्थी अथवा निर्दय होती, ईर्ष्यालु अथवा अभिमानिनी होती, तो बहुत संभव है कि हरकाली अपने लिए कोई मार्ग ढूँढ़ निकालती। परंतु सरयूने उसे अपने लिए करुणाकी भिक्षा माँगनेका अवसर ही नहीं दिया।' यही सरयूकी चारित्रिक विजय है। हरकाली शरत्के नारी-पात्रोंके उस प्रकारके अंतर्गत आती है, जिसका शीर्षक हम 'रामेर सुमति'की दिगंबरीसे प्रारंभ करते हैं। नारीके इस रूपकी सज्जा खड़ी करनेमें हमें शरत्की अंतर्दृष्टि अपने चरम बिंदुपर दिखाई देती है।

यदि दिगंबरी अवसरपर रोनेमें अपने आपको असमर्थ पाकर अपना कंठ करुण एवं आर्द्र बना सकती है तो हरकाली भी समयानुकूल अपने आँचलसे झठ-मूठ ही आँसुओंको पोंछने लगती है। किसी भी प्रकार सरयूका अहित हो यही उसकी सबसे बड़ी कामना है।

चंद्रनाथ सरयूको बहुत चाहते हैं। उसे वह अपने जन्म-जन्मान्तरकी पतिव्रता स्त्री समझते हैं। "परंतु इतना होनेपर भी किसी दुखीपर अनुग्रह और दया करनेसे जो अभिमान, जो तृप्ति होती है, बालिका सरयूके साथ विवाह करते समय उसी अभिमान, उसी तृप्तिने एक दिन आत्म-प्रसादका छद्म वेष धारण करके चंद्रनाथके हृदयमें जो चुपचाप प्रवेश किया था, सो अब सैकड़ों चेष्टाएँ करनेपर भी वे उसका पूर्णरूपसे उच्छेद नहीं कर सके।" पुरुष-चरित्रकी यही कमज़ोरी नारीके सुखके विनाशका कारण बनती है। सरयूको निर्दोष जानते हुए भी चंद्रनाथ उसे अपने पास नहीं रख पाते। 'कुलका झगड़ा' या 'वंशका बखेड़ा' विवाह होनेके पूर्व नहीं, वरन् विवाह होनेके बाद इन दो प्रेमियोंके बीच एक मज़बूत दीवार बन जाता है। सरयू-को चंद्रनाथका घर छोड़ना पड़ता है,और तब बूढ़े गुमाश्ताजीके साथ पाठकों-को भी सीताजीकी कथा याद आ जाती है। केवल इसलिए नहीं कि लव-कुश-जननीकी भाँति वह गर्भवती है, अपितु इसलिए कि राम-प्रियाकी भाँति वह भी निर्दोष है।

और यहाँ शरत्‌की लेखनी आँसुओंसे भीगती हुई चलती है, "इस सोलह वर्षकी अवस्थामें ही उसके सारे शौक, सारी कामनाएँ पूरी हो गई थीं। माता नहीं, पिता नहीं, पतिने परित्याग कर दिया। खड़े रहनेके लिए कहीं कोई स्थान नहीं है, केवल कलंक, लज्जा और विपुल रूप यौवन है... उसने मन ही मन कहा, 'चाहे और कुछ न हो, पर काशीकी गंगा तो अभी तक नहीं सूखी है? गंगा न तो समाजसे डरती है और न उसकी जाति ही जा सकती है। वह एक दुखिया अबलाको इन दुःखके दिनोंमें मज़ेसे अपनी गोदमें ले लेगी। मुझे और कहीं आश्रय न मिले न सही, वहाँ अवश्य मिलेगा।' और सरयूने निश्चय ही पवित्र भागीरथीकी क्रोड़में आश्रय ले लिया होता

यदि अवसर पर, विपुल स्नेहसे परिपूर्ण उसे कैलास चाचाका सहारा न मिलता। 'आँचलमें दूध और आँखोंमें पानी' लिये हुए अबला-जीवनकी यह करुण कथा सहृदयोंको आठ-आठ आँसू रुलाती है, और एक सामाजिक दुर्व्यवस्थाके प्रति स्पष्ट संकेत भी करती है। कलाकी सामाजिकताके कारण ही शरत्की कृतियाँ इतनी मूल्यवान् हैं।

'चंद्रनाथ'में हरिबालाका चरित्र सरयूकी सखीके रूपमें चित्रित किया गया है। यद्यपि शरत्ने स्वयं कहा है, "अवस्थाके सम्मानका ज्ञान जैसा पुरुषोंमें है, वैसा स्त्रियोंमें नहीं है ....जब तक स्त्रियोंका विवाह नहीं होता, तबतक वे अपनी बड़ी बहन, भाभी, माँ, बुआ अथवा दादीके पास छोटोंकी भाँति रहकर थोड़ी बहुत उम्मेदवारी करती हैं, नारी-जीवनमें जो कुछ थोड़ी बहुत बातें सीखनेकी होती हैं, वे सब सीख लेती हैं; और फिर इसके उपरांत वे एकदमसे सबसे ऊँची श्रेणीमें जा बैठती हैं। उस समय सोलह वर्षसे लेकर छप्पन वर्षतककी सभी स्त्रियाँ मानो समान अवस्था-वाली हो जाती हैं।" परंतु फिर भी हरिबाला और सरयूका यह निबिड़ सख्यभाव बहुत अधिक स्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। अवस्थाके सम्मानका ध्यान स्त्रियोंमें अधिक भले ही न हो,परंतु वर्षोंके व्यवधानका ज्ञान तो उन्हें रहता ही है। अस्तु, हरिबालाका चरित्र है बहुत ही मांसल और सजीव, इसमें कोई संदेह नहीं। इस वृद्धा नारीके केशोंकी श्वेतता उसके मनमें भी छा गई है। वस्तुतः चाहे नवविवाहिता हो, चाहे अस्सी वर्षकी विधवा, चाहे ज़मींदारके घरकी मालकिन हो अथवा ग़रीब गृहस्थकी कुलवधू—किसीके भी मनोभाव पहिचाननेमें शरत्ने ग़लती नहीं की। नारी-मनोविज्ञानके वे पंडित थे।

'चंद्रनाथ'के अन्य स्त्री-पात्रोंमें मणिशंकरकी पत्नी है, परंतु कथा-प्रवाहमें उसका कोई विशेष स्थान नहीं। सुलोचना (सरयूकी माँ) अवश्य कुछ देरके लिए पाठकोंका ध्यान आकर्षित किये रहती है। परंतु उसका चरित्र प्रारंभसे लेकर अंततक रहस्यमय रहता है। उसके बारेमें कुछ विशेष पता नहीं चलता। ऐसा जान पड़ता है कि लेखक उपन्यासके

उत्तरार्द्धमें उसे भूल-सा गया है। उसके संबंधमें पाठककी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। परंतु इतना निश्चित है कि प्रथम बार उसके सात्त्विक रहन-सहनको देखकर बादमें जब उसके कुल-कलंकका भेद खुलता है तो अनायास ही हमारे मुँहसे निकल जाता है, "स्त्रियोंके लिए सब कुछ संभव है।" उपन्यासकार यदि इस चरित्रको कुछ और उभारता तो अधिक अच्छा होता।

परंतु इसका एक कारण है। जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं, 'चंद्रनाथ'में नारी-पात्रोंकी अपेक्षा पुरुष-पात्रोंकी प्रधानता है। सरयूको छोड़कर किसी अन्य स्त्री-पात्रकी पूर्ण व्यंजना हमें इस उपन्यासमें नहीं मिलती। चंद्रनाथ, कैलास, हरिदयाल, मणिशंकर आदिके चरित्र ही इसमें प्रमुख हैं। कैलासका चरित्र तो अपने आपमें एक पूर्ण कलाकृति है। वह इतना अधिक पूर्ण तथा सुन्दर है कि स्वयं उपन्यासके नायक एवं नायिकाके व्यक्तित्व उसके सामने नही ठहर पाते। और इतने पर भी विशेषता यह है कि उसके चरित्रको अधिक विस्तार नहीं दिया गया है।

बिंदोका लल्ला

[बिंदुर छेले]

●

शरत्‌की इस कहानीकी मूल संवेदना वही है जो हमें उनकी प्रसिद्ध कृति 'रामेर सुमति'में मिलती है। वस्तुतः ये दोनों कहानियाँ मिलकर एक युग्म हैं। दोनों रचनाएँ अलग-अलग, एवं अपने आपमें पूर्ण होनेपर भी, वस्तुके दृष्टिकोणसे एक-दूसरेसे अत्यंत घनिष्ठ रूपमें सम्बद्ध हैं। इन दोनों का ढाँचा प्रायः समानान्तर है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि शरत्‌की कलाका जो निखार 'रामेर सुमति'में द्रष्टव्य है, वह 'बिंदुर छेले'में मिलता है, अथवा नहीं, परंतु फिर भी निश्चित रूपसे इतना अवश्य माना जा सकता है कि 'रामेर सुमति'में जो मूल संवेदना या मनोवेगोंकी अनुभूति है, वह 'बिंदुर छेले'में और भी घनीभूत हो गई है—इतनी घनीभूत कि कहानीके वातावरणमें कहीं-कहीं तो पाठकको साँस लेना भी मुश्किल जान पड़ता है।

'बिंदुर छेले'की आधारभूत कथा इस प्रकार है—संतानहीन बिंदु अपनी जिठानीके एकमात्र पुत्र अमूल्यको अपने सर्वस्वके साथ प्यार करती है। उसके सारे जीवनकी वृत्तियाँ उसीपर केन्द्रीभूत हैं। यहाँतक कि 'अन्नपूर्णाका लड़का बिंदुवासिनीकी गोदमें जिस तरह खाने-पीने और बड़ा होने लगा, उसका फल यह हुआ कि अमूल्य चाचीको 'माँ' और 'माँ'को जीजी कहना सीख गया।' बिंदुका कर्कश स्वभाव, वस्तुतः उसके अमूल्यके प्रति प्रेमके कारण ढँक जाता है। इस कहानीमें शरत्‌ने नारीके खारे आँसुओंसे स्नेहका इतना शीतल एवं अगाध सागर प्रस्तुत किया है, जिसकी थाह लेनेमें बुद्धिकी वृत्तियाँ असमर्थ हो जाती हैं, परंतु फिर जीवनकी सरल एवं अबाध गतिमें व्यवधान उपस्थित होता है। घरमें यादव एवं

माधवकी फुफेरी बहिन एलोकेशी, जिनकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं है, अपने पति एवं पुत्रके साथ आ जाती हैं। और यहींसे इस सुखी एवं संपन्न गृहस्थीमें कलह अपनी जड़ जमा लेती है। एलोकेशीकी कूटनीतिके फलस्वरूप बिंदु एवं उसकी जिठानीमें मन-मुटाव हो जाता है और दोनों अलग-अलग रहने लगती हैं। पर अगाध स्नेहको अभ्यस्त बिंदुको अपनी कठोर, परंतु ममतामयी जिठानी, सरल व्यवहारवाले जेठ एवं अपने जीवन-सर्वस्व लल्ला (अमूल्य)के अभावका अनुभव होने लगता है। वह अपने पितृ-गृह चली जाती है, और तब उसकी पुरानी बीमारियाँ उसे फिर घेर लेती हैं, वह मरणासन्न हो जाती है। परंतु ऐसे सरल एवं निरीह स्नेहका अंत इस प्रकार नहीं हो सकता। माधव अपने बड़े भाई यादव, भाभी अन्नपूर्णा, एवं लल्लाको लेकर उसके पास पहुँचते हैं। तब बिंदो कहती है—"लाओ जीजी क्या खानेको देती हो। और लल्लाको मेरे पास लिटाकर तुम सब बाहर जाओ और आराम करो। अब डर नहीं है, मैं मरूँगी नहीं।"

इस कहानीमें आदिसे लेकर अंततक बिंदोका चरित्र ही प्रमुख दिखाई देता है। वह एक क्षणके लिए भी हमारी आँखोंसे ओझल नहीं होती। उसके स्नेह एवं ममतासे भरे हुए जीवनकी यह गौरव-गाथा है। जब एक नववधूके रूपमें बिंदु यादव मुखर्जीके घरमें प्रवेश करती है तो उसके व्यवहारके संबंधमें बड़ी बहूकी पहली प्रतिक्रिया होती है, "क्यों जी, रूप और रुपयोंकी गठरी देखकर बहू घर ले आये, पर यह तो काली नागिन है!" परंतु यादवने इस बातपर विश्वास नहीं किया और पाठककी सहानुभूतिको भी यादवके इसी विश्वासपर अंततक टिकना पड़ता है।

बिंदुको प्रायः मूर्च्छा आ जाया करती है। और एक दिन जब वह प्रायः अचेत होनेको ही थी, उसकी जिठानी अन्नपूर्णाने अपने सोते हुए बच्चे अमूल्य को लाकर उसकी गोदमें डाल दिया। अमूल्य कच्ची नींदमें जग जानेसे ज़ोर-ज़ोरसे रोने लगा। बिंदो जी-जानसे अपनेको सम्हालकर और बेहोशीके पंजेसे अपनी रक्षा करके बच्चेको छातीसे लगाकर कमरेमें चली गई। और सचमुच ही स्नेहकी इस अजस्र धाराने बिंदोकी जैसे सारी बीमारी दूर कर

दी। अब यदि उसे कोई रोग है तो अमूल्य अथवा लल्लाके प्रति प्रेमका। यहाँ यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यही उसकी औषधि भी है !

बिंदो लल्लाकी रक्षामें एक सिंहिनीकी भाँति तत्पर रहती है। वह उसे पाठशाला इसलिए नहीं भेजती कि कहीं उसकी आँखमें कोई क़लम ही न खोंस दे। अपने स्नेहमय आँचलसे वह उसे अधिक दूर नहीं होने देना चाहती। जहाँतक हो सकता है वह उसे अपनी आँखके सामने ही रखती है। सचमुच इस बातका कारण कोई नहीं जानता कि क्यों बिंदो अमूल्यके बारेमें ऐसी यक्षकी तरह सजग रहती है—ऐसी प्रेतकी तरह सतर्क। अपने पुत्रकी इस सर्वमंगलाकांक्षिणीके चेहरेकी तरफ़ देखकर अन्नपूर्णाका मातृ-हृदय गद्गद हो उठता है।

परंतु लल्लाके प्रति असीम स्नेह रखते हुए भी बिंदो उसे किसी प्रकार बिगड़ने नहीं दे सकती। उसके जीवनमें एक ही कामना है, और वह है अमूल्यका चरित्र-निर्माण। बड़े अधिकारपूर्ण स्वरमें वह अन्नपूर्णासे कहती है, "मगर देखो जीजी, लड़केको अगर दस-बीसमें एक-बड़ा बनाना हो तो माँको दुनियासे न्यारी होनेकी ज़रूरत है। अगर तबतक ज़िंदा रहीं जीजी, तो देख लेना तुम, देशके लोग हाथ उठाकर कहेंगे कि यह अमूल्यकी माँ है।" वस्तुतः इसी महत्त्वाकांक्षापर उसका सारा जीवन अवलंबित है। इसके विपरीत वह किसी भी प्रकार सोच ही नहीं सकती। वह स्वयं कहती है, "पर इसी एक आशाको लेकर तो मैं जी रही हूँ जीजी ....इस आशापर अगर किसी दिन चोट पड़ी, तो मैं पागल हो जाऊँगी।" और जब वह देखती है कि एलोकेशी एवं उसके पुत्र नरेन्द्रके रूपमें एक ऐसी बाधा आ खड़ी होती है, जिससे कि उसके अमूल्यकी उन्नतिमें व्यवधान पड़नेका डर है, तो वह मान्य होते हुए भी उनका स्पष्टरूपसे तिरस्कार कर देती है। लल्लाके स्वाभाविक विकासमें कहीं कोई कमी रह जाय, यह बात उसके लिए असह्य है। ऐसी संभावनाओंका निराकरण करनेके लिए ही वह उसे हृदयपर पत्थर रखकर दंडित भी करती है। इन्हीं सब बातोंको देखकर ही तो अन्न-पूर्णा कहती है, "मैं नहीं, तू ही उसकी माँ है; मैंने तुझे ही तो दे दिया है।"

पर फिर भी ऐसे अवसर आ ही जाते हैं जब झुँझलाकर बिंदो अपनी जिठानीसे कह देती है, "मेरा लड़का नहीं है, इस बातको मैं भी जानती हूँ और तुम भी जानती हो। फिर झूठमूठ बात बढ़ानेकी ज़रूरत क्या है, जीजी ?" पर इन शब्दोंमें बिंदोका लल्लाके प्रति अधिकार एवं ममतापूर्ण स्वर ही बोल रहा है, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं।

बिंदोकी सारी रागात्मिका वृत्ति लल्लापर केन्द्रित हो गई है। यहाँ तक कि उसने अपने लिए—अपने पतिके लिए भी कुछ नहीं छोड़ा। "इतने बाल हैं, बाँधेगी नहीं; इतने कपड़े-गहने हैं पहनेगी नहीं; इतना रूप है, सो एक बार अच्छी तरह देखेगी भी नहीं।" एक जिठानीके पुत्रके लिए राग, एवं अन्य सबके लिए—यहाँतक कि अपने लिए भी विराग, अद्‌भुत भले ही जान पड़े, परंतु अस्वाभाविक नहीं है। नारीका यह रूप अपने आपमें करुणासे ओत-प्रोत रहते हुए भी, कितना श्रद्धास्पद, कितना आदरणीय है, इसका अनुमान करना कठिन नहीं।

किंतु मानव-जीवनकी गति एवं कथा ऐसे अबाधरूपसे तो चलती नहीं ! बिंदो एवं उसके लल्लाके पारस्परिक स्नेह-संबंधमें व्याघात उत्पन्न होता है, एवं इसका सम्पूर्ण श्रेय यादव-माधवकी फुफेरी बहिन एलोकेशी तथा उसके सुपुत्र नरेन्द्रको बड़ी आसानीसे दिया जा सकता है। एक मामूली-सी बातपर कलह हो जानेपर अन्नपूर्णा एवं बिंदु अलग-अलग हो जाती हैं। इस प्रकार बिंदो एवं उसके लल्लाके बीच एक दीवार खड़ी हो जाती है। अवश्य ही यह बालूकी भीतकी भाँति अधिक दिनोंतक स्थायी नहीं रह पाती और निर्मल स्नेहकी मंदाकिनी फिरसे बहने लगती है।

बिंदोने नया मकान बनवाया है, जिसमें कि वह सारे परिवारके साथ रहेगी, परंतु अब क्या हो ? 'अब तो सूने मकानका एक-एक क्षण उसे लील जानेके लिए मुँह फाड़ने लगा। नीचेके एक मकानमें एलोकेशी रहती है, और ऊपरका एक कमरा उसका अपना है; बाक़ी सारे कमरे खाँव-खाँव करने लगे। वह सूने मनसे घूमती-फिरती तिमंज़िलेके एक कमरेमें जाकर खड़ी हो गई। किसी सुदूर भविष्यकी पुत्र-वधूके लिए उसने यह कमरा

बनवाया था। इसमें आते ही वह किसी भी तरह अपने उमँड़ते हुए आँसुओं-को न रोक सकी।' उसकी आशाएँ---आकांक्षाएँ ताशके महलकी भाँति पलमें इस प्रकार ढह जाएँगी, इसका पता किसे था ?

अब वह हर समय लल्लाका रास्ता देखती है; परंतु टूटे हुए स्वप्नकी भाँति वह फिर नहीं आता। व्यथासे भरे इन्हो क्षणोंमें उसे अपने पिताजीकी बीमारीका समाचार मिलता है और भरे हुए हृदयसे वह चल देती है उन्हें देखने। जाते समय वह मिसरानीके पैर छूती हुई कहती है, "तुम ब्राह्मणकी लड़की हो, उमरमें बड़ी हो, असीस दो कि मैं अब न लौट सकूँ, यही जाना मेरा आखिरी जाना हो।" परंतु ऐसा होता नहीं। घर पहुँचकर बिंदो स्वयं मरण-शय्यासे लग जाती है। पर स्नेहमें कुछ ऐसा विश्वास होता है, ऐसी शक्ति होती है कि अंत इतनी शीघ्र नहीं आता। पत्नीकी मरणासन्न अवस्था देखकर माधव घर जाकर अपने बड़े भाई, भाभी एवं लल्लाको ले आते हैं। और फिर स्नेहकी इस प्रबल धारामें अन्नपूर्णाकी शपथें बह जाती हैं और बिंदोकी सारी बीमारी। उसका रोग ही उसकी औषधि बनकर उसके पास आ जाता है।

यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं कि बिंदोके प्यारका एक बड़ा भाग केवल लल्लाके लिए सुरक्षित है, परंतु फिर भी इसका अर्थ यह नहीं कि परिवारके अन्य व्यक्तियोंके प्रति वह नितांत उदासीन है। अपने पतिका वह सम्मान करती है, जेठकी बातपर प्राण देनेको तैयार है और अन्नपूर्णाका भी वह अपने निजी ढंगसे आदर करती है। जिठानीके प्रति एक अज्ञात रोष, एक अपरिचित अवमानना रखते हुए भी वह उनका हृदयसे सम्मान करती है। यादवतकसे भी वह कह देती है, "जीजी से कहूँ, वे जो कहेंगी सो होगा।" वस्तुतः लल्लाके प्रति प्रेम ही उसके चरित्रका, 'रिडीमिंग फीचर' अर्थात् सर्वप्रमुख तत्त्व है जिससे उसकी सामान्य कर्कशता ढँक जाती है।

जिन्होंने शरत्की प्रायः सभी प्रसिद्ध कहानियोंको पढ़ा है, वे 'बिंदुर छेले'का अध्ययन करते समय 'रामेर सुमति'को कदापि नहीं भुला सकते। वस्तुतः नारीके जिस जननी-स्वरूपकी उद्‌भावना 'बड़ी बहिन' की राय

गृहिणीमें की गई, वही नारायणीके चरित्रमें स्वाभाविक विकास प्राप्त करके, बिंदोमें अपनी चरम-सीमापर पहुँच गई है। यह शरत्‌की नारियोंकी महत्ता है कि उन्होंने अपने पुत्रोंका कुछ भी ध्यान न रखकर अपने सौतेले पुत्र, देवर एवं भतीजेपर ही सारा प्यार उँड़ेल दिया है। भारतीय नारी-जीवनकी इस चरम परिणतिमें शरत्‌की अटूट श्रद्धा है।

जब हम 'बिंदुर छेले'की बिंदु एवं 'रामेर सुमति'की नारायणीकी परस्पर तुलना करते हैं तो हमें यह निःसंकोच रूपसे कहना पड़ता है कि नारीका जो कलात्मक चित्रण हमें नारायणीमें मिलता है वह बिंदुमें नहीं! हाँ यह अवश्य कहा जा सकता है कि वात्सल्यके मनोभावका जो विकास हमें 'रामेर सुमति'में दृष्टिगत होता है, उसकी चरम सीमा 'बिंदुर छेले'में है। जैसा घनीभूत वातावरण 'बिंदुर छेले'का है वैसा 'रामेर सुमति'का नहीं! एक ही मूल संवेदनाको लेकर दो भिन्न-भिन्न नारी-चरित्रोंका निर्माण जिस कुशलतासे शरत्‌ने किया है, वह बड़े-बड़े कलाकारोंके लिए अध्ययनकी सामग्री है।

शरत्‌की नारियोंका एक ऐसा वर्ग भी है, जिसमें मानव-जीवनकी सारी दुर्वृत्तियोंने अपना स्थायी घर बना रखा है। ऐसे नारी पात्र किसी-न-किसी रूपमें लेखककी प्रायः सभी कृतियोंमें देखनेको मिल जाते हैं। 'बिंदुर छेले'में इस वर्गकी प्रतिनिधि एलोकेशी है। उसे किसीकी उन्नति अथवा प्रगतिमें रुचि नहीं है। वह तो सबको नीचे गिरता देखना चाहती है। एलोकेशीके चरित्रपर लेखकने जो टिप्पणी दी है, वह कुछ हल्की है। "बीबीजी देखनेमें भोली-सी भले ही मालूम पड़ती हों, पर असलमें वह भोली नहीं थीं।" इस एक वाक्यसे एलोकेशीके हृदयकी कालिमापर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। वस्तुतः 'रामेर सुमति'की बुढ़िया दिगंबरीकी सारी विनाशात्मक प्रवृत्तियोंको 'बिंदुर छेले'की एलोकेशीमें प्रश्रय मिला है। यहाँपर हमें इस संबंधमें एक बातका ध्यान और भी रखना पड़ेगा। शरत्‌की नारियोंका यह वर्ग प्रायः उनकी रचनाओंमें हास्य-सामग्री प्रदान करता है। जब एलोकेशी कहती है—"तुम्हें लड़का चाहिए छोटी बहू, मेरे नरेन्द्रनाथको ले लो, उसे तुम्हें दिये

देती हूँ। मार डालो, किसी दिन एक बात भी कहे ऐसा लड़का नहीं वह, वैसी औलाद मैंने कोखमें नहीं रक्खी" तो पाठकके चिताग्रस्त मुखपर एक हल्की मुसकानकी रेखा आ ही जाती है। करुणा एवं निराशाके घनीभूत वातावरणमें इस छोटी-सी मुसकानका कितना महत्त्व है, इसे शरत्के पाठक भलीभाँति जानते हैं।

'बिंदुर छेलेमें' केवल एक ही नारी-पात्र और शेष रह जाता है, जिसकी व्याख्या यहाँ अपेक्षित है। और वह है घरकी 'बड़ी मालकिन' अन्नपूर्णा। अन्नपूर्णाका चरित्र कहानीमें कम अंकित होनेपर भी कम हृदयस्पर्शी नहीं है। उसकी तेजस्विता एवं सरलताके सम्मुख सहृदय पाठकको नतमस्तक होना ही पड़ता है। आत्म-गौरव एवं पति-भक्तिकी भावना उसमें विशेष-रूपसे प्रबल है। बिंदोसे तिरस्कृत होनेपर वह कह उठती है, "अच्छा ही हुआ जो जता दिया। सतीने आत्महत्या की थी, मैं क़सम खाती हूँ कि किसीके घर रसोई बनाके पेट पालूँगी, पर तेरा अन्न अब न खाऊँगी। तूने किया क्या, उनका अपमान किया!"

अन्नपूर्णाका चरित्र साहित्यिक दृष्टिसे अपने आपमें एक पूर्ण कलाकृति है, एवं सामाजिक दृष्टिसे सबके लिए एक महान् आदर्श। पारिवारिक जीवनकी सफलताका श्रेय उसे बड़ी आसानीके साथ दिया जा सकता है।

विराज बहू

[विराज बौउ]

●

'विराज बहू' शरत्की उन विरल कृतियोंमें-से एक है, जिनमें जीवनके अपेक्षाकृत विस्तृत क्षेत्रका अंकन हुआ है। उपन्यासकारकी अन्य रच-नाओंकी भाँति यह भी अपने प्रमुख चरित्रपर ही केन्द्रित है, परंतु फिर भी इसमें बाह्य जीवनका चित्रण हुआ है। शरत्के अधिकांश उपन्यासोंकी भौगोलिक पट-भूमि प्रायः एक ही रहा करती है, परंतु 'विराज बहू'में ऐसी बात नहीं है। इसका घटनास्थल पूर्वार्द्धमें स्थिर रहनेके बाद उत्तरार्द्धमें कुछ-कुछ बदलने लगता है, परंतु फिर भी उसकी अधिकांश घटनाएँ सप्तग्राममें ही होती हैं। वस्तुतः शरत्की कला भावनाओंकी गहराईमें इतना उलझ जाती है कि स्वभावतः ही उसे घटनास्थलके बाह्य रूप एवं उनके भौगोलिक परिवर्त्तनका विशेष ध्यान नहीं रहता। इसीलिए समयका पर्याप्त व्यवधान रखते हुए भी शरत्के उपन्यास अपनी रंगभूमि नहीं बदलते। उनमें पात्रों एवं घटनाओंका रंगमंच प्रायः एक ही रहता है।

इस उपन्यासकी नायिका स्वयं विराज बहू है। उसके उज्ज्वल एवं अटल चरित्रका यह महाकाव्य है; उसके व्यक्तित्वकी दृढ़ता शरत्की इस कृतिकी मूल संवेदना है। उसके चरित्रका कुछ अधिक विश्लेषण करनेके पहले यहाँ एक बातपर विचार-विमर्श कर लेना आवश्यक है। कुछ विद्वानों-का यह आक्षेप है कि 'शरत्ने अपनी कृतियोंमें उन्हीं पुरुष पात्रोंको चित्रित किया है जो नारी-हृदयकी महत्ताका शिकार हो चुके हैं; और यह अनु-चित है', परंतु यह धारणा बहुत उचित नहीं कही जा सकती, क्योंकि भले ही आजके सामाजिक जीवनमें पुरुषकी महत्ता नारीसे कहीं

अधिक बढ़ी-चढ़ी हो, फिर भी स्वयं पुरुषके निर्माणमें नारीका बहुत बड़ा हाथ है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। जीवनके प्रारंभिक वर्षोंमें व्यक्ति अपनी जननीकी क्रोड़में बनता-बिगड़ता है, तथा फिर तरुणाईमें क़दम रखते ही नारीके प्रिया-स्वरूपसे उसे प्रेरणा मिलने लगती है। इस प्रकार सामाजिक वातावरणसे प्रभावित होते हुए भी पुरुषके व्यक्तित्वकी गठनमें नारीका बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। बस इसी अनुपातसे शरत्ने अपनी रचनाओंमें नारी-पात्रोंको प्रधानता दी है। यहाँ यह बात भी स्पष्ट रूपसे कह देनी होगी कि उपन्यासकारकी कलामें तत्कालीन बंगाली नारी-समाजकी दुरवस्थाके प्रति ज्ञात अथवा अज्ञात रूपसे एक प्रतिवर्त्तनकी भावना भी अवश्य छिपी हुई है। इस तथ्यकी ओरसे हम अपनी आँख नहीं मूँद सकते।

एक बात और भी है। यद्यपि अपने निबंध 'नारीर मूल्य' में शरत्ने बड़े ही विदग्धतापूर्ण ढंगसे नारीके महान् मूल्यका निर्धारण किया है, परंतु फिर भी नारीकी महत्ता वे उसके पुरुषसे संबंधमें ही आँकते हैं। उसके स्वतंत्र मूल्यका उन्होंने कहीं अधिक विवेचन नहीं किया है, और शायद इसी लिए उनके अधिकांश उपन्यासोंका नामकरण उनके नायकोंके नामोंके आधार पर ही हुआ है। 'चंद्रनाथ', 'काशीनाथ', 'देवदास', 'श्रीकांत' एवं 'विप्रदास' जैसे उनके प्रमुख उपन्यास इस तथ्यका समर्थन करते हैं, और जिन रचनाओंका नामकरण नायिकाओंके ऊपर हुआ है, उनमें भी नायकको भुला दिया गया हो, ऐसी बात नहीं है। 'विराज बहू' में ही, उपन्यासका शीर्षक तो है 'विराज बहू' किंतु फिर भी विराजके माध्यमसे उसमें नीलांबरके चरित्रका ही अधिक अंकन हुआ है। इस प्रकार यह कहना कि शरत्ने अपनी कृतियोंमें नारीको आवश्यकतासे अधिक महत्ता प्रदान की है, बहुत संगत प्रतीत नहीं होता।

अब हम बहुत संक्षेपमें 'विराज बहू' की मूल कथा देखेंगे। नीलांबर एवं पीतांबर दो भाई हैं। नीलांबर स्वभावका सरल एवं परोपकारी है, परंतु छोटा भाई पीतांबर घोर स्वार्थी है। अपनी एकमात्र बहिन पुटीके

विवाहके समय पीतांबर नीलांबरसे अलग हो जाता है। इसप्रकार बड़े भाई नीलांबरको ही अपनी दुलारी बहिनके विवाहका प्रबंध सँभालना पड़ता है। एक बड़े घरमें विवाह करनेके फलस्वरूप दहेज आदिके रूपमें उसका सारा वैभव लुट जाता है और उसके परिवारपर ग़रीबी मँडराने लगती है। इस स्थानपर उसकी पुत्रहीना पत्नी विराज बहूके चरित्रकी दृढ़ता देखने ही बनती है। पति और पत्नीके व्यक्तित्वका निखार अपनी चरम सीमाकी ओर बढ़ता है, परंतु इसी बीचमें निर्धनतासे ऊबकर एवं स्वामीसे तिरस्कृत होकर विराज बहू गाँवके नवयुवक ज़मींदार राजेन्द्रनाथके बजरेपर सवार होकर कलकत्तेकी ओर चल देती है। नीलांबरको जब अपनी पत्नीके इस कलंकका ज्ञान होता है तो उसका हृदय टूट जाता है। इधर विराज बहू क्षणिक आवेशमें राजेन्द्रके साथ चल देनेपर भी, अपने चरित्रकी पूर्ण रूपसे रक्षा करती हुई नदीमें गिर पड़ती है। इसके बाद किस प्रकार अनेक विघ्न-बाधाओंका सामना करके विराज और नीलांबरका मिलन होता है, और फिर किस प्रकार अनेक उपचारोंके होते हुए भी रुग्ण विराजकी मृत्यु हो जाती है, यह एक लंबी कथा है, जिसे इस इतिवृत्तात्मक ढंगसे कहना शरत्की कलाके प्रति अन्याय करना है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस उपन्यासमें विराजका चरित्र ही मूल केन्द्र है जिसके चारों ओर विभिन्न घटनाएँ एवं पात्र चक्कर लगाते हैं यद्यपि यह तो नहीं कहा जा सकता कि 'विराज बहू'की विराज शरत्की चरित्र-निर्माण-कलाके उत्कृष्ट नमूनोंमें-से है, परंतु फिर भी उसका व्यक्तित्व कम मर्मस्पर्शी हो, ऐसी बात नहीं है। प्रारंभसे लेकर अंततक पाठकका ध्यान उसीकी ओर आकर्षित रहता है और वह सोचता है कि यदि उसके भाग्यपर शासन करनेवाला नक्षत्र कुछ और अधिक दयामय होता तो अच्छा था।

'विराज बहू' के चरित्रकी मुख्य संवेदना है उसकी पति-भक्ति। सती सावित्रीके सम्मुख अपने व्यक्तित्वको रखती हुई वह कहती है, "सतीत्वमें मैं ही उनकी अपेक्षा कहाँ कम हूँ? मेरे ही समान सतीत्वकी मर्यादाका

पालन करनवाली और स्त्रियाँ भी संसारमें हो सकती हैं, किंतु सतीत्वकी महिमाको मुझसे भी अधिक समझनेवाली कोई स्त्री है, यह बात माननेके लिए मैं तैयार नहीं हूँ।" विराजकी यह गर्वोक्ति उसके दृढ़ चरित्रपर ही आधारित है। वस्तुतः उसके चरित्रमें पति-भक्ति इतनी अधिक है कि बाह्य संसारमें उसकी सत्ता नितांत एकांतिक हो गई है; उसका सारा प्रेम एकांगी हो गया है। यहाँ तक कि अपने पतिके दुःखसे विपन्न, वह छोटी बहू एवं ननद पुटीसे भी कुछ अप्रसन्न रहती है।

यहाँ पर विराजके चरित्रके संबंधमें बड़े स्वाभाविक रूपसे एक आपत्ति खड़ी की जा सकती है। यदि वह वस्तुतः सतीत्वकी मर्यादाका पालन करने-वाली थी और विधवाके लिए सहमरण ही श्रेष्ठ समझती थी, तो फिर क्यों वह अपनी सारी कुल-लज्जाको त्यागकर राजेन्द्रके साथ सप्तग्रामके बाहर चली गई? जो नारी समझती है कि स्वामीके चले जाने पर तो सर्वस्व ही जाता रहता है, और जो अपने पतिसे कहती है, "यदि तुमने स्त्री होकर जन्म ग्रहण किया होता तो तुम्हें मालूम होता कि स्वामी कैसी वस्तु है," उसके चरित्रमें यह कलंक कैसा?

यदि विषमोक्तिपर ध्यान न दिया जाय तो यहाँ यही कहना पड़ेगा कि विराजकी अत्यधिक पति-भक्ति ही मूल रूपमें उसकी चारित्रिक दुर्बलताके लिए उत्तरदायी है। यह सरल मनोविज्ञानकी बात है कि निबिड़ प्रेमभावमें ज़रा-सी भी शंका महान् अनर्थका कारण हो जाती है। विराजके सतीत्वपर उसके स्वामीने ही संदेह किया, बस इसी चोटसे वह पागल हो जाती है और क्षणिक आवेशके वशीभूत होकर वह राजेन्द्रके साथ चल देती है, परंतु जब उसे होश आता है तो वह अपनी भयंकर भूलको पहिचानती है, और अपने चरित्रकी पूर्ण रक्षा करती हुई वह नदीमें कूद पड़ती है। यह उसके सतीत्वका ही तेज था कि राजेन्द्र-जैसा दुराचारी व्यक्ति उसकी ओर आँख उठाकर न देख सका, शरीर-स्पर्शकी तो बात ही अलग है। वस्तुतः विराजके चरित्रकी यह क्षणिक दुर्बलता नितांत स्वाभाविक है और उसके व्यक्तित्वको अतिमानवीय एवं कोरा आदर्शात्मक होनेसे रोकती है। उसकी

पति-भक्तिकी इससे वड़ी कसौटी और क्या हो सकती है कि अनेक दिनों तक एक अनाथ युवती होकर इधर-उधर घूमते हुए भी वह सतीत्वकी मर्यादाका पालन कर सकी, और जब कि उसकी अतुलनीय यौवनश्री देवताओंकी कामनाके योग्य थी।

विराजके चरित्रमें रूपवती एवं सतीका विरल संयोग मिलता है। उसका रूप असाधारण है जो राजा-रईसके घरोंकी स्त्रियोंमें भी देखनेमें नहीं आता। मनुष्यमें इतना भी अधिक सौंदर्य हो सकता है, इस बातका लोगोंको सहसा विश्वास नहीं हो पाता, परंतु इसके साथ ही साथ वह सांसारिक पापोंसे इतनी अपरिचित है कि एक कुलटा स्त्री कैसी होती है, यह उसने देखातक नहीं। उसके प्रेमकी इस अनन्यतापर स्नेहमय नीलांबरका दृढ़ विश्वास अवलंबित है। उसकी गार्हस्थिक कुशलताके अतिरिक्त उसके चारित्रिक तेजके ही कारण वह उससे मन-ही-मन बहुत डरता है। वस्तुतः विराज 'बाहरसे चाहे कितनी ही मधुर और कोमल क्यों न जान पड़े, किन्तु भीतरसे उसकी प्रकृति बहुत उग्र है'; डरना तो वह किसीसे जानती ही नहीं। स्पष्टवादिता उसकी प्रमुख विशेषताओंमें-से है। नीलांबरसे वह कह देती है "क्या मैं रूपका व्यापार करती हूँ या इस रूपके द्वारा ही तुम्हें भुला रखना चाहती हूँ ?" अपनी मूल प्रकृतिमें वह आत्माभिमानिनी है, इसमें कोई संदेह नहीं।

अपने इन्हीं चारित्रिक गुणोंके कारण विराज अपने पतिके विश्वासकी अमानतदार है। राजेन्द्र जब प्रथम बार विराजसे बातचीत करता है तो उसकी चर्चा सुनकर भी नीलांबर उसपर किसी भी प्रकारका संदेह नहीं करता। पति-पत्नीका यह प्रगाढ़ प्रेम उनकी बाल्यावस्थासे ही संचित होता आया है। छोटी बहू मोहिनी विराजसे ठीक ही कहती है, "संसारमें कितनी ऐसी सौभाग्यशालिनी स्त्रियाँ हैं, जिनके भाग्यमें तुम्हारे ऐसा स्वामी बदा हो।" नीलांबर किसी भी प्रकार अपनी पत्नीपर अविश्वास करनेके लिए तैयार नहीं। वह स्पष्ट कहता है, "उसके हृदयमें ज्ञान और बुद्धिका भली भाँति उन्मेष होनेसे पहले ही वह अपने प्राण मुझे सौंप चुकी थी। आज भी

उसके प्राण मेरे पास है।" छोटी बहू भी इसी बातका समर्थन करती है "दीदीने आपसे यह वर माँग लिया था कि स्वामीके चरणोंके समीप मस्तक रखकर मैं प्राणत्याग कर सकूँ। वह किसी भी प्रकार निष्फल नहीं हो सकता।" शील और विश्वासका यह अपूर्व संयोग सचमुच ही सराहनीय है। विराजने तो नीलांबरको अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है, इसीलिए वह अपने अपराधका निर्णय स्वयं नहीं कर पाती। उसका संपूर्ण अस्तित्व पतिके अस्तित्वके साथ एकाकार हो गया है।

विराजका चरित्र समग्र रूपमें शरत्की नारी संबंधी धारणाओंपर विशेष प्रकाश डालता है। 'विराज बहू'का अध्ययन इस बातका स्पष्ट रूपसे परिचायक है कि शरत्की नारियोंके प्रेममें सेक्सकी प्रधानता नहीं है। उनके पुरुष-पात्रों एवं नारी-पात्रोंके पारस्परिक संबंध सामान्य ऐंद्रिकतासे रहित हैं। विराज एवं नीलांबरमें इतना प्रगाढ़ प्रेम होनेपर भी उनके चरित्र-में पाशविक वासनाओंको कहीं उभारा नहीं गया है। इसीलिए शरत्की कृतियोंमें स्नेहकी निर्मल मंदाकिनी बहती है, वासनाकी कलुषित वैतरणी नहीं। प्रसिद्ध उपन्यास 'वदरिंग हाइटस' में प्रदर्शित प्रेमकी व्याख्या करते हुए एक समालोचकने कहा है—"अपनी सारी गहराईमें कैथरीन (उपन्यासकी नायिका) का प्रेम सेक्स-रहित है; उसमें ऐंद्रिकताका ऐसा ही अभाव है, जैसा कि उस आकर्षणमें जो कि लहरोंको चंद्रमाकी ओर खींचता है और लोहेको चुंबककी ओर।" विराजके चरित्रकी गवाहीपर हम कह सकते हैं कि शरत्की नारियोंका प्रेम प्रायः ऐसा ही है।

विराजके व्यक्तित्वकी दूसरी प्रमुख विशेषता है उसकी अटल पति-भक्ति। वस्तुतः उपन्यासकारके सभी प्रतिनिधि नारी-पात्रोंके संस्कार नितांत भारतीय हैं। यहाँ हमें 'शेष प्रश्न'की कमल एवं 'चरित्रहीन'की किरणमयीको अपवाद-स्वरूप स्वीकार करना होगा। इस तथ्यके समर्थनमें स्वयं शरत् बाबूकी स्वीकारोक्ति नीचे उद्धृत की जाती है—"तुम्हारी यह बात मैं मानता हूँ। अन्नदा दीदी ('श्रीकांत'की एक सती नारी) के प्रति वास्तवमें मेरी भी आंतरिक श्रद्धा है। मेरे जन्मगत संस्कार आख़िर

भारतीय ही हैं।"--(इलाचंद्र जोशी : 'साहित्य-सर्जना' पृष्ठ १४३)। शरत्के नारी-पात्रोंकी सामान्य पट-भूमिकी विवेचना करते समय हमें यहाँ इस बातका भी स्पष्ट उल्लेख कर देना होगा कि उपन्यासकारके पुरुष-पात्रोंमें जो चरित्रकी विविधता द्रष्टव्य है, वह उसके नारी-पात्रोंमें नहीं; क्योंकि उनमेंसे सबके व्यक्तित्व प्रायः एक ही भावधारासे अनुप्राणित हैं।

अब इस स्थलपर इस बातकी भी संक्षिप्त चर्चा अप्रासंगिक न होगी कि शरत्के नारी पात्रोंके नामकरणमें मनोविज्ञान बड़े सुंदर ढंगसे निभाया गया है। एक प्रकारसे हम उनके पात्रों के नामसे ही उनके रूप और गुणोंकी कल्पना कर लेते हैं। अन्नपूर्णामें यदि हमें किसी दयालु रमणीके स्वरूपकी व्यंजना मिलती है, तो एलोकेशीके नामसे कुछ छल-प्रपंचकी ध्वनि निकलती है। विराज बहूमें जो धैर्य समाविष्ट है, वह पुटीमें कहाँ? इसीप्रकार कमलमें यदि हमें एक शांत प्रभविष्णुताका आभास मिलता है तो मनोरमामें एक चंचल आकर्षणकी छाया दिखाई देती है। 'विप्रदास'में दयामयी एवं वंदना नाम भी ऐसे ही ध्वनिपूर्ण हैं। नामका मनोविज्ञान शरत्की कलामें बड़े सुगठित रूपमें दिखाई देता है।

प्रकारांतरसे यह बता देना अनुचित न होगा कि विराजके चरित्रके माध्यमसे शरत्के सामान्य नारी पात्रोंके कुछ गुणोंकी व्याख्या यहाँ केवल इसलिए की गई है कि 'विराज बहू'में शरत् पहली बार विराजके रूपमें नारीका एक तीव्र व्यक्तित्व हमारे सामने लाये हैं, जिसके चरित्रमें सुख-दुःखका ताना-बाना जीवनके धूप-छाँहों रंगोंसे बुना गया है। अवश्य ही इस धूप-छाँहीं पटके अधिकांश भागपर छायाका ही अधिकार द्रष्टव्य है। 'चंद्र-नाथ'में सरयूके चरित्रमें जो विविधता लानेका प्रयत्न किया गया था, वह 'विराज बहू'में कुछ और आगे बढ़ता दिखाई देता है।

ऊपर विराजके चरित्रकी विवेचनासे स्पष्ट ही है कि उपन्यासमें उसके व्यक्तित्वके तेजके सम्मुख अन्य नारी-पात्र ठहर नहीं पाते, परंतु इससे दूसरे चरित्रोंका हीनरंजन हुआ हो, ऐसी बात नहीं है। छोटी बहू मोहिनीका अंकन अत्यंत सूक्ष्म होनेपर भी उतना ही प्राणवान् है, जितना कि स्वयं विराज

का। वस्तुत: उसका चरित्र ऐसा ही है जो इस तथ्यका प्रतिपादन करता है, "स्त्रीको प्यार न करना अन्याय है।" उसके हृदयकी विशालताको देखकर विराजको कहना पड़ता है, "छोटी बहू, मैंने सभीको पहिचान लिया है, केवल तुम्हें अभी तक नहीं पहचान पाई थी।" किंतु इससे मोहिनीकी नम्रतामें कोई अंतर नहीं पड़ता। वह तो अपने सारे चरित्र-निर्माणका श्रेय अपनी योग्य जिठानीको ही देती है, "मुझे जो कुछ भी जानकारी है, वह सब तुम्हारे चरणोंसे!" वह विराजपर अपने सर्वस्वके साथ विश्वास करती है। जब तक चंद्र-सूर्य उदय होते रहेंगे, वह उसपर संदेह नहीं कर सकती। दोनों परिवारोंके फिरसे मिलनेका मूल कारण वही है। पति-भक्तिमें वह भी किसी प्रकारसे कम नहीं है। अपने पतिकी सारी प्रताड़ना वह मौन होकर सहती है। 'किसीसे-शिकायत-नहीं' कोटिका चरित्र उसका है।

नीलांबर, पीतांबरकी छोटी बहिन पुटीके बारेमें हम केवल इतना ही जानते हैं 'कि उसे अपने सबसे बड़े भाईका सबसे अधिक स्नेह प्राप्त है। एक ही माता-पिताकी गोदमें दोनोंने जन्म लिया था। पुटी जबतक छोटी थी, तबतक नीलांबर उसे कभी गोदमें लेकर और कभी कंधेपर लादकर घुमाया करता था। जहाँ वह जाता था, वहाँ साथमें पुटीको भी लिये जाता था।' विवाहके बाद पुटीके बारेमें हमें प्राय: कुछ नहीं मालूम रहता। अपने पितृ-गृहके अनेक आपत्तियोंमें ग्रस्त हो जानेपर वह फिर एक बार सप्तग्राममें आती है और उस समय हमें उसके चरित्रमें अधैर्यका आधिक्य दिखाई देता है।

विराजके परिवारकी दासी सुंदरीका चरित्र अत्यंत साधारण कोटिका होते हुए भी एक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है। उसके व्यक्तित्वमें प्राय: उन सारी बुराइयोंका समावेश है, जिन्हें पाकर एक स्त्री कुलटा हो सकती है, परंतु 'राक्षसत्व में देवत्व'वाले सिद्धांतका प्रतिपादन करते हुए उपन्यासकारने उसके मानसिक संस्थानमें भी भलाईके कुछ परमाणु अवशिष्ट दिखाये हैं। नीलांबरके अपार कष्टसे दु:खित होकर वह उनकी आर्थिक सहायता तो करती ही है, साथ ही उनकी चरित्रकी दृढ़तासे प्रेरित होकर वह अपने प्रियतम निताई गांगुलीका भी तिरस्कार कर देती है।

अपनी इस चर्चाको समाप्त करते हुए हम शरत्के ऊपर किये जानेवाले एक आक्षेपका समाधान और करते चलेंगे। हिन्दीके कुछ विद्वान् प्रायः कहा करते हैं कि शरत्ने अपने नारी-पात्रोंको सदैव ही विपत्तिके अथाह सागरमें निमज्जित होते दिखाया है जो कुछ अस्वाभाविक है। विराज बहू भी इसका अपवाद नहीं है। उनके अनुमार विपदा पर विपदा पाठकको सहानुभूति-निरपेक्ष बना देती है। इस संबंधमें हमें केवल इतना ही कहना है कि जिस प्रकार जीवनके बाह्य क्षेत्रके पीड़नका चित्राधार होनेके कारण प्रेमचंद्रजीका 'गोदान' हिन्दीकी सिरमौर कृति बन गई है, उसी प्रकार मानसिक व्यथाओंका यथार्थ अंकन करनेके कारण शरत् सहृदय पाठकोंके इतने निकटवर्त्ती हो गये हैं कि वे उनकी रचनाओंमें अपने आपको ही बोलता हुआ पाते हैं। जीवनका विष सभीको पीना पड़ता है और उसका परिणाम भी अवश्यंभावी है; शिवशंकर तो विरले ही होते हैं जो उस विषको गलेके नीचे नहीं उतरने देते। शरत्के अधिकांश नारी-पात्र प्रायः ऐसे ही हैं।

परिणीता

●

'परिणीता' शरत्के प्रारंभिक साहित्यिक जीवनकी एक गल्प है और उत्तरार्द्धकी गठनको छोड़कर वह अपनेमें कोई विशेषता नहीं रखती। नारी-चरित्रके दृष्टिकोणसे भी इसका अध्ययन कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है, किंतु जब हम शरत्की नारीके विकासकी विस्तृत विवेचना करना चाहते हैं, तब इसकी कुछ व्याख्या अपेक्षित हो जाती है। एक प्रकारसे 'परिणीता' शरत्की प्रख्यात कृति 'गृहदाह'का पूर्वरूप है। यही गल्प अपने विकसित एवं सुगठित स्वरूपमें उस उपन्यासका आकार धारण कर लेती है जिसमें शरत्का नारी-चरित्रका अध्ययन एक दिशामें अपनी चरम-सीमा पर पहुँच गया है। 'परिणीता' एवं 'गृहदाह' दोनोंमें ही तीन कथात्मक संघर्ष समान रूपसे विद्यमान हैं—एक प्रेमिकाको प्राप्त करनेके लिए दो मित्रोंमें संघर्ष, इसीसे संबंधित वैष्णव एवं ब्राह्म संघर्ष तथा धनी एवं निर्धनमें संघर्ष। प्रेम संबंधी यह प्रतिद्वन्द्विता दोनोंकी मूल कथा है। वस्तुतः 'परिणीता'की ललिता ही समाजके प्रबल झँकोरोंमें दृढ़, गंभीर और साथ ही साथ अस्थिर बनकर 'गृहदाह' की अचलाका रूप धारण कर लेती है। 'परिणीता' शरत्की अपरिणीत वयकी रचना है, इसीलिए उसकी नारी सरल एवं पारदर्शक है; किंतु ज्यों-ज्यों उपन्यासकारका अध्ययन बढ़ता गया, उसकी धारणा उत्तरोत्तर बदलती गई और 'गृहदाह'में उसकी नारीका चरित्र अत्यंत दुरूह एवं गहन हो गया। विकासका यह अत्यंत स्वाभाविक क्रम है।

'परिणीता'की मूल-कथा इस प्रकार है—गुरुचरण एक निर्धन गृहस्थ है। किरानीगीरीकरके वह किसी प्रकार अपना निर्वाह करता है। उसकी

अनाथ भांजी ललिता भी उसीके साथ रहती है। पड़ोसके बाबू नवीनचन्द्र रायके पुत्र शेखरके स्नेहका अधिकांश ललिताके लिए सुरक्षित है। बचपनका यह प्रेम प्रणयमें परिणत होता है और ललिता शेखरकी परिणीता हो जाती है; परन्तु यह बात केवल उन्हीं तक रहती है। इधर गुरुचरण अपनी भांजीके विवाहके लिए वर ढूँढ़ते हैं। पड़ोसके एक घरमें गिरीन्द्र नामका नवयुवक आ जाता है, जिसके व्यक्तित्वसे गुरुचरण बहुत प्रभावित होते हैं। ललिताकी ओर वह भी अत्यधिक आकर्षित होता है। अपने पाससे रुपये देकर वह गुरुचरणका सारा ऋण चुका देता है। उसीके प्रभावके कारण गुरुचरण ब्राह्म धर्म स्वीकार कर लेते हैं। शेखरके हृदयको इससे बहुत चोट पहुँचती है। वह समझता है कि ललिताका विवाह गिरीन्द्रके साथ हो जायेगा। वह अपनी माँके साथ देश-भ्रमणके लिए चला जाता है। वहाँसे लौटकर आनेपर जब वह गुरुचरणकी विधवा पत्नीसे गिरीन्द्रको 'जमाई' कहकर संबोधित होते देखता है तो वह इस संबंधमें एकदम निश्चित हो जाता है। इससे ललिताके प्रति उसके मनमें कुछ विरक्ति, कुछ घृणाका भाव उत्पन्न होता है। उसका विवाह दूसरी जगह तय हो जाता है, किंतु इसी बीचमें भेद खुलनेपर यह ज्ञात होता है कि गिरीन्द्रका विवाह ललिताके साथ न होकर उसकी छोटी बहिन अन्नाकालीके साथ हुआ है। तब शेखरके मनमें गिरीन्द्रके प्रति द्वेषका स्थान श्रद्धा ले लेती है; और उसकी माँ भुवनेश्वरी अपनी स्नेहपात्री ललिताको अपनी पुत्र-वधूके रूपमें पाकर फूली नहीं समाती। वह दौड़ी-दौड़ी अपने बड़े लड़के अविनाशको बताने जाती है, 'व्याहकी दुलहिन बदल गई है।'

'परिणीता'में ललिताके चरित्रका विश्लेषण बहुत दुरूह नहीं है। उसके मानसिक-संस्थानमें वे गहराइयाँ नहीं हैं, जिनके लिए शरत्का नारी-समाज प्रसिद्ध है। वैसे तो ललिताके प्यारका क्षेत्र बहुत विस्तृत है—वह शेखरको, शेखरकी माँको, अपने मामाको, गिरीन्द्रको एवं परिवारके अन्य सब व्यक्तियोंको स्नेहका दान देती है, परंतु उसके हृदयकी विशेष रागात्मक वृत्तियाँ तो जैसे शेखरपर ही केन्द्रित हैं। उसका प्रेम सरल एवं सार्व-

जनिक होते हुए भी एक विशिष्ट व्यक्तिके लिए विशेष प्रकारका है। बस चरित्रकी यह संवेदना ही 'परिणीता'की आधार-शिला है।

उपन्यासकी पट-भूमिका निर्माण नगरकी सामूहिक हलचल एवं थकित गुरुचरणकी अनेक चिंताओंसे हुआ है। इस बाह्य एवं आन्तरिक कोलाहलके बीच जब घटना-स्थलसे प्रथम बार परदा उठता है तो अपने क्लांत एवं जर्जरित मामाको धीरज बँधाती हुई तेरह वर्षकी किशोरी ललिताको हम देखते हैं। निर्धनताके फलस्वरूप समयसे पहले ही उसमें विचार-शक्तिका विकास हो चला है। 'इस जीर्ण-शीर्ण गुरुभार-ग्रस्त अकाल-वृद्ध मामाके हृदयकी छिपी हुई व्यथाको इस घरमें उससे ज़्यादा और कोई नहीं समझता।' उसके व्यवहारमें सरलता है एवं हृदयमें सहानुभूति।

किंतु इसके पहले कि पाठक ललिताके बारेमें कुछ अधिक सोच सकें, उपन्यासकार स्वयं ही उसके सामने उस समस्याका आभास दे देता है जो एक निर्धन बंगाली गृहस्थको उन्निद्र रोगतकका उपहार प्रदान कर सकती है। गुरुचरण कहते हैं, "अपनी इस बिटियाको अगर राजाके घर दे सकता तो समझता कि हाँ, एक अच्छा काम किया।" परंतु प्रश्न तो यह है कि यह अच्छा काम कैसे हो? अभी इस वार्त्तालापके कुछ ही क्षण पहले दयामय भगवान्ने उन्हें पाँचवीं कन्या प्रदान की है। इस रत्नका उन्हें कितना अनादर करना पड़ेगा, इसे वे भलीभाँति जानते हैं। पर इस समय तो उन्हें ललिताका विशेष ध्यान है, "राजाके मुकुटपर जो कोहिनूर चमकता है, वैसे ढेरों कोहिनूरोंके साथ तोलनेपर भी मेरी इस बिटियाकी क़ीमत नहीं हो सकती। पर इस बातको समझेगा कौन? पैसेकी कमीके कारण मुझे ऐसे रत्नको भी गँवा देना पड़ेगा।" इन पंक्तियोंमें वस्तुतः समाजके अनेक गुरुचरण बोल रहे हैं, जिनके सिरपर कन्या-दायका भार उन्हें चैन नहीं लेने देता।

'ललिता देखनेमें ज़रा श्यामवर्ण ज़रूर है, पर ऐसी आँखें, ऐसा चेहरा, ऐसी हँसी, इतनी दया-ममता दुनियामें ढूँढ़नेपर भी नहीं मिलेगी'—मामाकी इस उक्तिमें-से यदि अतिशयोक्तिका अंश निकाल दिया जाय, तब भी

भांजीकी आंतरिक शुभ्रतामें कोई विशेष कमी नहीं पड़ती। ललिताका चरित्र उस अबोध कुसुम-कलीकी भाँति है, जिसमें अधिक प्रभविष्णुता एवं आकर्षण भले ही न हो, किंतु उसकी अपनी जो निश्छलता एवं स्निग्धता है, वह भी कम मूल्यवान् नहीं !

शेखर एवं ललिताका पारस्परिक रागात्मक संबंध नितांत सहज एवं प्राकृतिक है। 'वह जानती है कि शेखरकी बिना आज्ञाके वह कहीं भी नहीं जा सकती—किसीने उसको यह बात बताई नहीं थी और न इस बातका उसके मनमें कोई तर्क ही उठा कि क्यों और किसलिए, किंतु जीव-मात्रमें जो स्वाभाविक सहज बुद्धि है उसी बुद्धिने उसे सिखा दिया था।' इसकी तहमें आदिम मनुष्यकी आत्मसमर्पणकी मनोवृत्ति छिपी हुई है। अपने जीवनमें व्यक्ति यह अनुभव करता है कि उसके संपर्कमें आनेवाले अनेक व्यक्तियोंमें से कुछ दो-एक ऐसे हैं जो बरबस ही उसे अपनी ओर खींच लेते हैं; उसे उनका शासन मानना पड़ता है। शेखरके प्रति ललिताकी यह वृत्ति उसके बाल्यकालसे ही प्रारंभ होती है। तबसे वह 'छोटी बहिन'की तरह शेखरके आस-पास घूम-फिरकर उससे पढ़ना-लिखना सीखकर बड़ी हो रही है। वह शेखरके स्नेहकी पात्री है, इसे सब जानते हैं। बचपनका यह पवित्र सख्य-भाव तरुणाईमें क़दम रखते ही किस प्रकार प्रणयकी मादकतामें परिणत हो जाता है, इसे तो स्वयं प्रेमी-प्रेमिका भी शायद नहीं जानते।

यहाँ 'छोटी बहिन' शब्द शायद विज्ञ समालोचकोंके तीरका निशाना बन सकता है, परंतु यह स्पष्ट समझ रखना चाहिए कि बाल्यावस्थाके प्रेमका यह विकास उतना ही स्वाभाविक एवं पवित्र है, जितना कि स्वयं सूरके कृष्ण एवं राधाके प्रेमका विकास, जिसके संबंधमें आचार्य रामचंद्र शुक्लने कहा है, "इस प्रेमकी उत्पत्तिमें रूप-लिप्सा और साहचर्यका योग है।" समाजमें व्यक्तियोंकी परस्पर संवेदना जब किसी विशेष स्त्री-पुरुषके बीच कुछ अधिक निकटकी हो जाती है, तब उसीको हम प्रेम कहते हैं। बचपनमें इसमें सेक्सका अभाव रहता है, परंतु ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है त्यों-त्यों व्यक्तिकी अन्य सहज-प्रवृत्तियाँ भी जाग्रत होने लगती हैं, किंतु ऐसे

प्रेममें वासनाका आधिक्य नहीं रहता, उसकी आधारशिला तो विशुद्ध स्नेहकी ही भावना है। केवल मात्र वासनापर आधारित प्रेम अस्थायी होता है, स्थायित्व स्नेहकी सरसतामें ही है।

शेखर एवं ललिताके इस स्नेहके बीच गिरीन्द्रका आगमन होता है। उसके द्वारा ध्यानपूर्वक देखे जानेपर वह शरमा जाती है और तब उसे प्रथम बार अनुभव होता है कि पुरुषकी प्रीतिकी निगाह इतनी बड़ी लज्जाकी बात है। इसके उपरांत जब वह उसके दुखित मामाके प्रति विशेष सहानुभूति दिखाने लगा तो 'वह गिरीन्द्रपर आंतरिक श्रद्धा करने लगती है।' परंतु उसके हृदयमें गिरीन्द्रके प्रति श्रद्धा एवं शेखरके प्रति प्रेमके बीचमें कभी संघर्ष नहीं हुआ। उसका राग अंततक शेखरपर ही केन्द्रित रहता है। ललिता 'लक्ष्मी-सरस्वती दोनों होती हुई भी' शेखरके व्यक्तित्वसे अपने को बहुत नीचा समझती है; 'वह शेखरसे भीतर-ही-भीतर डरती है'। वस्तुतः 'परिणीता'में ललिताका चरित्र बहुत सरल अंकित किया गया है। 'विराज बहू'की विराजके व्यक्तित्वमें जो तीव्रता थी, वह ललितामें नहीं। विराजसे नीलांबर भय खाता था, किंतु यहाँ ललिता शेखरसे डरती है। चरित्र-विज्ञानके आचार्य शरत्‌ने पुरुष एवं नारी दोनोंके ही व्यक्तित्वमें कुछ ऐसा आकर्षण भर दिया है, जिससे कि उन्हें एक-दूसरेकी ओर बरबस खिंचना पड़ता है। किसका जादू अधिक प्रबल पड़े यह उनकी प्रकृति पर निर्भर है।

ललिता एवं शेखरके बीच आँधीकी तरह गिरीन्द्र आ जाता है और उसी भाँति चला भी जाता है। किन्तु इस तूफ़ानमें अपने व्यक्तित्वको दृढ़ रखनेकी क्षमता ललितामें है जो उसके एकनिष्ठ प्रेमकी परिचायक है और जिसका खंडन आगे 'शेष प्रश्न'में शरत् कमलके द्वारा करवाते हैं। ललिता शेखरकी परिणीता हो जाती है, परंतु समाजके सम्मुख इस रूपमें आनेका साहस उनमें अभी नहीं है। तभी शेखर ग़लतफ़हमीका शिकार होकर ललिताका तिरस्कार करता है। वह स्थिर होकर कहती है—"मुझे बेचनेका अधिकार उन्हें है ही नहीं और न उन्होंने बेचा ही है। यह अधिकार सिर्फ़ तुम्हीं-

को है, तुम चाहो तो रुपया देनेके डरसे मुझे बेच भी सकते हो।" पर शेखर इसपर कुछ ध्यान नहीं देता। उसे विश्वास है कि ललिता अपने इस गुप्त परिणयकी बात किसीको बताएगी नहीं, क्योंकि उसने सुन रक्खा था, 'औरतोंकी छाती फटे तो फटे पर मुँह नहीं फटता।' इस बातसे उसे संतोष मिलता है और आगे वह ललिताको 'कुलटा' कहते हुए भी नहीं सकुचाता। गिरीन्द्रके प्रति उसका विद्वेष चरम सीमापर पहुँच जाता है, परंतु जब वह उसे बादमें बताता है, "स्नेह चाहे कितना ही गहरा क्यों न हो, जान-बूझकर कोई पराई विवाहिता स्त्रीसे ब्याह नहीं कर सकता" तो उसके चले जानेपर शेखर उसे भूमिष्ठ होकर प्रणाम करता है।

ललिता शेखरसे तो प्रेम करती ही है साथ ही उसकी माँको भी वह अपनी ही माँ समझती है। वह शेखरसे विश्वासके साथ कहती है, "जो तुम हो सो मैं हूँ। माँ अगर तुम्हें नहीं छोड़ सकतीं तो मुझे भी न छोड़ेंगी।" भुवनेश्वरी स्वयं स्वीकार करती हैं, "मुझे वह सिर्फ़ माँ कहती ही न थी, बल्कि माँकी तरह मानती और प्यार भी करती थी।" जननीके स्नेहसे विहीन ललिता, अपनी माँईकी भरपूर गृहस्थीमें उससे भी दो बातें नहीं कर पाती। इसीलिए शेखरकी माँ भुवनेश्वरीके आँचलकी छाया उसे सर्वाधिक प्रिय है। 'परिणीता'में भुवनेश्वरीके उज्ज्वल चरित्रका अंकन पाठकके मनमें स्थायी घर कर लेता है। उनका वर्णन करते हुए उपन्यासकार कहता है, "उम्र पचासके लगभग होगी। पर शरीरकी ऐसी सुंदर गठन है कि देखने में पैंतीस-छत्तीससे ज़्यादा की नहीं मालूम होतीं और उस सुंदर आवरणके भीतर जो मातृ-हृदय है, वह और भी नवीन, और भी कोमल है।" इन शब्दोंसे हमारे सम्मुख जिस भव्य मूर्तिका चित्र आता है वह श्रद्धेय है। वस्तुतः शरत्‌की आदर्श माताएँ आधुनिक प्रगतिशील महिलाओंसे भी कहीं अधिक भावनाओंमें सुलझी हुई एवं किसी भी प्राचीनासे अधिक स्नेहमयी हैं। वे शेखरकी सम्मतिके बिना उसका विवाह नहीं करना चाहतीं। आगे चलकर 'विप्रदास'की दयामयीमें भी ऐसी ही अनुशासन-प्रियता एवं ममताका संगम हुआ है।

भुवनेश्वरीका हृदय वैसे ही बहुत कोमल है, किंतु ललिताकी अनाथा-वस्था विशेष रूपसे उनके अंदर सहानुभूति जाग्रत करती है। इसीलिए वे शेखर और ललिताको समान भावसे प्यार करती हैं। शेखरके साथ गुप्त-रूपसे विवाह करनेके पहले ललिता कुछ डरती है। इसपर वह कहता है, "बाबूजी सुनेंगे तो गुस्सा होंगे, यह ठीक है; पर माँ बहुत खुश होंगी।" और अंतमें जब शेखर और ललिता एक साथ ही उनके चरण स्पर्श करते हैं तो, "भुवनेश्वरीकी आँखोंसे आनन्दाश्रु झरने लगते हैं। वे ललिताको सच-मुच ही बहुत ज्यादा प्यार करती थीं।"

गल्पके अन्य नारी-पात्रोंमें कोई विशेष महत्त्वपूर्ण चरित्र नहीं है। ललिताकी माँईका केवल उल्लेख भर है। चारुबालाकी माँका अवश्य कुछ अंकन हुआ है। उनके लिए ताश खेलनेसे बढ़कर प्रिय वस्तु संसारमें कोई नहीं है। मगर खेलनेके लिए जितना नशा है, उतनी दक्षता नहीं। ऐसे व्यक्तियोंके जीवनके बारेमें भी यही उक्ति चरितार्थ होती है। उनमें जीवित रहनेकी लालसा तो बहुत अधिक रहती है, परंतु जीवनकी कलासे वे प्रायः अनभिज्ञ होते हैं। जब मनोरमा सुनती है कि गिरीन्द्र ललिताकी माँईको एक साथ ही बहुत-सा रुपया देने जा रहा है तो उसे घोर असंतोष होता है। एक गृहिणीकी स्थितिमें उसकी संचयकी मनोवृत्ति ऐसे अवसरपर जागरूक हो उठती है।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, 'परिणीता'में नारी-चरित्रके अध्ययनकी कुछ विशेष सामग्री नहीं है। ललिताका चरित्र अवश्य ही महत्त्वपूर्ण होता, यदि शरत् उसे कुछ और गहराईके साथ अंकित करते! परंतु उसकी मानस-भूमि उसकी अपरिणीत वयको देखते हुए कुछ अस्वाभा-विक नहीं कही जा सकती। इसी कथानकका ढाँचा लेकर शरत्‌ने बादमें अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'गृहदाह' का निर्माण किया होगा, ऐसी सम्मति स्थिर करना असंगत नहीं है। जान तो ऐसा पड़ता है कि 'परिणीता'में ललिताकी सरलता ही समयके व्यवधानसे 'गृहदाह'की अचलाके हृदयका संघर्ष बन जाती है।

चरित्रहीन

•

शरत्‌के संपूर्ण साहित्यिक जीवनमें 'चरित्रहीन'का अपना अलग महत्त्व-पूर्ण स्थान है। इस उपन्यासमें वे प्रथम बार एक ऐसी नारीका व्यक्तित्व हमारे सम्मुख लाते हैं जो उनकी पूर्व-परंपरासे सर्वथा भिन्न है। नारी ही नहीं वरन् पुरुषका भी एक ऐसा ही चित्र हमें इस कृतिमें मिलता है। किरण-मयी एवं सतीशके रूपमें शरत्‌ने प्रकृतिकी उन आदिम संतानोंका अंकन किया है, जो अपनी सारी दुर्बलताओंके बावजूद भी किसी निश्चित ध्येयकी ओर अग्रसर होनेकी चेष्टा करते हैं। ये चरित्रहीन (?) व्यक्ति अस्थि-मांससे प्रशासित होते हुए भी हृदयकी उच्च वृत्तियोंसे विहीन नहीं होते। इस प्रकार एक ओर समाज उन्हें अपने अगणित बंधनोंसे दबाता है और दूसरी ओर प्राकृतिक आवश्यकताएँ। इन दोनोंके संघर्षमें उनकी सुदृढ़ भावनाओंका उभार उन्हें कीचड़के कमलका रूप दे देता है। किरणमयीमें नारीका रूप अनैतिक नहीं; वह पूर्व-नैतिक है। उसका विद्रोही व्यक्तित्व शेलीकी 'पश्चिमी हवा' के समान समाजके अनेक स्थान-च्युत, अनावश्यक विधानोंको जर्जरित पीत-पत्रोंकी भाँति उड़ा ले जाता है।

'चरित्रहीन'की नारीकी कुछ भी व्याख्या करनेके पूर्व उसकी मूल-कथा समझ लेना नितांत आवश्यक है। बात पश्चिमी बिहारके एक बड़े शहरसे प्रारंभ होती है। उपेन्द्रका संपन्न परिवार यहींका प्रवासी है और उनके अभिन्न मित्र सतीशका भी निवास-स्थान यहीं है। उपेन्द्र अपनी पत्नी सुर-बालाको शायद अपने आपसे भी बढ़कर चाहते हैं और सतीश इन दोनोंका परम भक्त है। शिक्षा आदिमें असफल होकर सतीश डाक्टरी पढ़ने कलकत्ते पहुँचता है। वहाँ मेसमें रहनेवाली दासी सावित्रीसे उसका प्रेम हो जाता

है। दास्य वृत्ति करते हुए भी सावित्री एक उच्च परिवारकी साध्वी विधवा है, इसीलिए सतीशसे प्रेम करते हुए भी वह उसे अपना नहीं पाती। इसी बीचमें एक ग़लतफ़हमीके फलस्वरूप सावित्री सतीशकी निगाहोंमें गिर जाती है, और वह मेस छोड़कर पश्चिमके मकानको चल देता है।

उपेन्द्र अपने एक बाल्य-बंधुकी बीमारीका समाचार पाकर सतीशको साथ लेकर कलकत्ते पहुँचते हैं। वहाँ अपने रुग्ण मित्र हारानकी पत्नी किरणमयीसे उनका परिचय होता है। यह दरिद्र गृह-लक्ष्मी अपने रूप-सौंदर्यमें अतुलनीय है। पहले तो यह समझकर कि ये दोनों उसके मरणासन्न स्वामीकी वसीयतमें धन लेनेके लिए आये हैं, वह सतीश एवं उपेन्द्रका तिरस्कार कर देती है। किंतु फिर बादमें वह उनको हितैषी मानने लगती है। प्रेमकी भूखी यह रमणी सतीशको भाई मानती है एवं उपेन्द्रको जीवन-सर्वस्व। कुछ दिन बाद उपेन्द्र घर वापस चले जाते हैं और इधर हारानकी मृत्यु हो जाती है।

कलकत्तेमें उपेन्द्र सतीशके साथ अपने मित्र ज्योतिषरायके यहाँ ठहरे थे। ज्योतिषकी सरल-हृदया बहिन सरोजिनी सतीशके रूप एवं शीलपर सहसा मुग्ध हो जाती है।

धनाभावके कारण सावित्री सतीशसे कुछ रुपये माँगने आती है, और दुर्भाग्यवश उसी समय स्टेशनसे उपेन्द्र और सुरबालाको लेकर सतीश भी घर पहुँचता है। उपेन्द्र सावित्रीको देखते ही सतीशके प्रति घृणाका भाव प्रदर्शित करते हुए पत्नी एवं छोटे भाई दिवाकरके साथ ज्योतिषके यहाँ चले जाते हैं। किरणमयीके यहाँ पहुँचकर उपेन्द्र दिवाकरको उसके संरक्षणमें छोड़कर चल देते हैं। कुछ समयके उपरांत उपेन्द्रकी असफल प्रेमिका किरणमयी प्रतिशोधकी भावनासे अभिभूत होकर दिवाकरको साथ लेकर अराकान चली जाती है।

उपन्यासकी कथा और भी आगे बढ़ती है, जब सतीश और सरोजिनी मिलकर बिछुड़ जाते हैं। सुरबालाकी मृत्युके उपरांत उपेन्द्र यक्ष्माके शिकार हो गये हैं। अंततः उनकी मरणशय्याके पास महेश्वरी, उनकी बहिन

सावित्री, किरणमयी, सरोजिनी, सतीश, दिवाकर आदि सभी व्यक्ति एकत्र होते हैं। मरते समय उपेन्द्र सरोजिनीका हाथ सतीशको पकड़ा जाते हैं और सावित्रीसे प्रार्थना करते हैं कि वे उनकी दो बहिनों (किरणमयी एवं सरोजिनी) तथा दो भाइयों (सतीश एवं दिवाकर) की देखभाल स्वयं ही करती रहें।

पूरे उपन्यासमें आठ प्रमुख नारी-पात्र हैं—किरणमयी, सावित्री, सुरबाला, सरोजिनी, जगततारिणी, अघोरमयी,महेश्वरी एवं दासी कामिनी। इनमेंसे किरणमयी एवं सावित्रीके चरित्रोंपर तो यह उपन्यास ही आधारित है; शेष में से सुरबाला एवं सरोजिनीका अंकन पूरा-पूरा हुआ है तथा अन्य नारी-पात्र पार्श्व-चरित्र कहे जा सकते हैं। यदि एक ओर चरित्रहीन सतीशके नामपर उपन्यासका नामकरण हुआ है, तो दूसरी ओर 'चरित्र-हीना' किरणमयी भी कथा-वस्तुकी मुख्य संवेदनामें किसी प्रकार कम नहीं है। जटिल एवं दुरूह होनेके कारण हम सर्वप्रथम उसका चरित्र-विश्लेषण करेंगे।

किरणके चरित्रको अपेक्षाकृत गहराईके साथ समझनेके लिए पृष्ठ-भूमि-स्वरूप हमें उसके पूर्वके शरत्‌के नारी-पात्रोंकी सामान्य भाव-भूमिसे कुछ परिचित होना पड़ेगा। 'चरित्रहीन'के पहलेके सभी उपन्यासोंमें शरत्‌ने नारीका चित्रण वैष्णवी भावनासे प्रेरित होकर, अत्यंत सहज तथा सरलरूप-में किया है। उनकी नारी सावित्रीके समान पति-भक्त एवं भागीरथीके समान पवित्र रही है। किंतु ऐसा जान पड़ता है कि कुछ आगे चलकर शरत् अपनी इस सृष्टिसे पूर्णतः संतुष्ट न रह सके। इस असंतोषने 'किरणमयी'के उस नारी-स्वरूपको जन्म दिया जो 'श्रीकांत' की अभयामें विकसित होकर, 'शेष प्रश्न'की कमलमें अपनी चरम सीमापर पहुँच गया है। नारीके इस रूपमें उन्होंने अटल पति-भक्ति नहीं रखी, एकनिष्ठ प्रेम नहीं रखा, वरन् मानवीके हृदयकी अस्थिरताका मनोवैज्ञानिक चित्रण किया। शरत्‌के इस नारी-समाजमें भावनाके साथ-साथ बुद्धिका भी पूरा उन्मेष दिखाई देता है। प्रेमकी अस्थिरता उतनी ही सत्य है, जितना स्वयं

प्रेम—इस तथ्यका प्रतिपादन किरण तथा कमलके चरित्रमें मिलता है। 'चरित्रहीन'में माधवी, विराज एवं ललिताके हृदयकी सरलता नहीं मिलती, वरन् किरणमयीके अँधेरे मनकी गहराइयोंसे सामना करना पड़ता है, जिसके विषादपूर्ण प्रभावका निराकरण अपनी सारी पवित्रताके साथ सुरबाला तक नहीं कर पाती।

किरणमयी नामकी ध्वनिमें एक परीका-सा स्वरूप छिपा जान पड़ता है। पर यह परी यदि चंद्र-किरणके समान शीतल है तो सूर्य-किरणकी भाँति प्रखर भी। इस 'दरिद्र गृहलक्ष्मी'का प्रवेश अंधकारमें अपूर्व ज्योति भर देता है। किंतु उसका रूप निष्ठुर तथा मादक है; सतीशकी आँखोंमें वह प्रथम भेंटके समय 'प्रेत-लोककी पिशाचिनी'सी जान पड़ती है, परंतु बादमें सतीशको ही अपनी भूलका सबसे अधिक भान होता है। अपूर्व सौंदर्यके साथ-साथ किरणमें बुद्धिका अभाव नहीं है, यह हमें उसके व्यवहारसे स्पष्ट जान पड़ता है।

किरण-जैसा सौंदर्य सतीशकी 'आँखोंके आगे नहीं गुजरा, न जीवित न चित्रित'। पर यह निश्चित है कि सौंदर्यके अनुपातसे उसके मनमें ममता नहीं है। कीट्सकी 'ला बेल देम साँ मर्सी' एवं रवीन्द्रकी 'उर्वशी'की भाँति उसका रूप भी मादक है, किंतु उसमें दयाका अधिक प्रवेश नहीं; अवश्य ही इसकी निष्ठुरताका एक निश्चित कारण है। अपने जीवनमें उसे किसी का भरपूर प्रेम न मिल सका। स्नेहके अभावमें उसका हृदय रूखा हो गया है; उसकी वासना जाग्रत हो उठी है।

किरणमयीका अस्तित्व शारीरिक एवं मानसिक वेदनाकी कहानी है। 'सास अघोरमयीने कभी उसे लाड़-प्यार नहीं किया, बल्कि जहाँ तक हो सका उसे सताती रही। पतिने भी कभी उसपर प्रेम प्रकट नहीं किया।' ऐसी परिस्थितिमें उसके द्वारा सतीत्वकी मर्यादाकी उपेक्षा स्वाभाविक ही है। अपनी साससे तिरस्कृत होनेपर वह स्वयं कहती है, "शोक और ताप केवल तुम्हींको तो नहीं है। मैं भी तो मनुष्य हूँ, जब तुम इसे भूल जाती हो, तभी मुझे दुःख होता है, नहीं तो हज़ार बातें कहनेसे भी, गुस्सा नहीं आता।"

इस 'रहस्यमयी सुंदरी' के ऊपर विषादका ऐसा आवरण पड़ा रहता है, जिससे वह कभी-कभी ही मुक्त हो पाती है। उसके सौंदर्यका सतत ज्ञान उसे रूप-गर्विता बनाये रहता है, और जब उसके रूपका जादू उपेन्द्रपर नहीं चल पाता तो उसका हृदय घोर दुःखसे अभिभूत हो उठता है। वह दिवाकरके संपर्कमें अपनेको सँभाले रहती है, किंतु जब उसके और दिवाकरके पारस्परिक संबंधपर उपेन्द्र अकारण शंका करते हैं तो उसकी प्रतिशोधकी भावना अपनी चरम सीमापर पहुँच जाती है।

उपेन्द्रके आनेके पूर्व वह अपने घर आनेवाले एक डाक्टरसे 'प्रेम' करने लगी थी, किंतु ज्योंही अपने रुग्ण पतिके बंधुको उसने देखा, उसका हृदय उनकी ओर बरबस ही खिंच गया। डाक्टरके उपकारका मूल्य उसने रमणीकी सर्वप्रिय वस्तु आभूषण देकर चुकाया, और उसे फिर अपने यहाँ आनेका निषेध कर दिया। किरणमयीके जीवनकी दृढ़तासे उपेन्द्रको भी स्त्रियोंके संबंधमें अपना मत परिवर्तित करना पड़ा। अबतक वे उन्हें 'अबला' ही समझते थे, किंतु शीघ्र ही वे जान गये, 'ऐसी स्त्रियाँ भी हैं जिनके आगे पुरुषोंका उन्नत मस्तक आप ही झुक जाता है, ज़ोर नहीं चलता, सिर झुकाना ही पड़ता है; ऐसी स्त्री किरणमयी है।' वस्तुतः किरणका जीवन, धन एवं स्नेहके अभावमें तप्त मरुस्थलके समान हो गया है, जिसमें दूर-दूरतक हरियालीका नामो-निशान नहीं। वह प्रारंभसे लेकर अंततक विपत्तियोंकी कठोरतासे अनवरत युद्ध करती है। जैसा उसका उग्ररूप प्रखर है, वैसा ही उसका शांतिपूर्ण विरोध भी।

किरणमयी सामाजिक विधि-विधानोंसे बिल्कुल नहीं डरती। वह अकेले घरमें, दिवाकरको अपने साथ, अपने संरक्षणमें रखनेके लिए तैयार हो जाती है। और तब उपेन्द्र भी समझ पाते है, 'सौंदर्यका जो असीम समावेश उसमें है, वह मानो अग्नि-शिखाकी तरह लहराकर ऊपर उठ रहा है, इसे आँखोंसे देख तो लेना चाहिए, पर स्पर्श नहीं करना चाहिए।' किंतु उपेन्द्रको यह क्या मालूम कि यह अग्निशिखा केवल उन्हींके लिए शीतल भी हो सकती है।

किरणका गत जीवन बड़े दुःखमें बीता है। मायका कहाँ है, यह उसे मालूम नहीं। मामाके यहाँ पली थी पर अब उनका भी कोई समाचार ज्ञात नहीं। दस वर्षकी उम्रमें ही विवाहित होकर वह पतिके यहाँ आई है। और यहाँके व्यवहारने तो उसे जीवन्मृत बना रखा है। प्रेमके स्थानपर उसे उसके पतिने विद्या-दान दिया है। और इसीलिए वह पर्याप्त अध्ययन-शील एवं मननशील है। उसकी अपूर्व तर्क-शक्तिमें हमें 'शेष प्रश्न'की कमल का पूर्व-रूप स्पष्ट दिखाई देता है। मिथ्या एवं सत्यका अंतर उपनिषदोंकी कहानीके प्रसंगमें स्पष्ट करती हुई वह कहती है, "यह बात सदा याद रखनी चाहिए कि मिथ्याके भुलावेसे सत्यका प्रचार नहीं हो सकता .. मिथ्या सदा पाप है, किंतु मिथ्यामें सत्यको मिलाकर बोलनेके समान संसारमें दूसरा पाप क्या हो सकता है ?" इसीलिए उसे धार्मिक ग्रंथोंमें आस्था नहीं। 'वे सत्यसे बड़े नहीं हैं। सत्यके सामने इनका कोई मूल्य ही नहीं वह आत्माको नहीं मानती पर ईश्वरको 'अस्वीकार भी नहीं करती।' इन सब बातोंसे ज्ञात होता है कि किरणमयी भावनाका प्रतिरूप होते हुए भी बुद्धिवादी है। वह मनुष्यको गुण-दोषोंसे लपेटकर छोटा-मोटा देवता मान सकती है, पर ब्रह्मकी सत्तामें उसका विश्वास नहीं। इसी कारणसे बड़े बड़े धर्माचार्योंका वह तिरस्कार कर देती है, उन्हें दंभी बताती है।

ऐसा जान पड़ता है कि किरणमयीके चरित्रके माध्यमसे शरत्‌ने परंपराओं एवं रूढ़ियोंके गर्त्तमें गिरते हुए समाजको निर्मल दीप-आलोक दिया है, यद्यपि स्वयं उस दीपके आस-पाससे अंधकार एवं कालिमाका पूर्ण लोप नहीं हो सका है। प्राचीनके प्रति विद्रोहका जो भाव हमें कमलमें मिलता है, और जिसे उसने इन शब्दोंमें व्यक्त किया है, "वस्तु प्राचीन होती है कालके धर्मसे, परंतु उसे अच्छा होना पड़ता है अपने गुणोंसे", वह किरणमयीके चरित्रमें अपनी प्रारंभिक स्थितिमें मिलता है। उसका व्यक्तित्व आदर्शके आग्रहमें यथार्थकी अवहेलना नहीं करता।

किरणमयीका तीव्र व्यक्तित्व केवल एक स्थानपर अपनी हार मानता है—उपेन्द्रके सामने। उसके रूपकी मदिरा उपेन्द्रको मत्त नहीं बना पाती

इससे वह अत्यंत क्षुब्ध है। और जब उसे यह ज्ञात होता है कि उपेन्द्रकी इस चारित्रिक दृढ़ताकी पृष्ठभूमिमें सुरबालाका निबिड़ प्रेम है, तो उसकी ईर्ष्या बरबस उभर पड़ती है, अन्यथा उसकी सज्जा तपःपूत एवं असाधारण है। विधवाका तेज शरत्की प्रमुख मान्यताओंमेंसे है। 'उसके (किरणके) चेहरेकी ओर देखते ही आँख आप ही उसके पाँवोंकी ओर झुक जाती है।' उपेन्द्रके संबंधको अपवाद-स्वरूप छोड़कर, किरणमयी एक असहाय प्रेमिका नहीं है।

परंतु उसके व्यक्तित्वको एक स्थानपर और झुकना पड़ता है। सुरबालाके अटल विश्वासके सम्मुख उसका तर्क हार मान लेता है। प्रथम दृष्टिमें ही सुरबालाके चरित्रका शासन वह स्वीकार कर लेती है। इसका मूल कारण शायद यही है कि किरणके चरित्रमें जो कुछ असत् है वह सुरबालाके चरित्रमें निर्मल एवं पवित्र हो गया है। इसीलिए अपने सारे प्रखर तर्कोंके साथ भी वह सुरबालाके 'सीधे-साधे शब्दों और लड़कपनसे' विचलित हो जाती है। और तभी वहाँसे वापस घर पहुँचनेपर उसका गृहिणी-स्वरूप निखर पड़ता है।

किरणमयीके चारित्रिक अवयवोंमें उसका प्रेम सर्व-प्रमुख है। वह मुक्त प्रेमका समर्थन करती हुई भी व्यभिचारिणी नहीं कही जा सकती। प्रतिदानके अभावमें वह स्वामीसे प्रेम न कर सकी, यह वह स्वयं स्वीकार करती है। और जब ऐसे समयमें उसकी चित्त-वृत्तियाँ अस्थिर हो रही थीं तभी उपेन्द्रका आगमन हुआ। उसका सारा प्रेम उन्हींपर केन्द्रित हो गया। व्यक्तित्वकी दृढ़तामें उसने उन्हें अपना गुरु माना और कहा, "प्रेमकी लालसा मेरे अंदर कितनी प्रबल है, यह तुमको देखकर पहले-पहल जाना है. . .मैंने कितनोंको ठगा है, लेकिन तुमको न ठग सकूँगी।" पर यह नियतिका व्यंग है कि उसने अपना नव्य एकनिष्ठ प्रेम एक ऐसे व्यक्तिको दिया जो उसको स्वीकार करनेमें नितांत असहाय था। इसीलिए 'चरित्रहीन'का अंत दुखद है, एवं किरणमयीका जीवन वेदनाकी मार्मिक गाथा बन गया है। नेत्रहीनके लिए ज्योतिके समान उपेन्द्र उसके पास आये, परंतु वह किसी भी प्रकार

उन्हें प्राप्त न कर मकी। सुरबालाने उसका पति-प्रेम विकमित किया, परंतु तबतक बहुत देर हो चुकी थी।

किरणमयीका प्रेम सेक्स-रहित नहीं माना जा सकता, वरन् उसके प्रेममें तो वासनाकी ही प्रधानता है। वह मानती है कि 'संतान धारण करनेके लिए जो सब लक्षण विशेष उपयोगी हैं, उनकी समष्टिका विकास ही स्त्रीका स्वरूप है।....स्त्रीका बाल्य-रूप मनुष्यको मुग्ध कर सकनेपर भी उसे उन्मत्त नहीं कर सकता और जब वह संतान धारण करनेकी उम्र पार कर जाती है, तब फिर ठीक वही बात रह जाती है। स्त्रीकी ही नहीं, पुरुषकी भी यही अवस्था है। तभी तक उसमें रूप रहता है, जबतक वह संतान पैदा कर सकता है। यह संतान उत्पन्न करनेकी योग्यता ही उसका रूप है—यौवन है। संतान उत्पन्न करनेकी इच्छा उसका प्रेम है'। किरणमयी-के चरित्रमें पाशविक भावनाओंका अत्यधिक उभार उसकी अर्द्ध-दमित वासनाके फलस्वरूप है। इसीलिए निर्मल प्रेमकी बात उसके मनमें नहीं आ सकती। स्वर्गीय प्रेम एवं पाशविक वृत्तियोंको वह एक ही वस्तु मानती है। वह प्रेममें अच्छे-बुरेका भी विभाग नहीं करती; प्रेम-मात्र स्वाभा-विक एवं प्राकृतिक है, यही उसकी एक मान्यता है। 'मनुष्य जन्म लेनेके बादसे जबतक अपनी देहमें सृष्टि-शक्तिका संचय नहीं करता, तबतक प्रेमका सिंहद्वार उसके आगे बंद ही रहता है। वह सिंहद्वार प्रवृत्तिकी ताड़नासे ही उन्मुक्त होता है...... विश्वभरमें सृष्टिका जो यह अविच्छिन्न खेल हो रहा है—वह रूपका ही खेल है—उसे स्वर्गीय स्वीकार नहीं करनेसे कुंठित या लज्जित होनेकी कोई बात नहीं हैं।' जैसा हम कह चुके हैं, किरण-मयीके प्रवृत्ति-प्रधान प्रेममें उच्छृंखल एवं उद्दाम वासनाका यह उभार उसकी सेक्स संबंधी शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकताओंकी पूर्त्ति न होनेसे है। इस क्षेत्रमें समग्ररूपसे उसका चरित्र 'हिस्टीरिक'-सा हो गया है।

प्रेमको शारीरिक वृत्तिका प्रतिरूप मानते हुए वह अपना प्रमुख तर्क देती है—"जो कोई स्वर्गीय प्रेमका उपभोग करना चाहेगा, वह इतना नहीं

कह सकता, 'मैं प्रवृत्तिकी ताड़नासे परे हूँ,' प्रेम इतनी आसान चीज़ नहीं है......जीवनका प्रत्येक अणु-परमाणु, प्रत्येक रक्तकण अपनी उत्कृष्ट परिणतिमें विकास पानेका लोभ संवरण नहीं कर सकता। जिस देहमें उसका जन्म होता है, उस देहमें उसकी परिणतिकी निर्दिष्ट सीमा जब पूरी हो जाती है, तब वही परिणति उसकी जवानी कहलाती है। केवल तभी वह दूसरी देहके संयोगसे सार्थक होनेके लिए रग-रग और नस-नसमें विप्लवका जो ताण्डव नृत्य मचाती है, इसे ही पंडित लोगोंके नीति शास्त्रोंमें पाशविक और घृण्य बताया गया है। इसका तात्पर्य न समझकर ही पंडितोंने इसे घृणित कहा है, बीभत्स बताकर संतोष कर लिया है......कोई प्रेम कभी घृणाकी वस्तु नहीं हो सकता।" इन पंक्तियोंमें एक ओर किरणमयीकी अतृप्त वासना बोल रही है और दूसरी ओर उसकी बिखरी हुई विचार-शक्ति। वह तो प्रेमको दुर्दमनीय एवं प्राकृतिक मानती है, इसीलिए उसके भले-बुरेका न्याय नहीं हो सकता। उसके जीवन-दर्शनमें भूलोंके लिए पर्याप्त स्थान है। 'जब पाप दूर करनेका सामर्थ्य न हो, तब यदि सहन करनेकी क्षमता नहीं रहेगी, तो इससे क्या सुविधा होगी?' वस्तुतः अन्याय, अधर्म, अक्षमताको क्षमाकर प्रश्रय देना धर्मका ही अनुशासन है।

किरणमयीके चरित्रके उक्त विवेचनसे यह स्पष्ट है कि उसके व्यक्तित्व-में 'अपरिमित संयम (व्यावहारिक) और असीम अहंकार'का पर्याप्त विकास हो चुका है। इसीलिए वह ईश्वर, लोक-परलोक आदिको नहीं मानती। उसके अंदरके इस अहंका अनुभव करके ही उपेन्द्रने कहा था, "आप किसीसे प्रेम नहीं कर सकेंगी, यह आपकी सामर्थ्यके बाहर है; आप केवल सर्वनाश कर सकेंगी।" परंतु यह कठोर व्यंग्य है कि इतना तिरस्कृत होनेपर भी वह उपेन्द्रके आसनपर कभी किसीको न बैठा सकी। और जब उपेन्द्रने उसको प्रेमका प्रतिदान नहीं दिया तो प्रतिशोधके आवेशमें वह अपने साथ दिवाकरको लेकर अराकान चल दी, जिससे उपेन्द्र भी सिर उठाकर बात करने योग्य न रह सके। इसके लिए वह दिवाकरको अपने रूप और यौवन-के जादूमें फँसाकर उसे धोखा देती रही; यहाँतक कि उसे अपने साथ सोने-

के लिए बाध्य किया। परंतु दिवाकरसे उसने प्रेम कभी नहीं किया और न कर सकती थी। इस झूठे प्रेम-प्रदर्शनसे उसके हृदयकी कठोरताकी भली-भाँति व्यंजना होती है। अपने कलेजेपर पत्थर रखकर ही वह दिवाकरको मनमें छोटा भाई मानते हुए भी, अपने आपको विधवा बताकर—उसे अपनी ओर ललचाती रही। और यह सब उसने उपेन्द्रसे अपने भग्न हृदयके प्रतिशोधके लिए किया। 'समाजके दंभको धक्का पहुँचाना' तो उसका आनुषंगिक उद्देश्य था। वह स्वयं स्वीकार करती है, "एक और मनुष्यका सर्वनाश करनेका निश्चय करके ही मैंने तुम्हारा सर्वनाश किया।" इस प्रकार हम देखते हैं कि अपनी प्रसिद्ध कविता 'उर्वशी' में कविगुरु रवीन्द्रने नारीके जिस रूपसि-जादूगरनी स्वरूपकी चर्चा की है, उसका अधिकांश हमें किरणमयीके चरित्रमें मिल जाता है; परंतु क्योंकि किरणकी परि-स्थितियाँ इसके लिए उत्तरदायी हैं, इसीलिए हम उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं।

जैसा हम कह चुके हैं, इतना सब हो जानेपर भी, किरणमयीको व्यभिचारिणी नहीं कहा जा सकता। अराकानमें सेठके अनेक प्रलोभनोंको वह ठुकरा देती है। सतीश कहता है, "तुम कुलटा हो जाओगी, यह मैं मर जानेपर भी विश्वास न करूँगा।" उपेन्द्र भी अंतमें उसके प्रेमको मानते हुए उसकी प्रशंसा करते हैं। अराकानसे लौटनेपर तो उसका चरित्र अत्यंत मार्मिक एवं स्फटिक-सदृश निर्मल हो जाता है जैसे अँधेरे स्थानके कीचड़में पड़ी हुई कोई मणि फिर बाहर निकाल ली जाय। उपेन्द्रको मृत्युसे बचाने-के लिए वह अर्द्ध-विक्षिप्तावस्थामें आस्तिक हो जाती है। उनसे वह कहती है, "मेरे आँचलमें कालीमाईका प्रसाद बँधा हुआ है, देवर जरा खाओगे? आह! कितनी रोई, कितनी तुम्हारे लिए प्रार्थनाएँ कीं, कहा—माँ काली, देवरकी बीमारी दूरकर मुझे दे दो।" प्रेममें पागल एवं वेदनासे विक्षुब्ध नारीका यह स्नेह पाठकके हृदयको द्रवीभूत कर देता है, और यह नियति चक्र है कि जब उपेन्द्र अपनी अंतिम साँस ले रहे थे उस समय 'किरण-मयी उद्वेगरहित हो, गहरी नींदके खर्राटे भर रही थी।' वस्तुतः उपन्यास-

की यह अंतिम पंक्ति, अपने प्रेममें असफल, अपने प्रतिशोधमें असफल एवं अपने जीवनमें असफल किरणके चरित्रको 'फिनिशिंग टच' देती है, जिसके बिना उसका चरित्र अधूरा रह जाता।

किरणमयीके व्यक्तित्वका इतना विश्लेपण करनेके उपरांत अब हम बहुत संक्षेपमें उसके चरित्रकी समस्यापर विचार करेंगे। वस्तुतः नारीका जीवन उसके प्रेमका पर्याय है। किरणमयी तीन व्यक्तियोंसे प्रेम करती है—सतीश एवं दिवाकरसे भाईके रूपमें तथा उपेन्द्रसे जीवन-सर्वस्वके रूपमें। पति-प्रेमका उसे अधिक अवसर ही नहीं मिलता। किरणके इस प्रेमकी समग्र रूपसे दो प्रमुख समस्याएँ हैं—एक है उसके प्रेममें व्यभिचार-बुद्धि, एवं दूसरी है उसके प्रेममें वासनाका अत्यधिक उभार। जहाँतक व्यभिचार-बुद्धिका संबंध है, किरणको अपने विवाहित जीवन एवं विवाहपूर्वके जीवनमें कोई ऐसा व्यक्ति न मिल सका, जिसके ऊपर वह अपने हृदयकी वृत्तियोंको केन्द्रित कर सकती। उसका मन मरु-भूमिके थके-हारे पथिकके समान हो गया है जो किसी भी हरे-भरे 'ओसिस' को देखकर, उसकी ओर बरबस बढ़ने लगता है। परंतु किरणके हृदयकी यह अस्थिरता तभीतक है जबतक वह उपेन्द्रको नहीं देखती। उपेन्द्रको देखनेपर वह उन्हें आत्म-समर्पण-सा कर देती है, और अंततक उन्हींकी स्मृति सँजोये रहती है। इसीलिए किरणको व्यभिचारिणी नहीं कहा जा सकता; कामिनी-द्वारा वेश्या कहकर संबोधित होनेपर वह मूर्च्छित हो जाती है। यहाँ एक बात ध्यान देनेकी और है; किरण सबको प्रेम नहीं कर सकती। उसके हृदयमें तरलताकी अपेक्षा निष्ठुरताका आधिक्य है। इसका कारण कदाचित् उसका अनुपम रूप हो सकता है। कहा जाता है कि जिन व्यक्तियोंका सौंदर्य असाधारण होता है, वे अधिक स्नेहशील नहीं होते, क्योंकि सौंदर्य और प्रेम पर्यायवाची होते हैं, अतः जिसके पास पर्याप्त सौंदर्य होता है उसे बाह्य सौंदर्यकी—बाह्य प्रेमकी अपेक्षा नहीं होती। किरणके प्रेमकी दूसरी मुख्य समस्या है उसमें वासनाका उभार। इसके संबंधमें पहले ही कहा जा चुका है कि वासनाका यह उभार उसकी शारीरिक एवं मानसिक सेक्स-आवश्य-

कताओंकी पूर्त्ति न होनेके कारण है। कुछ भी हो, यह रहस्यमयी सुंदरी प्रधानतः रूपकी जादूगरनी है। नियतिसे उसे कोई शिकायत नहीं, अपनेसे उसे कोई विशेष असंतोष नहीं।

किरणके उपरांत उपन्यासमें दूसरा महत्त्वपूर्ण चरित्र सावित्रीका है। प्रधानताकी दृष्टिसे दोनों पात्रोंमें कोई अंतर नहीं। सावित्रीका चरित्र अपेक्षाकृत कम अंकित होनेपर भी अधिक उभर सका है; उसका व्यक्तित्व उपन्यासमें व्यंजनात्मक है। वह एक अच्छे कुलकी बाल-विधवा है, जो एक दुष्ट व्यक्तिके फेरमें पड़कर अपना सम्मान तो गँवा चुकी है, पर उसका सतीत्व सुरक्षित है। सतीशके प्रति असहाय प्रेम उसके चरित्रकी मुख्य संवेदना है। प्रथम बार जब हमें कलकत्तेकी मेसमें एक दासीके रूपमें उसके दर्शन होते हैं, तो उपन्यासकार उसका वर्णन करता है, "एकहरा बदन था, रंग गोरा और अंग-अंग साँचेमें ढले हुए-से थे। उम्र लगभग बाईस-तेईस वर्षकी होगी। लेकिन देखनेसे इससे भी कम उम्रकी मालूम होती थी।" आगे चलकर जब वह कहती है, "मेरे कोई बाबू-साबू नहीं है, मेरे बाबू तो आप—आप लोग ही हैं" तो हमें उसका सतीशके प्रति अनुराग स्पष्ट लक्षित होता है, परंतु इस 'चरित्रहीन'के प्रति एक विशेष आकर्षण रखती हुई भी, वह उसे प्राप्त करनेकी चेष्टा नहीं करती। वह सतीशको अपना वंश-परिचयतक नहीं बताती, यद्यपि वह स्वयं कहता है, "न तो नीचोंका-सा तुम्हारा व्यवहार है, न वैसी बातचीत और न सूरत-शक्ल ही।" आखिर अपने नौकर बिहारीसे उसे यह ज्ञात हो जाता है कि वह 'भले घरकी ही लड़की है।'

प्रेमका आकर्षण दोनों ओरसे होता है। सतीश सावित्रीको अपने अधिक निकट लाना चाहता है, परंतु वह पास होती हुई भी दूर ही रहती है। जब अनायास ही वह उसके सम्मुख प्रेमका प्रस्ताव रखता है तो वह कहती है, "यह चौथी बार है। इसके पहले भी तीन महाशयोंने मुझे यही चीज़ देनी चाही थी....यह कूड़ा-करकट बटोरकर रखनेकी जगह मेरे पास नहीं है।" वास्तविक बात यह है कि इस क्षेत्रमें एकबार धोखा खा जानेपर

वह कुछ सचेत रहती है और फिर यदि वह सतीशपर विश्वास कर भी ले, तो अपनेको कलंकित समझती हुई अपने संबंधसे वह सतीशको नीचे नहीं गिराना चाहती। इस प्रेममें भोगसे अधिक त्यागका महत्त्व है।

सतीश सावित्रीकी इस मनोदशाको नहीं समझ पाता और बार-बार सोचता है, "सावित्री उसे निरंतर क्यों खींचती है और निकट आनेपर क्यों ऐसा निष्ठुर आघातकर दूर हटा देती है।" वह भलीभाँति जानता है कि पतिता होनेका कोई भी चिह्न इस मुखड़ेमें नहीं है, और साथ ही वह यह भी समझता है कि सावित्री उसकी परम हितेच्छु है, परंतु उसे यह ज्ञात नहीं कि सावित्री उससे प्रेम करती हुई भी उसे अपनेसे दूर रखकर उसकी हित-साधनामें संलग्न है। किरणमयी सावित्रीका पूरा परिचय प्राप्त किये बिना ही सतीशसे कहती है, "वह तुमसे अधिक तुम्हारी भलाई चाहनेवाली है, यह बात कभी न भूलना।" वस्तुतः इस एक वाक्यमें ही सावित्रीके चरित्रकी मूल संवेदना छिपी हुई है। और तभी सतीशका बुड्ढा नौकर बिहारी कहता है, "बेटी, तुमको एक बार देख लेनेपर पशु-पक्षी भी नहीं भूल सकते।"

सावित्रीकी सहानुभूति अत्यंत गहरी एवं उसकी संवेदन-शक्ति अत्यंत तीव्र है। वह यह नहीं चाहती कि उसके प्रेमकी दृढ़ताको समझकर सतीश उसे प्राप्त करनेकी चेष्टा करे। वह चाहती है कि ग़लतफ़हमीमें पड़ा हुआ सतीश उससे घृणा ही करता रहे। वह सतीशसे कहती है कि वह एक दासी है, रुपया मात्रसे ही उसका प्रेम है, किंतु दूसरी ओर वह सब कुछ जाननेवाले बिहारीसे आग्रह कर जाती है कि वह बाबूको यह कभी न बतावे कि सावित्री उस समय झूठ बोली थी। प्रेमीके लिए आत्म-त्यागका ऐसा उदाहरण हमें प्रायः नहीं मिलता।

सावित्रीके चले जानेपर कभी-कभी सतीशको उसकी याद आ जाती है। वह सोचता है, "युवती रमणीका मन पाना एक बात है; किंतु उसका व्यवहार कर सकना दूसरी बात है" किंतु सावित्रीके चरित्रका वास्तविक मूल्य तो बिहारी जानता है। सरोजिनीसे वह कहता है, "मैंने उन्हें बराबर

अपनी कन्याकी तरह जाना है और माताकी तरह उनका आदर-मान किया है। नहीं जानता किस शापसे पृथ्वीमें जन्म लेकर इतना दुःख पाती है? अहा वे साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपा हैं....सबको वे समान भावसे देखती थीं।" आगे भी वह बताता है, "बाबू (सतीश) उन्हें इतना प्यार करते थे, तो भी उनसे ऐसे डरते थे, जैसे बाघसे बकरी डरती है....वे बड़ी तेजस्विनी थीं।"

जिस दिन सावित्रीको सतीशके घरमें बैठा देखकर उपेन्द्र वापस लौट गये थे, उस दिनसे उनके मनमें इस अज्ञात-कुल-शील रमणीके लिए घृणाका भाव उत्पन्न हो गया था। परंतु संयोगवश पुरीमें उनकी भेंट घरकी पुरानी दासी मोक्षदासे हो गई। उसने बताया, "उस छोकरी (सावित्री) ने न जाने किन आँखोंसे छोटे बाबूको देखा कि उन्होंने उसके लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया। पर इतना करनेपर भी क्या उसने छोटे बाबूको कभी अपना बदनतक छूने दिया? कभी नहीं। छोकरीके चेहरेपर एक अपूर्व तेज था।" और तब चारित्रिक महत्ताके प्रतिरूप उपेन्द्रको अपनी भूलका ज्ञान हुआ। वे जान गये, 'उसे सब कोई चाहता था। जैसा रूप था, वैसा ही गुण था और वैसी ही दया-ममता भी उसमें थी।' रूप, गुण और ममताके इस संगमने सावित्रीके चरित्रको त्रिवेणी-सदृश पवित्र बना दिया है।

जब उपेन्द्रको सावित्रीका पूरा परिचय मिल जाता है तो वे उसे अपनी बहिन मानने लगते हैं। उन्हें उसके व्यक्तित्वकी दृढ़तापर गर्व होता है। वे उसे पृथ्वीकी किसी भी स्त्रीसे हेय नहीं मानते। वस्तुतः जो कोई उसकी छायामें आता है, उसे अंततक दबकर ही रहना पड़ता है।

सावित्रीके चरित्रका सबसे अधिक निखार उस समय द्रष्टव्य है, जब वह सतीशको सरोजिनीके हाथोंमें सौंपकर उपेन्द्र भैयाके साथ जाना चाहती है। उस समय वह कहती है, "मैंने बहुत दिनोंसे तुमको इतना दुःख दिया; किंतु किसी तरह अपनी यह देह तुमको न सौंप सकी। पर मन तुम्हारा ही है। उसपर चिरकालसे तुम्हारा ही अधिकार है।" सावित्री अब योगिनीसे वियोगिनी हो जाती है। जिस समय मरणासन्न उपेन्द्रने सरोजिनीका हाथ सतीशको पकड़ा दिया, उस समय 'उसकी चिंताकी, उसकी

वासनाकी, उसके परम सुखकी, चरम दुःखकी, उसकी दुस्सह वेदनाकी आँखोंके आगे ही समाधि हो गई, किंतु उसने गहरी साँसतक न निकलने दी।' उसका अस्तित्व अब जैसे निष्काम हो गया। उसके ऊपर अपने दो भाइयों, तथा दो बहिनोंका भार छोड़कर उपेन्द्रके प्राण-पखेरू उड़ गये। निष्कलंक प्रेम एवं अपार ममताके साथ सावित्री सबकी देख-रेख करनेके लिए रह गई——जलमें कमल-पत्रकी तरह।

सावित्रीकी ही कोटिका उपन्यासमें एक दूसरा व्यक्तित्व सुरबालाका है। पति-प्रेमको जीवनका सर्वस्व मानती हुई नारीका यह रूप अपनी प्रकृतिमें स्वर्गीय है। उसके ऊपर अनुशासनकी कठोरताका आवरण है, परंतु हृदय मंदाकिनी सदृश तरल है। प्रीति एवं स्नेहसे निर्मित उसका चरित्र एक शांत स्निग्धताका आभास देता है। विभिन्न पशु-पक्षीतक उसके आश्रयमें स्थान पाते थे, इसीलिए उसका नामकरण 'पशुराज' अथवा 'पशु'कर दिया गया है।

पति-प्रेम उसके व्यक्तित्वकी मुख्य संवेदना है। उपेन्द्रके साथ अपने संबंधको वह शाश्वत मानती है——"मैं जहाँ, जिस घरमें जन्म लेती, वहाँ तुम्हें ज़रूर जाना पड़ता।" वस्तुतः वह प्रेमका आधार भौतिक न मानकर आत्मिक मानती है। इसलिए बाह्य रूप-रंग उसकी दृष्टिमें विशेष महत्त्व-पूर्ण नहीं। वह दिवाकरसे कहती है, "इस बातको सदा याद रखना कि दुनियामें आदमीके लिए बाहरी सुन्दरता ही सब कुछ नहीं है। अथवा केवल सौंदर्य-चर्चा ही विवाहका उद्देश्य नहीं है।" एक शब्दमें सुरबाला 'कट्टर हिंदू' है। यथारीति जप-तप उसका नित्य-आचार है। उसकी काया तपःपूत है, एवं विचार-शक्ति उर्वर। उपेन्द्रके शब्दोंमें 'अधिक पढ़नेका तो उसे मौक़ा नहीं मिला है; पर उसमें तर्क करनेकी बुद्धि बहुत सूक्ष्म है।' विश्वास, निष्ठा एवं आस्तिकताकी सुदृढ़ भूमिपर ही उसका व्यक्तित्व निर्मित है। और इसी विश्वासके सम्मुख किरणमयीकी प्रखर बुद्धि झुक जाती है।

एक प्रकारसे सुरबालाके चरित्रमें असत्‌का प्रवेश हो नहीं पाया है। 'वह जन्म भरमें झूठी बात कभी बोल ही नहीं सकती।' अपने इन्हीं आचार-

विचारोंके कारण वह मानस-चक्षुओंसे भगवान्‌का दिव्य दर्शन कर लेती है। किरणमयीने, शायद चरित्रकी विषमताके कारण, सुरबालाको सबसे अधिक पहचाना है। वह उपेन्द्रसे कहती है, "तुम्हारी सुरबाला सती स्त्री है, और है तुम्हारे हृदयकी परम पवित्रता। वह स्फटिककी भाँति स्वच्छ है और वज्रके समान कठोर" मरते-मरते वह उपेन्द्रसे फिर मिलनेकी आशा सँजोये रहती है। वस्तुतः सुरबालाके अंकनमें शरत्‌की उच्च चरित्रमें आस्था स्पष्ट दिखाई देती है।

'चरित्रहीन'में सरोजिनीको एक सीधी-सरल प्रेमिकाके रूपमें अंकित किया गया है। उसका चरित्र अपेक्षाकृत कम चित्रित होनेपर भी, मर्म-स्पर्शी है। 'चित्रलेखा'की यशोधराकी भाँति उपन्यासके नारी-पात्रोंमें मांसलता शायद सबसे अधिक उसीमें है। सतीशके प्रति उसका प्रेम बसंतके पहले फूलके समान एकाएक ही खिल उठता है। हृदयकी नैसर्गिक भावनाका स्वरूप सरोजिनीके व्यक्तित्वमें पूरा-पूरा उभरा है। उसके पिता पश्चिमी सभ्यताके अनुयायी थे, परंतु माँ नितांत भारतीय रंगमें रँगी है। इन दोनोंका ही प्रभाव उसके ऊपर पड़ता है। अपनी सारी लज्जा एवं नम्रताके साथ वह आधुनिका है। उसके बाह्यावरणमें उसके भारतीय संस्कार छिप नहीं गये हैं। तभी तो उसका गृहिणी-वेष देखकर सतीश कह उठता है, "अहा! कैसी अच्छी लगती हो, मानो साक्षात् लक्ष्मी हो!" वस्तुतः उसकी प्रकृति प्राच्यकी है, वेष-भूषा भले ही प्रतीच्यकी हो। सतीशकी उच्छृङ्खलताको वशमें करनेके लिए सरोजिनीकी शांत प्रभविष्णुता ही आवश्यक है, यह बात दूरदर्शी उपेन्द्रने भलीभाँति समझ रक्खी थी।

'अघोरमयी' एवं जगततारिणीमें हमें जननीके दो स्वरूप दिखाई देते हैं। दोनोंके नामोंकी ध्वनियोंमें जितना वैषम्य है, उतना ही वैषम्य उनके चरित्रोंमें है। अघोरमयीका व्यक्तित्व दुर्बल एवं कुछ कलहप्रिय है, परंतु जगततारिणीका व्यक्तित्व दृढ़ तथा शांत है। पर वात्सल्यकी मात्रा शायद दोनों नारियोंमें समान रूपसे है।

दासियोंमें हमें मोक्षदा तथा कामिनीके चरित्र मिलते हैं। इन दोनोंके सहारे ही उपन्यासमें शिष्ट हास्यकी कहीं-कहीं योजना की गई है। पर साधारण गृहदासियोंके समान निर्मल व्यक्तित्व दोनोंमें-से किसीका भी नहीं। 'चरित्रहीन' के नारी-पात्रोंमें उपेन्द्रकी बहिन महेश्वरीका यत्र-तत्र उल्लेख भर है। विधवा-जीवनकी सौम्यता एवं तेजस्विता उनके अंदर अधिक नहीं मिलती।

'चरित्रहीन' में संपूर्ण नारी-समाजकी व्याख्या करनेके उपरांत अब हम बहुत संक्षेपमें उसकी समग्ररूपसे विवेचना करेंगे। 'चरित्रहीन' में प्रेमका दुहरा संघर्ष है। एक नायक उपेन्द्र है, जिसकी सफल 'नायिका' सुरबाला है, एवं असफल नायिका किरणमयी। दूसरी ओर सतीश है, जिसकी सफल नायिका सरोजिनी है, तथा असफल नायिका सावित्री। उपन्यासके अधिकांश भागमें प्रेमकी इन उलझनोंका ही अंकन है। उसकी गठन इस बातका प्रमाण है कि सेक्स संबंधी सामाजिक विधि-निषेध (Sex taboos) शरत्‌की अत्यंत प्रिय कथावस्तु है।

'चरित्रहीन' उपन्यासकारके प्रारंभिक जीवनकी कृति है। अतएव उसमें कथानककी वह एकरूपता तथा गठन नहीं मिलती, जो उनके उत्तरार्द्ध कालके प्रसिद्ध उपन्यास 'शेष प्रश्न' में द्रष्टव्य है। परंतु फिर भी नारी-चरित्रके एक विशिष्ट दर्शनके कारण इसका शरत्-साहित्यमें अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। देवताओं-द्वारा भी न जानने योग्य 'स्त्री चरित्रं' का इसमें तथ्यात्मक अंकन है।

यहाँ हमें किरणमयीके माध्यमसे शरत्‌के कृतित्वके ऊपर लगाये जाने-वाले एक प्रसिद्ध आरोपपर भी कुछ विचार कर लेना चाहिए। प्रायः कहा जाता है कि अपनी रचनाओंमें शरत्‌ने पतित नारियोंको बहुत ऊँचा स्थान दिया है, 'चरित्रहीन'की किरणमयी इसका ज्वलंत उदाहरण है। परंतु वास्तविक बात यह है कि उक्त आक्षेप दूरसे ही संगत प्रतीत होता है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो स्पष्ट जान पड़ेगा कि शरत्‌ने अपने जीवन-दर्शनमें नारीके असत् स्वरूपको कहीं भी प्रश्रय नहीं दिया है, उसके प्रति

महानुभूति भले ही प्रकट की हो। 'चरित्रहीन' में ही, किरणके प्रति हमारी महानुभूति जाग्रत होती है, उसके 'अनैतिक' कार्योंके प्रति नहीं। उसकी व्यभिचार-बुद्धिके पीछे एक निश्चित सामाजिक कारण है, जिसे दूर कर देनेपर शायद एक सुधारककी दृष्टिमें उसका चरित्र इतना नीचे न गिरता। परंतु आगे चलकर 'शेष प्रश्न' में तो एकनिष्ठ प्रेमको नितांत निराधार सिद्ध किया गया है। इसका समाधान सामाजिक न होकर पूर्णतः मनोवैज्ञानिक है। आशु बाबू कहते हैं, "स्रोतके खिचावसे कौन कब पास आ जाता है और कौन कब दूर चला जाता है, इसका हिसाब कोई भी नहीं जानता।"

अस्तु, शरत्ने अपनी रचनाओंमें पापके प्रति कहीं भी सहानुभूति प्रकट नही की है। 'चरित्रहीन' में प्रेमकी पवित्रताके ही कारण उपन्यासकारने सावित्रीको किरणमयीसे ऊँचा उठाया है। किरण यदि हमारी सहानुभूति जाग्रत करती है तो सावित्री हमारी श्रद्धा। किरण एवं सुरबालाकी तुलनाके समय भी सुरबाला ही हमें महिमामयी दिखाई देती है। सुरबालाके सुदृढ़ विश्वासके सम्मुख किरणको स्वयं झुकना पड़ता है। नारीका पतित-स्वरूप शरत्की समवेदनाका विषय हो सकता है, आदरका नहीं।

पंडितजी

[पंडित मॉशाइ]

●

भोगसे अधिक त्यागको महत्त्व देनेवाले प्रेमका अंकन 'पंडितजी'के कथानककी प्रमुख विशेषता है। शरत्‌की इस कृतिमें दांपत्य-रति एवं वात्सल्य-रति दोनोंका ही पर्यवसान समाजकी शैक्षणिक उन्नतिके प्रयत्नमें दिखाया गया है। ग्राम-शिक्षा संबंधी रचनात्मक कार्यक्रम एवं समाजोत्थानके अन्य उपायोंपर अपने सीमित कलेवरमें यह उपन्यास पर्याप्त प्रकाश डालता है। इस क्षेत्रमें शरत्‌का यह संभवतः प्रथम महत्त्वपूर्ण प्रयास है। यहाँ अपनी सेक्स संबंधी सामाजिक विधि-निषेधवाली प्रिय कथा-वस्तुसे ऊपर उठकर वे समाजके उस धरातलपर आये हैं, जहाँ जन-जीवनका एक व्यापक रूप हमें देखनेको मिलता है। 'पंडितजी'में उन सभी ग्राम-समस्याओंपर संक्षिप्त रूपसे प्रकाश डाला गया है, जो हमारे देशके अधिकांश भागपर बुरी तरहसे छाई हुई हैं। सामाजिक ऊँच-नीचकी समस्या, ग्रामीण महामारियोंकी समस्या, शिशु-शिक्षाकी समस्या तथा पारिवारिक विषमताकी समस्याने इस उपन्यासमें ताने-बानेका रूप धारण किया है। सामयिक वातावरणके प्रति जागरूक रहनेवाले कलाकार शरत्‌ने अपनी इस कृतिमें व्यक्तिकी रागात्मिका वृत्तियोंको समाजके हितमें समीकृत होते दिखाया है।

'पंडितजी'की मूल कथावस्तु इस प्रकार है—कुसुम बाड़ल ग्रामके जमींदार वृंदावनकी परित्यक्ता पत्नी है। अपने सीधे-सादे भाई कुंजके साथ वह बड़ी निर्धनतामें किसी प्रकार जीवन-निर्वाह करती है। एक दिन अपने प्रथम यौवनमें प्रविष्ट कुसुमको वृंदावनने कुएँपर पानी भरते देखा। उसके रूप-शीलपर वे सहसा ही मुग्ध हो गये। अपनी माँकी सम्मतिपर

वे उसे फिर घर वापस लानेकी चेष्टा करने लगे, परंतु अभिमानिनी कुसुम इसके लिए तैयार न हुई, यद्यपि मन ही मन वह भी अपने स्वामी वृंदावनकी ओर आकर्षित हो चली थी। वृंदावनकी दूसरी पत्नीसे उत्पन्न मातृहीन शिशु चरण कुसुमके सूने जीवनका सहारा हो गया। प्रायः एक-आध सप्ताहके लिए वृंदावन उसे कुसुमके पास छोड़ जाते थे।

बाड़लमें विसूचिकाका आक्रमण हुआ। महामारीके डरसे बालकोंको पढ़ाकर मन लगानेवाले 'पंडितजी'—वृंदावन चरणको कुसुमके पास रखनेके लिए ले गये। कुसुमने सुन रक्खा था कि उसके पति अब तीसरा विवाह करनेवाले है; इसी अपमानके कारण उसने चरणको ऐसे संकट-कालमें भी अपने पास रखना अस्वीकार कर दिया। निराशमन वृन्दावन वापस घर लौट आये। कुछ दिनके उपरांत उनकी माँ विसूचिकाका शिकार हुई। तत्पश्चात् चरण भी बीमार पड़ा। डाक्टरने उसके रोगको असाध्य बता दिया। सब समाचार जानकर कुसुम अपने भाईकी ससुरालसे दौड़ी आई और अपने जीवनाधार चरणकी परिचर्या करने लगी, परंतु इससे कुछ न हो सका और अंततः वह निरीह शिशु भी चल बसा। वृन्दावनका मन इससे बहुत विरक्त हो गया। उन्होंने अपनी सारी देवोत्तर संपत्ति ग्राम-सुधारके लिए अर्पित कर दी, और अपनी पत्नी कुसुमको साथ लेकर भिक्षुकके वेषमें बाड़लसे चले गये।

'पंडितजी'में शायद प्रथम बार शरत्‌ने नारी-हृदयका समन्वितरूप रक्खा है। उनकी पूर्वकी कृतियोंमें या तो वात्सल्यकी ही व्यंजना मिलती है—जैसे, 'रामेर सुमति' एवं 'बिंदुर छेले'में, अथवा केवल दाम्पत्य भावका ही अंकन मिलता है—जैसे, 'चंद्रनाथ' और 'विराज बहू'में। परंतु 'पंडितजी' की कुसुममें नारी-हृदयके दोनों पक्षों—वात्सल्य एवं दांपत्यका उचित समीकरण हुआ है। इसीलिए उसका व्यक्तित्व उपन्यासकारके सामान्य नारी-पात्रोंके व्यक्तित्वकी भाँति अधिक कोमल एवं सजल न होता हुआ भी, पर्याप्तरूपसे स्वाभाविक है। भावकतासे ऊपर उठकर उसमें दृढ़ताका समावेश है। कुमारी अथवा विधवा न होकर कुसुम परित्यक्ता है, और

इस प्रकार नारी-हृदयका कदाचित् सबसे बड़ा अभिशाप—सबसे बड़ी वेदना उसके हिस्सेमें आ पड़ी है।

कुसुमकी बाल्यावस्थाका इतिहास इतना भद्दा है कि उसका स्मरण-कर वह लज्जासे गड़ जाती है। पाँच बरसकी होनेपर उसका विवाह हुआ, किंतु बादमें उसकी विधवा माँकी बदनामी सुननेपर ससुरने उसका परित्याग कर दिया। कुसुमकी माँ ग़रीब होनेपर भी अभिमानिनी थी। वह उसे कंठी बदलवानेके लिए एक बैरागीके पास ले गई, किंतु वस्तुतः उसकी कंठी बदली नहीं गई। वह वैरागी नित्य-धाम सिधार गया पर यह कोई न जान सका कि कुसुमकी कंठी उसके साथ बदली गई थी या नही। अस्तु, माँकी मृत्युके उपरांत दुखिया कुसुम बड़ी होनेपर अपने आपको विधवा समझने लगी।

'अब वह सोलह वर्षकी युवती है। रूप उसके अंग-अंगसे फूटा पड़ता है। उसमें गुण भी वैसे ही हैं और काम-काज करनेमें भी वह वैसी ही चतुर है, और फिर, लिखना-पढ़ना भी जानती है।' यही सब देखकर वृन्दावन उसे फिर ग्रहण करना चाहते हैं। किंतु कुसुम अपनी मूल प्रकृतिमें स्वाभिमानिनी है। निर्धन-अवस्थामें रहते हुए भी वह प्राचीन अपमानको न भूल सकनेके कारण वृन्दावनके घर सुख-भोगके लिए नहीं जाना चाहती। अपने भाईके इस प्रस्तावको वह यह कहकर अस्वीकार कर देती है 'मुझे भी क्या तुमने कुत्ता, बिल्ली समझ रखा है कि जो इच्छा होगी वही कर गुजरूँगी! उधर ब्याह और इधर कंठी-बदली! अब फिर ब्याह हो और फिर कंठी-बदली!' बेचारा कुंज अपनी शिक्षिता, तेजस्विनी बहिनके आगे सिटपिटा जाता है।

यहींसे कुसुमके हृदयमें संघर्षका प्रारंभ होता है। उसकी रागात्मिका वृत्ति उसे वृन्दावनकी ओर खींचती है. किंतु उसका अभिमान उसे रोकता है; उसके मनमें निर्धनताकी हीनता-ग्रंथि भी छिपी हुई है। वह कुंजको वृन्दा-वनके यहाँ जानेसे रोकती है—'वे लोग ठहरे बड़े आदमी और हम हैं ग़रीब! हमें उनसे ज़्यादा मेल-जोल बढ़ानेकी ज़रूरत ही क्या है!'

कुसुम अपने भाई कुंजको बड़ी स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखती है। उससे छोटी होनेपर भी वह उसपर शासन रखती है। कभी-कभी अप्रसन्न हो जानेपर भी, वह उसके लिए सदैव चिंतातुर रहती है। उसके गृहिणी-स्वरूपकी सारी अधिकार-वृत्तियाँ कुंजनाथपर केन्द्रित है। कुंजका विवाह हो जानेपर भाई-बहिनके इस पारस्परिक प्रेममें अवश्य कुछ व्यवधान पड़ता है, किंतु थोड़े समयके बाद उनके संबंध फिर पूर्ववत् हो जाते हैं।

कुसुम वृन्दावनसे सहज संस्कारवश प्रेम करती है, किंतु उनके यहाँ जाना नहीं चाहती। मूल रूपसे इसके दो कारण हैं—एक तो यह कि अपने अल्पबुद्धि भाईको अकेला छोड़नेमें वह असमर्थ है, और दूसरे वह अपनी प्रकृतिसे अभिमानिनी है। जिस स्थानसे एक बार उसे तिरस्कृत कर दिया गया, उस जगह फिर जानेके लिए उसका अंतःकरण स्वीकृति नहीं देता। इसीलिए वृन्दावनके प्रति उसका प्रेम, उसके अभिमानसे दब जाता है, यद्यपि अपनी माँ तथा भाइयों सहित आये हुए वृन्दावनके लिए वह सिर काट कर पकानेके लिए तैयार है। अपने स्वजनोंके अतिथि-सत्कारका अवसर उसकी आदिम गृहिणी मनोवृत्तिको जाग्रत कर देता है।

कुसुमकी प्रकृतिमें क्रोधके लिए शायद कुछ अधिक स्थान है। वृन्दावनके शब्दोंमें, 'बुद्धिकी अपेक्षा क्रोध कहीं अधिक है।' फिर भी अपने अवचेतनके आग्रहसे वे उसका शासन उसके सम्मुख स्वीकार कर लेते हैं। शरत् द्वारा अक्षय एवं युग-युगांतरसे चले आनेवाले प्रेमको दी गई मान्यता 'पंडितजी' में भी द्रष्टव्य है। इसीलिए अलग हो जानेपर भी कुसुम और वृन्दावन एक दूसरेके आकर्षणका बराबर अनुभव करते रहते हैं। प्रेमकी यह अदृश्य एवं स्वर्गीय शक्ति शरत्की अधिकांश रचनाओंकी मूल संवेदना है।

वृन्दावनकी माँ के हृदयमें कुसुमके लिए कोमलतम स्थान सुरक्षित है। उनका निर्णय है, "अभी यह तो नहीं कह सकती कि वह बिलकुल खरा सोना है, पर यह बात निश्चयपूर्वक कह सकती हूँ कि पीतल नहीं है, मुलम्मा नहीं है।" किसी भी प्रकारकी अतिशयोक्तिसे हीन माँका यह वाक्य कुसुमके चारित्रिक मूल्यपर पर्याप्त प्रकाश डालता है। किंतु प्रभविष्णु

न होते हुए भी कुसुमका चरित्र प्रभावोत्पादक है, इसे कोई अस्वीकार नहीं करता। "किसी-किसीकी राशि ही भारी होती है वृन्दावन! उससे बिना डरे काम ही नहीं चलता, चाहे आदमी उमरमें उससे बड़ा ही क्यों न हो। हमारी बहू भी उसी धातुकी बनी है, बहुत ही शांत फिर भी सख़्त।" शांत एवं सख़्त—कुसुमके व्यक्तित्वका विश्लेषण करते समय उसके यही दो मूल तत्त्व हमारे सम्मुख आते हैं। वस्तुतः ये दोनों पंक्तियाँ मिलकर कुसुमके चरित्रकी बड़े पूर्ण रूपसे व्याख्या करती हैं। उसकी राशि भारी होनेके कारण ही उसके तेजके सम्मुख सबको दबना पड़ता है।

कुसुमके व्यक्तित्वमें दूरदर्शिता एवं सूक्ष्म बुद्धिका कुछ अभाव जान पड़ता है। वह वृन्दावनके प्रेमके साथ ही साथ माँ के निर्मल स्नेहको भी पहचाननेमें असमर्थ है। असफल वैवाहिक संबंधकी प्रतिक्रिया मनमें रहते हुए भी उसे साधारण विवेकसे हीन नहीं होना चाहिए। अज्ञात रोषकी भावना-के आवेशमें वह माँके द्वारा दिये हुए कड़ों एवं आशीर्वादको अपने नासमझ भाईके हाथ लौटा देती है, और जिसका बादमें उसे सदैव पश्चात्ताप रहता है। भीषण महामारीके डरसे आये हुए चरणको वह अपने पास रखना स्वीकार नहीं करती, जिसका मूल्य उसे अपने वात्सल्यसे देना पड़ता है। इस प्रकार प्रत्युत्पन्नमतिका उसमें अभाव ही कहा जायेगा। उसमें क्रोध अधिक है, क्षमाका अंश नहींके बराबर है। इस क्षेत्रमें वात्सल्यका प्रभाव उसे सदय नहीं बना पाता, उसका तृषित मातृ-हृदय करुणासे अभिभूत नहीं हो उठता।

शरत्के प्रतिनिधि नारी-पात्रोंकी भाँति कुसुम भी अनुपम सौंदर्य-शालिनी है। किंतु जितना उसमें रूप है, उतनी उसमें क्षमा एवं दया नहीं। 'स्त्रियोंके लिए सबसे बड़ी सीखनेकी बात है क्षमा करना, सो उसने नहीं सीखा।' वृन्दावनको मन ही मन अपना मानती हुई भी वह उनके आमंत्रणको बार-बार अस्वीकार कर देती है; वह स्वामीके घर 'अभिमानपूर्वक' जाना चाहती है। उसका गर्व उसके स्नेहको पराभूत कर डालता है। यदि वह क्षमा करना जानती होती तो अपने पति, अपने भाई एवं अपनी सास

पर वह विजय प्राप्त कर लेती, किंतु उसके मानसिक संस्थानने ऐसा होने नहीं दिया। वह सोचती है कि वृन्दावनके प्रति उसके हृदयमें जो भाव उत्पन्न होते हैं, वे एक हिंदू कन्याके हृदयमें केवल पतिके लिए उत्पन्न होने-वाले भाव हैं, किंतु अपमानकी ज्वाला, विधवा होनेकी विडंबना एवं प्रकृतिमें क्रोधका आधिक्य उसे उसके स्वामीसे अलग कर देता है। और अंतमें वृन्दावनसे उसका मिलन तभी होता है, जब पति एवं पुत्रके अभावने उसके हृदयको एकदम निर्मल बना दिया है।

परंतु इतना सब होनेपर भी कुसुमके मनमें नारी-सुलभ लज्जा एवं पति-प्रेमका पूरा-पूरा अधिकार है। वृन्दावनके तीसरे विवाहकी योजनामें जब उसका भाई बाधा डालना चाहता है तो वह इसके लिए मना करती है। और उसकी चिर-परिचित हठके सामने कुंजको दबना ही पड़ता है। ऐसा जान पड़ता है कि 'पंडितजी' की कुसुमके ऊपर 'चरित्रहीन' की किरणमयी-के यथार्थवादी अंकनका एक संयमित प्रभाव अवश्य पड़ा है। अपने तीव्र व्यक्तित्वमें वह विराज बहूका विकसित स्वरूप है। विराजका चरित्र आदर्शवादी है, किंतु कुसुमका चरित्र सामान्य और शायद अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविक है। शरत्‌के इस रचना-कालमें नारीका दांपत्य स्वरूप उतना उज्ज्वल नहीं रह जाता, जितना वह पहले था। पुरुषके प्रति आत्मसमर्पण-का आवेग उसमें कम हो जाता है। एक ओर उसमें विराजके व्यक्तित्व-की तीव्रता बढ़ गई है और दूसरी ओर उसमें विराजकी उत्कट पतिभक्ति कम हो गई है। शेखरके दूसरे विवाहकी चर्चा सुनकर 'परिणीता' की ललिता मौन रहती है, किंतु वृन्दावनके दूसरे विवाहकी योजना ज्ञात होनेपर 'पंडितजी' की कुसुम के हृदयमें ईर्ष्याकी ज्वाला भड़क उठती है, जिसे वह छिपाकर नहीं रखती, वरन् चरणके माध्यमसे वृन्दावन पर भी प्रकट कर देती है। सामान्य मानव-सुलभ कमज़ोरियोंका नारी-हृदयमें समावेश शरत्‌ने अपनी रचनाओंके इस द्वितीय युगमें बड़ी कुशलताके साथ किया है। इसके बाद तो उनके उपन्यासोंमें नारीके भारतीय आदर्शात्मक रूप एवं उसके पाश्चात्य यथार्थवादी ढाँचेमें बराबर संघर्ष होता दिखाई पड़ता है, जिसमें कभी एक पक्ष

विजयी होता है, कभी दूसरा पक्ष और कभी दोनोंमें समन्वयकी भी चेष्टा दृष्टिगत होती है। 'शेष प्रश्न' में यह द्वंद्व अपनी चरम सीमापर पहुँच गया है

जब बादमें कुसुमको ज्ञात होता है कि वस्तुतः उसकी कंठी किसी बैरागीसे नहीं बदली गई, तो उसकी विधवा होनेकी लज्जा मिट जाती है। फिर उसे अपने वात्सल्यके आधार चरणकी बीमारीकी सूचना मिलती है और वह बेसुध होकर अकेली दौड़ती हुई अपने पतिके घर पहुँचती है। यहां पर उसकी चारित्रिक दृढ़ता सचमुच ही दर्शनीय है। वह अविचलित होकर चरणके मृत शरीरको श्मशान भिजवा देती है। अब जैसे उसका जीवन निष्काम हो गया हो। अपने पतिके साथ, भारतीय त्यागके आदर्शका अनुकरण करती हुई वह भिक्षुणीके वेषमें देशाटनके लिए चली जाती है

कुसुमके अतिरिक्त 'पंडितजी' में दूसरा प्रमुख नारी-चरित्र वृन्दावनकी माँ का है। स्त्रीके जननी-स्वरूपके संबंधमें शरत्‌की कुछ निश्चित धारणाएँ-सी जान पड़ती हैं। उनकी रचनाओंमें माँका व्यक्तित्व सौम्य एवं संयमित शांत एवं दृढ़ तथा अपार स्नेहसे अभिभूत है। नारायणी, भुवनेश्वरी हेमांगिनी एवं दयामयी जैसे चरित्र नारीके उज्ज्वल स्वरूपकी उद्‌भावना करनेवाले हैं; उनका व्यक्तित्व महिमामय है। 'पंडितजी'में वृन्दावनकी माँ भी इसी वर्गकी एक जननी है। परमवैष्णवकी भाँति उनके हृदयमें सबके लिए कोमल स्थान सुरक्षित है।

उपन्यासकारके शब्दोंमें "वृन्दावनकी माँ निम्न श्रेणीकी साधारण स्त्रियोंके समान नहीं थीं। वह बहुत समझदार थीं।" वस्तुतः एक ओर उनका विवेक अत्यन्त सूक्ष्म है, और दूसरी ओर उनका हृदय अत्यंत भावुक 'उन्हें ज़रा-सी भी बात बहुत लगती है।' बुद्धि एवं भावनाके संयोगसे ही उनका व्यक्तित्व इतना उज्ज्वल-इतना कोमल बन सका है। 'शांत' एवं 'संन्यासिनी' जैसे विशेषण इस भगवद्‌भक्तिमें अनुरक्त महिलाके लिए नितांत उपयुक्त हैं, जो भीषण महामारीके समय भी अपने ठाकुरजीको छोड़कर नहीं जा सकतीं। उनका विवेक कुसुमके वास्तविक मूल्यकी परख करता है, और उनका हृदय वृन्दावनको दूसरा विवाह करनेसे रोकता है

वे कुसुमको ही अपनी पुत्र-वधूके रूपमें चाहती हैं। कठोर-से-कठोर अपराधको भी उन्होंने उसके लिए क्षमा कर दिया है। मानसिक या शारीरिक, किसी भी प्रकारका कष्ट वे किसीको नहीं देना चाहतीं। उनके चरित्रकी प्रभविष्णुताका आभास हमें कलह-प्रिय कुंजकी सासके वार्तालापसे मिलता है।

वृन्दावनकी झाँकी ठीक दूसरी दिशामें कुंजकी सासका व्यक्तित्व आता है। उनका स्वभाव कड़ा, रूखा तथा परछिद्रान्वेषी है। अशिक्षिता होनेके साथ-ही-साथ वह अप्रियवादिनी भी है। दूसरेकी भावनाओंका उसे तनिक भी ध्यान नहीं। वह मिथ्याडंबरप्रिय एवं अहंवादिनी है। दूसरेकी उन्नति या भलाईमें उसे रुचि नहीं है, और इस ईर्ष्याके कारण ही उसे प्रायः कलहका सहारा लेना पड़ता है। कुसुमके साथ तो, उसने कभी भी अच्छा व्यवहार नहीं किया, वह सदैव उसे दासी समझती रही। अपनी लड़कीको भी वह कुसुमसे अच्छी तरह बात करते नहीं देख सकती। कुंजके ऊपर तो उसने पहले ही अपना धन-बल जमा दिया है। व्रजेश्वरी स्पष्ट कहती है "माँ, तुम्हारी जैसी दो-चार वैष्णव स्त्रियोंकी कृपासे तो जी चाहता है कि हम लोग अपने आपको डोम, चमार, मोची कहा करें।"

कुंजकी पत्नी व्रजेश्वरी उपन्यासमें पार्श्व-चरित्र मात्र है। उपन्यासकारके शब्दोंमें, "वह जैसी मुखरा है वैसी ही कलह-पटु। वह अभी पूरे पन्द्रह वर्षकी भी नहीं हुई है, पर उसकी बात-चीतके ढंग और उसके विषकी जलनसे उसकी माँको भी हार मानकर आँसू बहाने पड़ते हैं।" पर यह एक आश्चर्यजनक बात है कि इतनी कटु प्रकृतिकी व्रजेश्वरी भी, अपनी माँका विरोध करती हुई, कुसुमको हृदयसे प्यार करती है। वह इस निरीह, दुःखिता नारीकी शुभेच्छु है। स्वयं पति-प्रेममें प्रवृत्त व्रजेश्वरी कुसुमसे आग्रह करती है कि वह वृन्दावनके यहाँ जाना स्वीकार कर ले। सच तो यह है कि न जाने किस अज्ञात शक्तिके वशमें होकर व्रजेश्वरीका सारा विष कुसुमके लिए अमृत बन जाता है।

मँझली बहिन

[मेजदिदि]

●

शरत्‌के कृतित्वमें 'रामेर सुमति', 'बिंदुर छेले' एवं 'मेजदिदि'की एक ऐसी अनुपम त्रिवेणी है, जिसे पाकर संसारका कोई भी कथा-साहित्य गौरवान्वित हो सकता है। इन तीनों कहानियोंकी मूल संवेदना लगभग एक ही है, कलात्मक सूक्ष्मता भी प्रायः एक कोटिकी है, किंतु फिर भी उनके वातावरणमें सुस्पष्ट विभिन्नता है। नारायणी, बिंदो और हेमांगिनीके चरित्र समान भावधारासे अनुप्राणित हैं, पर उनके व्यक्तित्व अलग-अलग हैं। इन तीनों गल्पोंमें, किसी एककी अपेक्षाकृत श्रेष्ठता भी प्रतिपादित नहीं की जा सकती। नारीका वात्सल्यपरक स्वरूप अपनी सारी महिमाके साथ इन कहानियोंमें अंकित हुआ है, और उनका कथा-विधान शरत्‌की उच्चतम 'टेकनीक'का नमूना है। इसीलिए इन तीनों रचनाओंका ध्येय पाठकके हृदयको एक ही भाव-लोकमें ले जानेका है, किंतु वहाँतक पहुँचानेके लिए तीनोंके मार्ग कुछ भिन्न-भिन्न हैं। नारीके वात्सल्यपरक स्वरूपपर शरत्‌की श्रद्धा कदाचित् सर्वाधिक है, अतः उसीके अंकनमें उनका कलात्मक निखार भी अपनी चरम-सीमापर पहुँचता है। नारायणी, बिंदो एवं हेमांगिनीके चरित्र इसके साक्षी हैं।

'मँझली बहिन'का कथानक उतना ही सीधा और सरल है, जितनी उसकी कला। कहानियोंके विधानमें यह सरलता कितनी हृदय-ग्राहिणी होती है, यह सर्व-विदित है। परिवारविहीन, चौदह वर्षका बालक किशन अपनी स्नेहशीला जननीके देहांतके बाद आश्रयकी खोजमें अपनी सौतेली बहिन कादंबिनीके पास पहुँचता है। उसकी कठोर प्रकृतिकी बहिन बड़ी कठि-

नाईसे उसे अपने यहाँ रहनेके लिए स्थान देती है। दोनों समयके रूखे-सूखे खानेके लिए किशनको जी-तोड़कर परिश्रम करना पड़ता है और इतनेपर भी बहिनका तिरस्कार और मार-पीट उसका पीछा नहीं छोड़ती। अपने अपराधोंके लिए उसे प्रायः भूखा रहना पड़ता है। अपार ममताके वातावरणमें पले हुए किशनका बाल-हृदय किसी प्रकार इन अत्याचारोंका अभ्यस्त हो जाता है।

कादंबिनीकी देवरानी हेमांगिनीका हृदय अत्यंत कोमल तथा वात्सल्यपूर्ण है। वह अनाथ किशनके इन कष्टोंको देख नहीं पाती और उसकी मँझली बहिन बनकर यथासंभव उसे स्नेह तथा मातृ-सुखका दान देती है। स्वभावतः ही कादंबिनीको यह सब अच्छा नहीं लगता और इसी बातको लेकर देवरानी एवं जिठानीमें प्रायः कलह हो जाया करती है। हेमांगिनी पतिसे आग्रह करती है कि वे किशनको अपने साथ रखें, किंतु विपिन अपने बड़े भाईसे और मनमुटाव नहीं करना चाहते। अंततः पति, जेठ तथा जेठानीके अत्यंत विरोध करनेपर भी स्नेहकी शक्ति विजयिनी होती है, और हेमांगिनी किशनको अपनी तीसरी संतान मानकर अपने पास ही रख लेती है। पारिवारिक जीवनके सुखद दृश्यकी अवतारणाके साथ कहानीका अंत हो जाता है।

संपूर्ण गल्पमें केवल दो ही नारी-पात्रोंका अंकन हुआ है। कादंबिनी एवं हेमांगिनी दोनोंके चरित्र कथानकमें समान भावसे प्रतिष्ठित हैं। पारस्परिक तुलनामें उनके व्यक्तित्व और भी उभर जाते हैं। गार्हस्थिक जीवन के कुशल शिल्पी शरत्‌ने इन दोनों गृहिणियोंके चरित्रोंका निर्माण ही नहीं किया, वरन् उनमें प्राण-प्रतिष्ठा भी की है। उनके व्यक्तित्व जैसे पुस्तकके पृष्ठोंसे बाहर निकल आये हैं। दैनिक जीवनमें कादंबिनी एवं हेमांगिनीके प्रतिरूप अनेक मिल सकते हैं, परंतु उन्हें दो निश्चित वर्गोंका अलग-अलग प्रतिनिधि बनाकर साहित्यिक संवेदनामें रँगना, शरत्‌की ही कला है।

'सुमति' तथा 'बिंदोका लल्ला'की भाँति 'मँझली बहिन'में भी वात्सल्य एवं करुणाका संयोग हुआ है। किशनकी सौतेली बहिन कादंबिनी उसका

सब प्रकारसे तिरस्कार करती है, किंतु दूसरी ओर हेमांगिनी जिसका उससे कोई भी संबंध नहीं है, उसके साथ बड़ा स्नेहपूर्ण व्यवहार करती है। इन विपरीत भावनाओंके संघर्षमें ही उक्त दोनों रसोंकी सृष्टि होती है, जिससे पाठकका मन करुणासे ओत-प्रोत हो उठता है।

कादंबिनीके चरित्रका विश्लेषण हम पहले करेंगे। कादंबिनी किशनकी सौतेली बड़ी बहिन है और अपने पति-गृहमें धन-संपत्तिका पूरा उपभोग करती है। पर उसकी रागात्मक वृत्तियाँ अपने परिवारतक ही सीमित हैं। उसकी अत्यधिक कठोर प्रकृतिका परिचय हमें सर्वप्रथम तभी मिल जाता है, जब उसका अनाथ भाई किशन उसके घर आश्रयके लिए पहुँचता है। वह उसका स्पष्ट तिरस्कार करती हुई, रास्ता दिखानेके लिए आये हुए बूढ़ेको लक्ष्य करके कहती है, "खूब मेरे सगेको बुला लाये हो; रोटियाँ तोड़नेके लिए।" इन शब्दोंसे उसकी कठोर प्रकृतिके साथ-साथ उसकी कटु वाणीका भी परिचय मिलता है। अपनी सौतेली माँके लिए वह कहती है, "पिता जो कुछ धन-संपत्ति छोड़ गये थे सभी तो कलमुँहींने इसके पेटमें ठूँस दी है। मुझे तो एक कानी कौड़ी भी न दी।" मृत जननीके प्रति कादंबिनीका यह तिरस्कार कितना असत्य है, यह समझनेके लिए हमें जानना पड़ेगा कि उसके पिताकी धन-संपत्तिके नाम सिर्फ़ एक मिट्टीकी झोंपड़ी और उसके पास ही जँबीरी नींबूका एक पेड़ भर था; उसी झोंपड़ीमें बेचारी विधवा किसी तरह सिर छिपाकर रहा करती और नींबू बेचकर किशनकी स्कूलकी फ़ीस जुटाती।

किशनके आगमनसे कादंबिनीका मन और भी असंतुलित तथा असंयमित हो गया है। लोक-मर्यादाके भयसे किसी प्रकार वह अपने इस अनाथ भाईको आश्रय दे तो देती है, किंतु उसका तिरस्कार करनेके लिए वह सदैव तत्पर है। 'मर, क्या पागल और बहरा है ?' जैसे वाक्योंसे किशनका अभिनन्दन प्रायः ही हुआ करता है।

कादंबिनीकी इस कटु प्रकृतिका एक कारण यह है कि उसके लिए संसारमें पैसेसे बढ़कर और कुछ भी नहीं। पैसेके लिए वह सबका अपमान कर सकती है, तथा पैसेके लिए ही वह दूसरेका तिरस्कार भी सह सकती है।

वस्तुतः उसकी प्रकृतिमें भौतिकताके परमाणु पर्याप्त विकृतावस्थामें पहुँच चुके हैं। क्रोध-जैसा मानसिक विकार उसके दैनिक व्यवहारका स्थायी अंग है। 'वह उन लोगोंमें-से नहीं, जिनका गुस्सा किसीको चुप रहते देखकर कम हो जाता है।' इसीलिए उसकी झगड़ा करनेकी प्रवृत्ति सदैव उत्तेजित रहती है। कलहने उसके जीवनमें सदाके लिए अपना घर बना लिया है।

कादंबिनीकी विपरीत दिशामें हेमांगिनीका चरित्र है। वह शहरकी लड़की है और दास-दासी रखकर, चार आदमियोंको खिला-पिलाकर ठाटमे रहना पसंद करती है। वह पैसा बचाकर ग़रीबी चालसे नहीं रहती, इसी-लिए कुछ दिन पहले दोनों परिवार अलग हो गये थे। हेमांगिनी चाहती है कि किसी प्रकार दोनों देवरानी-जिठानीमें मनोमालिन्य मिट जाय, परंतु ऐसा करनेके प्रयत्नमें कलहकी मात्रा कुछ और बढ़ जाती है।

हेमांगिनीका हृदय अत्यंत कोमल तथा सरल है। अनाथ किशनका प्रथम बार कुंठित, भीत और असहाय मुख देखकर उसका कलेजा हिल जाता है। वह तभीसे उसे अपना लेती है। उसका व्यापक वात्सल्य किशनकी रक्षाका साधन बन जाता है। उसके अंदरका मातृत्व सीमित एवं संकुचित न होकर पर्याप्त रूपसे विस्तृत है, और इसीलिए 'मँझली चाचीको सभी बाल-बच्चे प्यार करते हैं।' वह किशनसे कहती है "देख किशन, तू अपनी मँझली बहिनसे कभी कोई बात मत छिपाना। जब जिस चीज़की जरूरत हो, चुपचाप यहाँ आकर माँग लेना।" इस स्नेह एवं ममताके कारण ही उसका जीवन इतना सजल, इतना सरल हो गया है। वह आगे भी कहती है, "भाई, तुझे मेरे सिरकी सौगन्ध है, आजसे मुझे अपनी मरी हुई माँकी जगह ही समझना।" वस्तुतः हेमांगिनीके वात्सल्यका आलंबन स्वयं किशन ही नहीं, वरन् कोई भी बालक हो सकता है। उसके जननी-रूपमें मोह-माया तथा दयाका पूरा-पूरा निखार हुआ है।

हृदयकी सरलता एवं निष्कपटताके कारण ही हेमांगिनी अत्यंत स्पष्ट-वादिनी है। इसीलिए अपनी जिठानीको वह 'निष्ठुर' एवं 'बेहया' कहनेमें नहीं झिझकती। उसके विचार उसकी वाणीके साथ एकाकार हो गये हैं

तथा दृढ़ता उसके चरित्रमें घुल-मिल गई है। अनाथ किशनके लिए वह अपने पति, जेठ तथा जिठानीका सारा आक्रोश सह लेती है, किंतु उसे छोड़ती नहीं। बीच-बीचमें अवश्य वह उससे झुँझलाकर कह देती है, "अब तू यहाँ मत आना, जा।" और कभी-कभी तो अपने पतिके रोषके कारण वह उसे घरसे बाहर निकलवा देती है, किंतु वह फिर शीघ्र ही अनुभव करती है 'वह बेचारा बहुत ही दुखी है। उसके माँ-बाप नहीं हैं। वे लोग उसे मारे डालते हैं और यह मुझसे अपनी आँखोंसे देखा नहीं जाता।' उसका किशनके प्रति प्रेम पहाड़ी झरनेकी निर्मल-धाराके सदृश है, जो मार्गमें पत्थरोंके अवरोधके कारण और भी तीव्रतासे बहने लगता है। अपनी चारित्रिक दृढ़ताके कारण ही वह पतिसे कह देती है, "मैं कल ही उसे बुलाकर अपने पास रखूँगी। और यदि जिठानी ज़ोर करेंगी, तो मैं उसे थानेमें दारोगाके पास भेज दूँगी।" और इसके बाद किशनको कष्ट देनेके कारण वह कादंबिनीका भी जी भरकर तिरस्कार करती है।

जैसा कि शरत्की अन्य कहानियोंकी विवेचना करते समय कहा जा चुका है, शरतकी माताओंका प्रेम कोरा अतिमानवीय नहीं है। हेमांगिनी भी किशनकी ग़लतियोंके लिए चाहे वह उसके भलेके लिए ही की गई हों, उसे ताड़ना देती है। जब उसे ज्ञात होता है कि किशनने रुपया चुराकर उसके स्वस्थ होनेके लिए देवीको भेंट चढ़ाई है तो वह उसे मारती भी है। यहाँपर भी उसके स्नेहकी दृढ़ता दर्शनीय है, किंतु अंतमें 'रामेर सुमति' एवं 'बिंदुर छेले'की भाँति 'मेजदिदि'में भी नारीकी ममता एवं वात्सल्य ही विजयी होता है। पहले तो वह अपने पति विपिनसे किशनको आश्रय देनेके लिए प्रार्थना करती है, परंतु जब वे पारिवारिक मर्यादासे डरते जान पड़ते हैं तो वह अत्यंत शांत एवं दृढ़ स्वरमें कहती है, "मैं उसे ले आऊँगी, तो दुनियामें कोई उसे रोक सकेगा? मेरे दो बच्चे कलसे तीन हो गये हैं। मैं किशनकी माँ हूँ।" और जब इतनेपर भी उसकी बात नहीं मानी जाती तो वह किशनको लेकर अपने मायके चल देती है, परंतु कहानीका अंत यहीं नहीं होता। स्नेहकी शक्ति सर्व-विजयिनी है। विपिन यह सब समा-

चार सुनकर दौड़े-दौड़े हेमांगिनीको वापस लेनेके लिए आधे रास्तेतक जाते हैं और कहते हैं, "किशन अपनी मँझली बहिनको घर लौटा ले चल भाई। मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि जबतक मैं जीता रहूँगा, तबतक दोनों भाई बहिनको कोई अलग न कर सकेगा" और यद्यपि यहीं कथा समाप्त हो जाती है, परंतु फिर भी पाठक 'रामेर सुमति' एवं 'बिंदुर छेले'की ही भाँति 'मेजदिदि'में भी, शरत्की अपूर्व व्यंजनाके सहारे, सुखद गार्हस्थिक जीवनकी कल्पना कर लेता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनाथ बालक किशनके प्रति हेमांगिनीका सबल प्रेम ही 'मेजदिदि'की मूल संवेदना है। इस कहानीसे शरत्की यह मान्यता और भी दृढ़ हो जाती है कि वास्तविक वात्सल्य नारीका केवल अपनी संतानके लिए ही नहीं होता, वरन् वह किसी भी समय किसी भी बालक-के लिए आषाढ़के प्रथम मेघकी भाँति अनायास ही उमड़ सकता है, और इस वात्सल्यके मूलमें मोह, ममता, करुणा एवं परोपकारकी भावना अबाध गतिसे बहती है। 'मेजदिदि'में हेमांगिनीका प्रेम अपने बच्चोंके लिए भी शायद उतना नहीं, जितना किशनके लिए है। नारीका यह व्यापक वात्सल्य सचमुच ही श्रद्धेय है। और उसके साथ अविच्छिन्न भावसे रहनेवाली निःस्वार्थ परोपकारकी भावना (जो हमें हेमांगिनीके साधारण जीवनमें भी बराबर दिखाई देती है) तो और भी महिमामय है।

अब हम बहुत संक्षेपमें कादंबिनी एवं हेमांगिनीके चरित्रोंकी तुलना करेंगे। कादंबिनी प्रकृतिमें अत्यंत लोभी है; संसारमें पैसा ही उसके लिए सब कुछ है; परंतु हेमांगिनीकी प्रकृति इसके विपरीत है। वह पारि-वारिक सुख एवं परोपकारमें भरपूर व्यय करती है। दूसरोंके हितके लिए सौ-डेढ़ सौ रुपया खर्च कर देना उसके लिए कोई बड़ी बात नहीं। वह हृदयकी सरल, निष्कपट तथा शांत है, किंतु कादंबिनी क्रूर एवं कलहप्रिय है। इसके अतिरिक्त हेमांगिनी क्रोधका भाव अपने मनमें अधिक देरतक नहीं रख सकती, पर उसकी जिठानी पक्की है, और अच्छी तरह समझती है कि टूटी हुई हाँड़ीमें कभी जोड़ नहीं लगता। संक्षेपमें, कादंबिनीकी मूल

प्रकृति स्वार्थ-वृत्तिसे प्रेरित है, यहाँतक कि वह अपने अनाथ छोटे भाईको, स्वयं पर्याप्त रूपसे संपन्न होती हुई भी अपने पास प्रेमसे नहीं रख सकती, किंतु उसकी देवरानी हेमांगिनी स्वभावसे परोपकारी है। उससे किसीके ऊपर अत्याचार नहीं देखा जा सकता। गाँवके त्रस्त व्यक्तियोंको बचानेमें वह कुछ भी उठा नहीं रखती। और किशनके लिए तो मानो उसकी सारी माया-ममता ही उमड़ पड़ती है।

जैसा पहले कहा जा चुका है, एक वात्सल्य भावकी पृष्ठ-भूमिपर ही शरत्की इन तीनों कहानियों–'रामेर सुमति', 'बिंदुर छेले' एवं 'मेजदिदि'का निर्माण हुआ है, परंतु एक ही मूल संवेदना होते हुए भी इन तीनोंका व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न है। आगे चलकर 'अभागीर स्वर्ग' जैसी रचनाएँ भी इसी वर्गके अंतर्गत आती हैं। वस्तुतः शरत्के रचना-कालमें वात्सल्य भावकी कहानियाँ थोड़ी-थोड़ी दूरपर मिलती हैं। ऐसा जान पड़ता है कि नारीके प्रिया-स्वरूपके विकारोंका वर्णन करते-करते जब उनका मन थक जाता है तब वे उसके जननी-स्वरूपका अंकन करके हृदयको पवित्रता एवं शांति देते हैं। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि लेखकके मनकी यह पवित्रता और शांति पाठकके लिए कितनी संवेदनीय है।

ग्रामीण समाज

[पल्ली-समाज]

●

जिन लोगोंको यह शिकायत है कि शरत अपनी कृतियोंमें सदैव आंतरिक काम-कुंठाओंके वर्णनमें उलझे रहे हैं, और उन्होंने कभी बाह्य जीवनको व्यापक दृष्टिकोणसे नहीं देखा, उन्हें लेखकके 'पल्ली समाज'को बड़े मनोयोगपूर्वक पढ़ना चाहिए। इस उपन्यासमें शरत्ने न केवल ग्राम-समस्याओंका उद्घाटन किया है, वरन् एक बड़ी हदतक अपनी अपूर्व व्यंजनाके सहारे उन्होंने उसके लिए कुछ सुझाव भी उपस्थित किये हैं। अपने संक्षिप्त कलेवरमें 'ग्रामीण समाज' बंगालके ग्राम्य जीवनकी विषमताओंको 'स्कैची' परंतु ध्वन्यात्मक रूपमें हमारे सम्मुख उपस्थित करता है। जिस दृष्टिकोणको लेकर शरत् 'पंडितजी'में चले थे, उसका कुछ व्यापक एवं विस्तृत स्वरूप 'ग्रामीण समाज'में अंकित हुआ है। 'पंडितजी'में गाँवोंकी शिक्षा-समस्या मुख्य थी, परंतु 'ग्रामीण समाज'में गाँवके व्यक्तियोंकी स्वार्थपरता, फूट एवं कलहका अधिक निदर्शन है। पुरुष और नारीका पारस्परिक प्रेम, जो अबतक शरत्के प्रायः सभी कथा-विधानोंमें प्रमुख स्थान पाता रहा था, इस उपन्यासमें आकर नितांत गौण हो गया है।

'पल्ली-समाज'की एक बड़ी विशेषता यह है कि इसमें अंकित नारीपात्र वास्तविक जीवनके बहुत समीप आ गये हैं। कुरुचि-उत्पादक यथार्थवादको प्रश्रय न देते हुए भी शरत् अब काफ़ी यथार्थवादी हो चले हैं, इस बातका स्पष्ट पता उनके नारी-चरित्रके अंकनसे लग जाता है। माधवी जैसी प्रेमिका एवं विराज जैसी पत्नी, लेखक अपनी रचनाओंके प्रारंभिक युगमें ही चित्रित कर सका था; उसका यह आदर्शवाद 'चरित्रहीन'से शिथिल

होता है, जो एक तरुण विचारकका प्रथम प्रबल विद्रोह है। 'पल्ली-समाज'के चरित्र-चित्रणमें संयमित यथार्थवादका अच्छा नमूना मिलता है; यहाँ उनके पात्र साधारण बुराइयों-भलाइयोंसे घिरे हुए, साधारण हाड़-मांससे निर्मित व्यक्ति हैं। कभी उनमें भलाईके परमाणु ज़ोर बाँधते हैं तो कभी बुराईके। चरित्रकी इस धूप-छाँहका अंकन ही शरत्की दूसरे युगकी अधिकांश रचनाओंमें व्याप्त है।

'पल्ली-समाज'के नारी-पात्रोंमें रमा एवं विश्वेश्वरी सर्व-प्रमुख हैं। प्रचलित मान्यताओंके अनुसार यद्यपि नायिकाका स्थान रमाको ही दिया जायगा, परंतु विश्वेश्वरीका भी चरित्र कथा-विधानकी दृष्टिसे कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। अस्तु, रमाके चरित्रका विश्लेषण हम सर्वप्रथम करेंगे।

शरत्की अधिकांश रचनाओंकी नायिकाके समान रमा एक विधवा युवती है, परंतु लेखककी सामान्य विधवा नारियोंके समान उसका व्यक्तित्व बहुत अधिक कोमल एवं सजल नहीं है, इसका पता हमें उपन्यासके पटोद्घातके समय ही लग जाता है, जब वह अपने बाल्यावस्थाके साथी रमेशके लिए बिगड़कर कह देती है, "मैं कुछ भी न कहूँगी। दरवाज़े-पर दरबान ही उसे उत्तर दे देगा।" कुलीन घरकी लड़की होते हुए भी यद्यपि वह अधिक सामाजिक भेद-भावको प्रश्रय नहीं देती, तथापि निरपराध रमेशके लिए उसके मनमें कोई विशेष कोमल स्थान सुरक्षित नहीं है। वह वेणीसे कहती है, "आग, करज और दुश्मनका कुछ भी बाक़ी नहीं छोड़ना चाहिए", और रमेशको अपना दुश्मन मानती हुई वह उसके कार्योंमें बाधा डालना चाहती है। उसकी उक्तियोंको सुनकर वेणीको भी कहना पड़ता है, "बहन, भला ऐसी कौन-सी बात है जो तुम न समझती हो। भग-वानने तो तुम्हें लड़का बनाते-बनाते लड़की बना दिया।"

प्रकारांतरसे, यहाँ 'पल्ली-समाज'की मूल कथाकी भी चर्चा अधिक अप्रासंगिक न होगी। रमा और रमेश दो विरोधी परिवारोंकी संतान हैं, परंतु दोनों ही घनिष्टबाल्य सहचर रहे हैं। एक-दूसरेके लिए ज्ञात अथवा अज्ञात रूपसे दोनोंमें पर्याप्त आकर्षण है। जब वे दोनों बड़े होनेपर बहुत

दिनोंके उपरांत एक-दूसरेसे मिलते हैं तो उन्हें ज्ञात होता है कि प्राचीन पारिवारिक कलहके कारण दोनोंके मार्ग अलग-अलग हो गये हैं। अधिक ग़लतफ़हमी रमाकी ओर ही से है। खिन्नमन रमेश अपनी ताईजीके प्रोत्साहन-पर ग्राम-सुधारके कार्यमें प्रवृत्त होता है और अनेक विघ्न-विरोधोंके उपरांत भी उससे विमुख नहीं होता, यहाँतक कि एक बार उसे निरपराध जेल भी जाना पड़ता है। उसे इस प्रकार नीचा दिखलानेवाले समुदायमें रमाका भी हाथ है। अंतमें ताईजी अर्थात् वेणीकी माँके उद्योगसे रमा एवं रमेशके बीचकी ग़लतफ़हमियाँ दूर हो जाती हैं, और वे अस्वस्थ तथा अपराधोंके बोझसे दबी हुई रमाको लेकर तीर्थयात्राके लिए चली जाती हैं।

रमाका चरित्र नारी-सुलभ कमज़ोरियोंसे भरा हुआ सामान्य कोटिका है। वे 'बिलकुल लक्ष्मी हैं' और शायद इसीलिए उसमें लोभकी भी कमी नहीं है। यद्यपि रमेश उसके बारेमें कहते हैं, 'वह कभी पराई चीज़ नहीं छुएँगी', पर रमा उनके इस विश्वासको अपनी दुर्बलताओंके फलस्वरूप असत्य सिद्ध कर देती है। एक बार रमेश सारे गाँवके हितार्थ उसके तालाब-का बाँध तोड़ देनेकी अनुमति लेनेके लिए जाते हैं, पर स्वार्थवश वह यह कह कर मना कर देती है, "मैं इतने रुपयोंका नुकसान नहीं कर सकूँगी।" और तभी रमेशको क्रोधके आवेशमें कहना पड़ता है, "तुम्हें निष्ठुर कहना भी भूल है। तुम बहुत ही नीच, बहुत ही छोटी हो।" आगे चलकर भी रमेशको रमाकी 'अखंड स्वार्थपरता'का परिचय मिलता है, जिससे उसके अंधे हृदयकी आँखें खुल जाती हैं।

रमा और रमेशका संबंध कुछ विचित्र प्रकारका है। बाल्यावस्थाका प्रेम दोनोंको एक-दूसरेकी ओर खींचता है, किंतु पारिवारिक वैमनस्य उन्हें अलग कर देता है। रमेशके प्रति बरबस आकर्षित होती हुई भी रमा उसका बुरा चाहनेमें नहीं चूकती। वह उसे निरपराध होते हुए भी स्वयं अपनी गवाही देकर जेल भिजवानेका प्रयत्न करती है और वह इसमें सफल भी होती है। वस्तुतः 'ग्रामीण समाज'में शरत्‌ने अपनी पिछली कृतियोंकी अपेक्षा नारीका अधिक यथार्थ अंकन किया है, और साथ-ही-साथ इसमें नारी-

के सम्मुख पुरुषका व्यक्तित्व अधिक प्रबल है। रमा रमेशको बचानेका भी प्रयत्न करती है, किंतु उसका यह प्रयत्न केवल कुल-मर्यादाकी रक्षाके लिए है, स्वयं रमेशके लिए नहीं। ऐसा जान पड़ता है कि ईर्ष्या, द्वेष एवं वैमनस्यसे घिरे होनेके कारण, रमाका रमेशके प्रति प्रेम बहुत ही कम अवसरोंपर उभर पाता है। रमेशके अनाचार (?) एवं देवताके प्रति अश्रद्धा होनेके कारण उसका मन उसकी तरफ़से और भी विमुख हो उठता है।

परंतु इतना सब होनेपर भी रमा एवं रमेश एक-दूसरेके ऊपर अपन अधिकारका अनुभव बराबर करते हैं। भैरवके घरमें, रमेशका हाथ पकड़कर रमा उसे भैरवसे अलग कर देती है। वह यह बात अच्छी तरह जानती है कि अनेक भलाइयों और बुराइयोंके बावजूद भी वह रमेशके विश्वासकी अमानतदार है। और वह स्वयं भी रमेशके प्रति श्रद्धा रखती है, उसकी यश-गरिमा सुनकर पुलकित हो उठती है।

अंतमें उसके व्यक्तित्वका अधिक अच्छा भाग विजयी होता है, और रमेशके प्रति अपने अपराधोंके लिए वह पश्चात्ताप करती है। मन ही मन घोर संतापके कारण वह बीमार पड़ जाती है। रुग्णावस्थामें वह ताईजीसे कहती है, "सिर्फ़ एक ही जगह हम दोनों एक-दूसरेसे अलग न हो सके। अर्थात् तुमको हम दोनोंने ही प्यार किया. . . ताईजी, तुम मेरी तरफ़से उनसे सिर्फ़ इतना ही कह देना कि वे मुझे जितनी बुरी समझते थे, मैं उतनी बुरी नहीं थी। और मैंने उन्हें जितना दुःख दिया है, उससे कहीं अधिक दुःख मैंने भी पाया है।" वस्तुतः उद्धरणकी अंतिम दो पंक्तियाँ रमाके चरित्रके लिए मूल सूत्रका कार्य करती हैं।

तीर्थ-यात्राके कुछ समय पूर्व जब रमाको देखनेके लिए रमेश जातेहैं तो वह उनसे बातचीतमें भी कुछ दूर ही रहना चाहती है, जिससे कहीं प्राचीन स्नेह फिरसे न उमड़ पड़े। उनकी महानताका कथन करते हुए वह रमेशके हाथोंमें अपने भाई यतीन्द्रको सौंप देती है, मानो उन्हें वह अपना खोया हुआ विश्वास फिर दे रही हो। और तभी वह रमेशको अपनी मौन वेदना एवं सहन-शक्तिका कुछ आभास देती है। ताईजीका निष्कर्ष तो स्पष्ट ही

है, "भगवान्‌ने उसे इतना रूप, इतना गुण और इतना बड़ा हृदय देकर क्यों इस संसारमें भेजा था, और फिर क्यों बिना किसी दोष या अपराधके इस तरह उसके सिरपर दुःखका बोझ लादकर उसे संसारके बाहर फेंक दिया..... तुम कभी भूलकर भी मेरी इस बातपर अविश्वास न करना कि तुम्हारी उससे अधिक मंगलाकांक्षिणी और कोई नहीं है।"

वेणीकी माँ तथा रमेशकी ताई विश्वेश्वरीका चरित्र 'ग्रामीण-समाज'के ईर्ष्या तथा द्वेषके अंधकारमें निर्मल दीपक-ज्योतिके समान है। इस स्नेह-मय रमणीकी तरफ़ थोड़ी देरतक देखते रहनेसे मानो सारा अंतःकरण मोहसे भर जाता है। जितना कोमल उनका हृदय है उतना ही अनिंद्य उनका सौंदर्य है। परंतु इतनी कोमलताके साथ-साथ उनके व्यावहारिक जीवनमें आवश्यक कठोरताका भी अभाव नहीं है! उचित-अनुचितका विचार रखते हुए भी वे सामाजिक व्यवहारका पर्याप्त ध्यान रखती हैं। उनके व्यक्तित्वमें साधारण मनोविकार भी हैं। वे अपने अन्यायी पुत्रकी बुराई करती हुई भी उसका मोह नहीं छोड़ सकतीं। पारिवारिक मर्यादाका उन्हें पूरा ध्यान है; अत्यंत सुलझे विचार रखते हुए वे प्राचीन रीति-नीतिकी अनुयायिनी हैं। व्यावहारिक संयमकी उनमें कमी नहीं है, और इसीका उप-देश वे रमेशको भी देती हैं। वे उससे गाँवमें रहकर सुधार-योजनामें प्रवृत्त होनेका आग्रह करती हैं। हर विषयमें उनकी सुनिश्चित धारणाएँ हैं, और उन्हींके अनुसार उनका क्रिया-कलाप चलता है। रमा, रमेश, वेणी सबके लिए उनके हृदयमें स्थान है, किंतु उनकी धार्मिक मर्यादाके सम्मुख सब तुच्छ हैं। अपने कुकृत्योंके लिए दंडित वेणीके लिए उन्हें अधिक दुःख नहीं है, इससे वे संतुष्ट ही अधिक हैं। उनके चरित्रके मूलमें उनकी संसारके प्रति अनासक्ति है और इसीके कारण उनका व्यक्तित्व इतना ऊँचा है। धार्मिक एवं नैतिक आस्थाएँ उनके जीवनमें विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

रमा एवं ताईजीके अतिरिक्त "ग्रामीण समाज"के शेष नारी-पात्र पार्श्व चरित्र हैं। रमाकी मौसी कलह-प्रिय, अदूरदर्शिनी एवं शंकालु है। कटु-भाषणमें वह अपनी सानी नहीं रखती। कुछ इसी प्रकारका, किंतु

इससे कुछ हल्का चरित्र विधवा ब्राह्मणी क्षेन्तीका है। गाँवकी अनेक बुढ़ियाओंके समान वह संसारके सारे तथ्योंको समझनेवाली एवं क्रोधी प्रकृतिकी है। भैरव आचार्यकी पुत्री भी इसी वर्गसे संबंधित है। लड़ने-झगड़ने एवं कटु भाषणमें वह विशेष योग्य है। उसकी माँका व्यक्तित्व उससे कुछ ऊँचा है।

'ग्रामीण समाज'के कथानकके अनुरूप ही उक्त तामसिक चरित्रोंका निर्माण हुआ है। कामिनीकी माँ-जैसा कोई एक-आध पात्र अवश्य ही यत्र-तत्र हृदयमें कुछ श्रद्धाका संचार कर जाता है, अन्यथा ईर्ष्या एवं वैमनस्यसे ग्रसित मानवताके दर्शन ही हमें शरत्‌की इस कृतिमें होते हैं। आदर्शसे हटकर, उपन्यासकारका नारी-चरित्रका अंकन सामान्य भावभूमिपर आ गया है, इस बातका निर्देश हम पहले ही कर चुके हैं।

अरक्षणीया

•

अरक्षणीया' के कथा-विधानकी एक-एक पंक्तिमें उपन्यासका शीर्षक जैसे व्याप्त हो गया है। निर्धन बंगाली विधवाकी विवाह योग्य पुत्रीको समाज किन तिरस्कारकी निगाहोंसे देखता है, इसीका चित्रण करनेके लिए शरत बाबूने इस गल्पका प्रणयन किया है, जो अपनी शास्त्रीय मर्यादामें एक गल्प होते हुए भी वास्तविक जीवनके क्षेत्रमें अक्षरशः सत्य है। वह सड़ा-गला एवं खोखला समाज, जिसमें विवाहके नामपर बड़े-से-बड़ा अनर्थ होता है, इस लघु उपन्यासका सर्वप्रमुख पात्र है। कथाका एक-एक अक्षर अरक्षणीया-की कातर पुकारसे मुखरित है, और अरक्षणीयाकी पुकारमें अनेक कुलीन घरकी कन्याओंकी वेदना समाहित है।

'अरक्षणीया' की मूल-कथा पर्याप्त सीधी-सरल होते हुए भी अनेक घात-प्रतिघातोंसे पूर्ण है। निर्धन तथा परिवारसे तिरस्कृत विधवा दुर्गा अपनी पुत्रीके विवाहके लिए चिन्तित है। ज्ञानदा पूरे तेरह वर्षकी हो चुकी है, परन्तु धनाभावके कारण अभीतक उसका संबंध भी निश्चित नहीं हो पाया। पड़ोसके संपन्न परिवारका कलकत्ता-प्रवासी पुत्र अतुल ज्ञानदाका बाल-सहचर रहा है। उसके बीमार पड़नेपर अकेली ज्ञानदाने ही उसकी दिन-रात सेवा-शुश्रूषा करके उसे मौतके मुँहसे बाहर निकाला था। दुर्गाके पति जब प्राण-त्याग कर रहे थे, उस समय अतुलने ज्ञानदाका भार अपने ऊपर लेनेका वचन उन्हें दिया था। बस इसी एक आशापर दुर्गाका कष्टमय जीवन बीता जा रहा था। विधवा होनेके कुछ समय पश्चात् अपने कुटुंबियोंके व्यवहारसे दुखित होकर वे अपने बड़े भाईके यहाँ चली गईं। घोर स्वार्थसे प्रेरित दुर्गाके बड़े भाईने ज्ञानदाका विवाह ज़बर्दस्ती अपने सालेके साथ

करके अपने सौ रुपयेके ऋणसे मुक्त होना चाहा, परन्तु अपनी कर्कशा-स्नेहमय मामीकी कृपासे ज्ञानदा इस घोर अभिशापसे बच गई। भाईके यहाँ रहनेसे दुर्गा तथा ज्ञानदा दोनों ही बीमार हो गईं, इधर महीनोंसे अतुलका भी कोई समाचार न मिला था। इसलिए माँ-बेटी दोनों रुग्णा-वस्थामें ही वापस अपने गाँव चली आईं। यहाँ आकर जब दुर्गाको यह ज्ञात हुआ कि अतुलका विवाह कहीं अन्यत्र हो रहा है और वह ज्ञानोके साथ अपना कोई संबन्ध नहीं मानता तो जैसे उनके ऊपर वज्रपात हो गया। इस धक्केने उनका अन्त और भी निकट कर दिया। दुर्गाके शवके जलनेके उपरान्त, जब श्मशानमें अतुलने निःसहाय ज्ञानदाको उसके द्वारा बहुत दिन पहले दी गई चूड़ियोंको तोड़ते देखा तो उसके हृदयमें प्राचीन स्नेह फिरसे उमड़ आया। प्रेमके सामने विरोधी शक्तियोंको दबना पड़ा और अतुलने वहीं, श्मशानमें ही, अरक्षणीयाको रक्षाका वरदान दिया।

इस गल्पमें निश्चित रूपसे नारी-पात्रोंकी प्रधानता है। अपने सीमित कलेवरमें ही 'अरक्षणीया' पाँच विशिष्ट नारी-चरित्रोंको बड़े व्यंजनात्मक ढंगसे पाठकके सम्मुख उपस्थित करती है। मध्यम-वर्गसे संबन्धित ये व्यक्तित्व अपनी सारी ईर्ष्या-द्वेष एवं स्नेह-सहित पुस्तक पृष्ठोंसे बाहर निकल आते हैं। उन सबकी अपनी अलग-अलग संवेदना है और अलग-अलग रूप। पर उनका चारित्रिक गठन एवं सामंजस्य समान भावसे कलात्मक है।

ज्ञानदा ही 'अरक्षणीया' है, यदि हम यह कहें तो कदाचित् अधिक अत्युक्ति न होगी। पूरी गल्पमें उसका व्यक्तित्व एक पलके लिए भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। यहाँ हमें यह अवश्य ध्यान रखना पड़ेगा कि अन्य स्थानोंकी अपेक्षा बंगालमें एक तेरह वर्षकी किशोरी बड़ी आसानीसे उपन्यास अथवा गल्पकी नायिका बन सकती है। वहाँका तत्का-लीन समाज इस छोटी-सी अवस्थामें ही, बालिकासे खेलके गुड्डे-गुड़िया छीन कर वास्तविक जीवनके गंभीर दायित्व दे देता है। इसीलिए वहाँके नारी-जीवनका अधिकांश इतना करुण, इतना असहाय है।

ज्ञानदाको शरत्‌की पूर्व-नायिकाओंसे उत्तराधिकारके रूपमें शील एवं नम्रता तो मिली है, पर रूप नहीं। 'काली-कलूटी होनेके कारण कोई उसे ग्रहण ही नहीं करना चाहता !' और तभी दुर्गाका आहत मन कह उठता है, "अरे जले समाज, अगर तू कुछ भी नहीं देखता, कुल-शील-स्वभाव-चरित्र वग़ैरह किसी गुणकी परवा नहीं करता, केवल रंग काला होनेसे ही तू लड़कीको दुरदुरा देता है, तो फिर उस लड़कीका ब्याह न होनेके लिए उसके माता-पिताको दण्ड देनेका तुझे क्या अधिकार है ?" सचमुच जिस विवाहके लिए लड़कीको 'रूपकी परीक्षा' देनी होती है, उस विवाहका मनुष्यकी आत्मासे कोई संबन्ध नहीं। ऐसी प्रथाको प्रश्रय देनेवाला समाज अधिक-से-अधिक सौन्दर्यके क्रम-विक्रयकी हाट कहा जा सकता है।

परन्तु ज्ञानदाके व्यक्तित्वमें रूपकी कमी, नम्रता पूरी करती है। उसका शील दिखावेका न होकर प्राकृतिक है। गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन करना उसका स्वभाव बन चुका है—'बचपन ही से बड़े-बूढ़ोंकी आज्ञा को—वह चाहे उचित हो चाहे अनुचित—ज्ञानदा बिना सोचे-विचारे सिर-आँखोंसे मंजूर कर लेती थी, उनकी सेवा करती थी, मुँह बंद रखकर सब कुछ सहती थी।' किसी आदेशका उल्लंघन करना, किसी आज्ञाका प्रतिवाद करना उसकी प्रकृतिके विरुद्ध है।

अपने इन चारित्रिक गुणों एवं मानसिक संस्थानमें ज्ञानदा 'परिणीता' को ललितासे बहुत कुछ मिलती है। दोनोंकी वय एक है, और रूप-रंग तथा गुण-शीलमें भी दोनों समान हैं। उनके परिवारोंकी आर्थिक दशा अत्यन्त दयनीय है, और इसीलिए वे अपने अभिभावकोंकी चिंताका कारण बनी हुई हैं। ललिता एवं ज्ञानदा दोनों अपने संपन्न पड़ोसीके पुत्रको प्यार करती हैं, और उन दोनोंको प्रेमका प्रतिदान भी मिलता है; परन्तु तभी आकाशके नक्षत्रोंकी गति वक्र होती है, और दोनोंके जीवनमें विपत्तियोंका आगमन कथाके प्रवाहको तीव्र करता है; परन्तु किशोरीके निर्मल तथा असहाय प्रेममें कितनी शक्ति है, इसे शरत् भली भाँति जानते थे, और इसी-लिए अन्तमें ज्ञानदा एवं ललिता दोनोंको ही अपना प्राप्य मिलता है।

'अरक्षणीया' की समस्या मुख्य रूपसे बंगालमें निर्धन मध्यम वर्गके परिवारोंमें कन्या-विवाहकी समस्या है। और यदि धनके साथ-साथ कुमारीके लिए रूपका भी अभाव हुआ तो फिर कहना ही क्या ? अभाग्य-वश ज्ञानदाके लिए ये दोनों अभाव संयुक्त हो गये हैं और तभी तो 'चिताका मुर्दा भी तुम्हारी लड़कीसे ब्याह करनेको राज़ी नहीं होता ।' रूप तथा धनके समक्ष शील एवं सौजन्यका बलिदान समाजमें बहुत दिनोंसे होता आया है, और 'अरक्षणीया' इसीकी करुण कथा है। वस्तुतः इस देशकी अनेक ज्ञानदाएँ इस लज्जासे बचनेके लिए आत्महत्याका सरल मार्ग पकड़ लेती हैं, परन्तु धरती माताकी तरह सहनशील होनेके कारण ही शरत्‌के इस उपन्यासकी चरित-नायिका इतनी ग्लानि एवं अपमान सहकर भी दुखी जीवनका भार उठाती रही। उसकी अपार सहिष्णुताने ही उसे जीनेके लिए विवश किया।

१२–१३ वर्षकी अल्पायुमें ही ज्ञानदा 'सयानी—पूरी औरत' हो जाती है और तबतक अविवाहित रहनेके दंड-स्वरूप वह अपने ही घरमें एक प्रकार-से अस्पृश्य एवं अमंगलसूचक हो गई है। रसोई और ठाकुरद्वारेमें जानेके लिए उसे निषेध है। यही नहीं, स्वर्णमंजरीके शब्दोंमें तो वह 'घरका एक मुर्दा है।' यदि वह निकाला नहीं जायेगा तो पड़े-पड़े सड़कर ऐसी बदबू फैलायेगा कि घरमें रहना कठिन हो जायेगा। स्वर्णने यह बात ज्ञानदा-को घृणाका आलंबन मानकर कही है, हमलोग भी उसकी असहाय अवस्थाको देखकर उसे जीवन्मृत कह सकते हैं, परंतु यहाँ वह हमारे लिए करुणाका आलंबन होगी।

ज्ञानदा और अतुल बाल-सहचर हैं। दोनोंके हृदयमें एक-दूसरेके लिए विश्वास एवं स्नेह संरक्षित है। ज्ञानदाके पिता जब मरणासन्न हो जाते हैं तो वह अपने घर आये हुए अतुलके पैरोंपर सिर पटककर रोने लगती है। उसे सांसारिक लोक-मर्यादाका कुछ भी ध्यान नहीं रहता। अतुल भी ज्ञानदाके अधिकारको मान्यता देता है और मरते हुए प्रियनाथके सम्मुख उसका भार अपने ऊपर ले लेता है। ज्ञानदाको अपने प्राप्यके मिलनेकी

आशा हो जाती है, जिसे उसने स्वयं मृत्युके मुँहमें से बचाया था, सावित्री-के समान यमराजके हाथसे छीन लिया था, किंतु जब कुछ दिनोंके उपरांत उसे यह ज्ञात होता है कि उसका अपना अतुल उसीके सामने दूसरेका होने-वाला है तो उसके दुःखकी सीमा नहीं रहती । उसका अस्तित्व निराधार हो जाता है और वह अतुल-द्वारा दी गई चूड़ियोंको, जिन्हें वह प्राणोंके समान प्रिय समझती थी अपनी माँके जलते हुए शवके सम्मुख तोड़कर फेंक देती है । किंतु ये टूटी हुई चूड़ियाँ अतुलके मनको ज्ञानदासे फिर जोड़ती हैं, और वहीं श्मशानमें अरक्षणीयाको अपने प्रियतमका संरक्षण मिल जाता है ।

ज्ञानदाको चरित्रकी नम्रता अपनी माँ दुर्गासे विरासतके रूपमें मिली है । बंगालकी विधवा नारी यदि निर्धन भी हो तो उसके दुःखोंका अंत नहीं रहता । संयोगसे दुर्गा इसी कोटिकी स्त्री है । इसीलिए उसमें कुछ-कुछ मान-अपमानसे परे होनेकी बात आ गई है । वह स्वर्णसे कहती है, "नहीं दीदी, मेरे अब मान-अभिमान क्या हैं !" पर इससे यह न समझना चाहिए कि उसका स्वाभिमान एकदम नष्ट हो गया है । जब उसे अपने बड़े भाईके घर जानेके लिए कहा जाता है तो बिना बुलाये उनके यहाँ जानेके लिए वह एकाएक तैयार नहीं होती । अपनी ओरसे वह किसीके भी गले नहीं पड़ना चाहती ।

दुर्गा अपनी एकमात्र संतान ज्ञानदाको प्राणोंके समान चाहती है । उसे भूखा देखकर वह आप खाना तक नहीं खा सकती, किंतु ऐसी स्नेह-शील जननी भी पुत्रीका दुर्भाग्य देखकर झुँझला उठती है । क्रोधके आवेशमें यदि वह अतुलको मरनेके लिए कह सकती है तो साथ ही साथ वह ज्ञानोको अपनी खाटसे भी ढकेल सकती है । अत्यधिक राग एवं ममताको इस प्रकार क्रोध तथा खीजमें बदलते देख सहृदय पाठकका मन भर आता है । दुर्गाकी प्रकृतिमें इस क्षणिक तामसिकतका एकमात्र कारण है पुत्री-विवाहकी चिंता, और इसी चितामें वह घुल-घुल कर प्राण-त्याग कर देती है ।

'अरक्षणीया' में दुष्ट चरित्र दुर्गाकी विधवा जिठानी स्वर्णमंजरीका है। दिगंबरी, एलोकेशी, बुढ़िया वैष्णवी आदिके व्यक्तित्वकी सारी कड़ुआहट स्वर्णको उत्तराधिकार-स्वरूप मिली है। वह प्रकृतिकी कटु होनेके साथ ही साथ वाणीकी भी कटु है। ज्ञानदाको वह 'पंख कटी परी' एवं 'पीपलपरकी चुड़ैल' कहती है, दुर्गाके ऊपर अपने देवरकी गृहस्थीको विनष्ट करनेके प्रयत्नका आरोप लगाती है। इन्हीं सब बातोंको देखकर अंतमें छोटी बहूको कहना पड़ता है, "दीदी, दो-एक साल मधु-संक्रांतिका व्रत कर डालो, जिससे दूसरे जन्ममें ज़रा मीठी बोली-बानी हो।"

चारित्रिक कटुताके साथ स्वार्थवृत्ति उसके व्यक्तित्वकी मूल संवेदना है। अपने लिए भलाईका मार्ग ढूँढ़कर दूसरेको वह सदैव बुराईकी ओर बढ़ाना चाहती है। वह चाहती है कि दुर्गा भाईके यहाँ जाकर अपनी लड़की-को किसी मर्दके गले मढ़ दे, जिससे स्वयं उसे कोई बुरा न कह सके। अपनी देवरानी एवं उसकी पुत्रीके लिए वह एक पाई भी नहीं ख़र्च करना चाहती।

स्वार्थपरताके कारण ही स्वर्णमें हृदयहीनताकी भी मात्रा कम नहीं है। उपन्यासकारके शब्दोंमें, 'उसके हृदय नामका कोई पदार्थ तो था ही नहीं—वह इस बलासे बिलकुल बरी थी।' लेखककी इस टिप्पणीका महत्त्व तब समझमें आता है, जब वह निर्दोष, निःसहाय एवं हतभागिनी ज्ञानदाको अतुलके सामने अमाननीय ढंगसे बुरा-भला कहती है—'हज़ार बार कह चुकी कि तुम्हारा मुँह देखनेसे सात पीढ़ियाँ नरकमें गिरती हैं, मेरे सामने तुम न आया करो।' एक अबोध बालिकाके लिए इतने कठोर एवं पैने शब्दोंका प्रयोग स्वर्णमंजरी ही कर सकती है। ज्ञानदाको तो वह 'खानगी' (वेश्या) कहनेमें भी संकोच नहीं करती। संक्षेपमें, स्वर्ण प्रकृति एवं वाणीकी कठोर, कलहप्रिय, हृदयहीन तथा मर्यादा-शून्य है।

उपन्यासमें अनाथनाथकी पत्नी छोटी बहूका चरित्र अपेक्षाकृत कम अंकित है। वह आलस्यकी प्रतिमूर्त्ति, तथा कटु होती हुई भी अपनी जिठानी स्वर्णके समान तीखी नहीं है। आलसी होनेके कारण वह दूसरोंकी व्यथाका अनुभव करती हुई भी अपने परिश्रमसे उनका दुख

दूर नहीं कर पाती, परंतु वह दूसरोंका बुरा नहीं चाहती और न यथासंभव अन्यायका पक्ष ही ग्रहण करती है। अतुलको भी समयपर वह खरी-खरी सुनानेमें नहीं चूकती। और जब ज्ञानदाको घरसे निकालकर 'मलेरियाके डिपो' हरिपालपुर भेज देनेका प्रस्ताव उसके कानोंतक पहुँचता है तो वह एकांतमें अपने स्वामीसे कहती है, "तुम सठिया तो नहीं गये, जो बड़ी भावजकी सलाहसे ऐसे असमयमें रोगी माँके पाससे लड़कीको जुदा करनेकी बात कह आये ? क़साई लोग भी–जिनका पेशा ही हत्या करना है—तुम्हारी अपेक्षा अधिक दया-माया रखते होंगे।" वस्तुतः छोटी बहूका मन ऊपरसे खुरदुरा होते हुए भी अंदरसे संवेदनशील है। उसके व्यक्तित्वकी तामसिक वृत्तियाँ भलाईके परमाणुओंको विजित नहीं कर सकी हैं।

'अरक्षणीया' में सबसे सुगठित चरित्र दुर्गाकी भाभी भामिनीका है। उसके व्यक्तित्वकी पृष्ठभूमिमें मनोविज्ञानका वह सिद्धांत स्थित है, जिसके अनुसार ऊपरसे कठोर एवं कर्कश दिखाई पड़ने वाले व्यक्ति हृदयके बड़े कोमल एवं सरल होते हैं। भामिनीका चरित्र इसी जातिका है। वह बातचीत जरा ऐंठ-ऐंठकर करती है, और जैसी वह बोलनेमें तेज है, वैसी ही लड़नेमें भी प्रवीण। परंतु वह गले पड़कर किसीसे लड़ना-झगड़ना नहीं चाहती। इस प्रकार उसके चरित्रका तीखापन अधिकांशतः भलाईके लिए ही है, बुराईके लिए नहीं। अपनी ननदकी एकमात्र संतान ज्ञानदाकी परिचर्या वह बड़े मनोयोगसे करती है। इससे उसका अप्रकाशित वात्सल्य भलीभाँति प्रकट होता है। दुर्गाने उसके स्वभावकी तीव्रताके कारण उसका नाम 'जला कुंदा' रख छोड़ा है, परंतु अंतमें वापस घर जाते समय उसे अपनी भाभीकी उच्चाशयताका ज्ञान होता है, और वह भरे हुए कंठसे भामिनीसे क्षमा माँगती है।

वस्तुतः भामिनीमें प्यार करनेकी अपरिमित शक्ति है और इसका पता हमें उसके रुग्ण ज्ञानदाके प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहारसे लगता है। सच तो यह है कि भामिनी ऊपरसे देखनेसे ही 'जला कुंदा' लगती है, अंदर तो वह चंदनके समान शीतल है। इस चारित्रिक विपर्ययका अध्ययन शरत्‌के

मनोवैज्ञानिकने बड़े पूर्ण एवं सहृदय ढंगसे किया है। प्रारंभमें दुर्गा उससे मन ही मन बहुत डरती है, परंतु धीरे-धीरे उसकी घृणा एवं भय कम हो जाता है।

अपनी प्रकृतिके अनुकूल ही, स्पष्टवादिता भामिनीके चरित्रकी प्रमुख विशेषता है। खरी-खरी सुनानेमें वह अपने पतिको भी नहीं छोड़ती। शंभुके स्वार्थका पर्दाफ़ाश करती हुई वह चिल्ला-चिल्लाकर कहती है, "मामा हैं! मामापन फैलाने आये हैं! नवीनके साथ ब्याह करोगे! तभी तो मय सूदके सौ रुपये अदा हो सकेंगे, क्यों न? इसीलिए वह बड़ा अच्छा वर है, क्यों?.....तुम्हें गलेमें फाँसी लगाकर मर जानेके लिए रस्सी नहीं मिलती कहीं क्या? धिक्कार है! लानत है!" वस्तुतः निःसंतान भामिनीमें माया-ममताका अभाव नहीं है, इसीलिए किसीके भी प्रति किये जानेवाले अन्यायको वह सहन नहीं कर सकती।

स्पष्टवादिताके साथ चरित्रकी दृढ़ता एवं स्वाभिमान रहता है। अपने पति-द्वारा हरामज़ादी कहे जानेपर उसके क्रोधका पार नहीं रहता, शंभुको वह चेतावनी देती है, "फिर ज़बानसे यह गाली निकाली तो तुम्हारे इस मुँहमें जलती हुई चूल्हेकी लकड़ी जो न ठूँस दूँ तो मैं पाँचू घोषालकी लड़की ही नहीं.....तरकारी काटनेकी मेरी छूरी देख रखो। साले-बहनोईकी एक साथ नाक काटकर तब जान छोड़ूँगी। मेरा नाम भामिनी है, यह याद रहे।" यहाँ इस बातका ध्यान हमें अवश्य रखना पड़ेगा कि इस शक्तिशाली क्रोधकी पृष्ठभूमिमें वह दया है जो दुर्गा एवं उसकी पुत्रीके प्रति अन्याय होते देखकर भामिनीके हृदयमें उमड़ पड़ती है। ज्ञानोके प्रति उसकी ममताका परिचय हमें तब मिलता है, जब वह बताती है कि उसकी बीमारीमें डाक्टरको बुलानेके लिए उसने अपना एक मात्र गहना बेच डाला था। कर्कशताके आवरणमें दबी हुई भामिनीके हृदयकी यह विशालता सचमुच ही श्रद्धेय है। उसके जीवनका ध्येय है, "जो कुछ अपना है वही लेकर रखो, खाओ-पियो। पराई रकम लेकर अपना पेट मोटा करनेकी कोशिश करते हो? ऐसा करनेवालेका भगवान् कभी भला नहीं करते।"

जैसा अन्यत्र कहा जा चुका है, निर्धन बंगाली कन्याका विवाह 'अरक्षणीया'की कथाका सर्वप्रमुख पात्र है। जब दुर्गा कहती है, "ओः ! इतने बड़े शत्रु (लड़की) को भी अपने गर्भमें रखने और खिला-पिलाकर बड़ा करनेकी झखमारी माताको करनी पड़ती है" तो उपन्यासकी समस्या हमारे सम्मुख स्पष्ट रूपसे आ जाती है। फिर, विवाह न कर पानेकी चिंता ही नहीं, वरन् उसके फलस्वरूप समाजसे च्युत हो जानेकी आशंका भी पुत्र-वती जननीके सिरपर सदैव मँडराया करती है—'मैं अपने समाजकी निष्ठुरता या धींगाधींगी खूब जानती हूँ। लड़कीका ब्याह न करें, तो बिरादरीसे अलग कर दिये जायँ।' और तभी आँसुओंकी धाराके बीच दुर्गाको अतुलसे कहना पड़ता है, "दूसरे जन्ममें मैंने न-जाने कितनी स्त्री-हत्या, बाल-हत्या की हैं अतुल, जिससे इस जन्ममें मेरे पेटसे लड़की पैदा हुई है।" वस्तुतः एक निर्धन गृहस्थको अपनी काले रंगकी लड़कीका विवाह करनेके लिए क्या-क्या करना पड़ता है, इसका सही अनुमान लगाना बहुत कठिन है। इसके फलस्वरूप सोलह सालकी लड़कीका विवाह साठ सालके वृद्धसे हो जाता है, जिसे देखकर एक बार शायद निष्ठुरताके हृदयमें भी दयाका संचार हो सकता है।

और फिर बंगालमें ११-१२ सालकी लड़की "सयानी—पूरी औरत' हो जाती है, और यदि उस अवस्थातक उसका विवाह न हो सका तो अपने घरमें ही वह एक प्रकारसे अस्पृश्य समझी जाने लगती है। इतना होनेपर भी प्रांतके किसी-किसी भागमें ज़बर्दस्ती पकड़कर ब्याहकर लेना रोज़मर्राकी साधारण घटना है। इन अत्याचारोंसे पीड़ित होकर ही ज्ञानोको कहना पड़ता है, "मेरा ब्याह करनेवाला कोई नहीं है, तो भी मेरी उमर बढ़ती ही जाती है—यह भी क्या मेरा अपराध है, प्रभो ?" वस्तुतः बंगालमें नारी होनेके अपराधके लिए शायद एक ही प्रायश्चित्त है, और वह है आत्म-हत्या। तत्कालीन इतिहास इन जघन्य कृत्योंसे पग-पगपर भरा हुआ है। चिताका मुर्दा भी निर्धन लड़कीसे विवाह करनेके लिए तैयार नहीं है, और दूसरी ओर समाजका फौलादी पंजा सिरके ऊपर है; ऐसी दशामें लड़कीके

लिए जो कुछ भी किया जायगा वह सब उसके लिए आत्महत्याकी कोटिका ही होगा। या तो उसका विवाह किसी रुग्ण एवं असहाय व्यक्तिके साथ हो जायगा, या उसे किसी वृद्धके सम्मुख रूपकी परीक्षा देनी होगी, अथवा अंततः वह जीवनका मोह ही छोड़ देगी। इस प्रकार शास्त्रकी बलि वेदीपर कन्याका बलिदान (कन्यादान नहीं!) बंगालके समाजमें बहुत दिनों तक होता रहा है, जिसके विरोधमें बड़े-बड़े सुधारक एवं साहित्यिक भी नहीं ठहर सके।

यह है बंगालमें कन्या-विवाहका अत्यंत सूक्ष्म चित्रण, जो प्रस्तुत उपन्यासका कदाचित् सर्वप्रमुख पात्र है, और जिसकी गणना मानवताके महानतम अभिशाप एवं कलंकके अंतर्गत की जा सकती है। शरत्‌की 'अरक्षणीया' इस समस्याका एक संक्षिप्त, परंतु अत्यंत मर्मस्पर्शी दृश्य उपस्थित करती है।

श्रीकांत

[श्रीकांतेर भ्रमण काहिनी]

●

'श्रीकांत'के चार पर्वोंकी रचना उपन्यासकारने अलग-अलग की है। चारों पर्वोंके रचनाकालमें समयका पर्याप्त व्यवधान है। 'श्रीकांत'का प्रत्येक पर्व अपने आपमें पूर्ण है—हिंदीके 'शेखर : एक जीवनी'की भाँति। अतः पूरे उपन्यासमें एक प्रकारसे समरसताका अभाव ही कहा जायगा। जीवनके विश्रृंखल सूत्रोंको कलाकारकी संवेदनामें रँगकर, शरतने अपनी भ्रमण-कहानी प्रस्तुत की है। इसीलिए उपन्यासके पात्रोंमें, किसी बँधे-बँधाये एवं सुगठित चरित्रको खोजना प्रायः असफल रहता है। किंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि 'श्रीकांत'में शरत् बाबूकी उत्कृष्ट चरित्र-चित्रण-शैली कुछ नीचे गिर गई है, वरन् यह कि उसमें किसी निश्चित तारतम्यका अभाव है। और वस्तुतः आत्मकथात्मक उपन्यासमें इस प्रकारकी शैली नितांत स्वाभाविक ही नहीं, स्यात् नितांत आवश्यक भी है। मानव-जीवनकी लम्बी अवधिमें बहुतसे व्यक्तित्व घटनास्थलपर एक बार आकर फिर सदैवके लिए तिरोहित हो जाते हैं। ऐसे चरित्रोंको उनके अल्पकालीन विराममें ही अंकित करना चाहिए। सच तो यह है कि ऐसे पात्रोंका क्षणिक संपर्क व्यक्तिके जीवनको सदाके लिए प्रभावित कर जाता है।

अस्तु, 'श्रीकांत'की कथा बहुत दूर-दूरतक बिखरी हुई है। स्वयं नायकके जीवनके सहारे ही इन विश्रृंखल सूत्रोंमें परस्पर एकता स्थापित हो सकती है, अन्यथा विभिन्न कथा-भाग एक दूसरेसे संबद्ध नहीं जान पड़ते। घुमक्कड़ श्रीकांतका परिचय बाल्यावस्थामें ही इंद्रनाथसे हो जाता है। ये दोनों बाल-सहचर अकेले बहुत दूर-दूरतक नावपर चढ़कर घूमने जाते हैं। एक दिन

इंद्रनाथ श्रीकांतको नदी किनारे, एक निर्जन वनमें रहनेवाली अपनी मुँह-बोली दीदीके यहाँ ले जाता है। यह दीदी शांत, संयमी और पति-भक्त अन्नदा है, जिसके व्यक्तित्वका अमिट प्रभाव श्रीकांतपर जीवन-पर्यन्त रहता है। अपने पति शाहजीकी मृत्युके उपरांत एक दिन अन्नदा जीजी बिना किसीको बताये हुए, अकेली घर छोड़कर चली जाती हैं, और श्रीकांत अपनी दीदीका अधिकाधिक संपर्क पानेके लिए लालायित रह जाता है।

कुछ और बड़ा होनेपर श्रीकांतका परिचय एक नाचने-गानेवाली बाईजी प्यारीसे होता है, जो वस्तुतः उसकी निकट बालसहचरी राजलक्ष्मी है। श्रीकांत उसे नहीं पहिचान पाता, परंतु वह श्रीकांतको पहिचान लेती है। इसके बाद जब दोनों एक-दूसरेको परस्पर अच्छी तरह जान लेते हैं, तो उनके हृदयमें शैशवावस्थाका प्रणय फिरसे जाग उठता है। राजलक्ष्मी श्रीकांतके अत्यंत निकट आना चाहती है, परंतु उसका वैधव्य एवं उसकी वर्त्तमान स्थिति बीचमें रुकावट बन जाती है। पर श्रीकांत और प्यारी एक-दूसरेके ऊपर अपने अधिकारका अनुभव करने लगते हैं, और उसका प्रयोग भी करते हैं।

श्रीकांत अपनी घुमक्कड़ प्रवृत्ति तथा व्यवसायके अभावके कारण बर्मा चला जाता है। रास्तेमें उसकी जान-पहिचान अभया नामक एक 'फारवर्ड' लड़कीसे होती है, और उन दोनोंमें परस्पर दृढ़ मैत्री स्थापित हो जाती है। बर्मा पहुँचनेपर श्रीकांत अभयासे प्रायः मिला करता है, और एक बार तो घोर रुग्णावस्थामें श्रीकांतकी परिचर्या करके अभया उसकी जान बचा लेती है। अभयाके कहनेसे ही वह राजलक्ष्मीके पास वापस कलकत्ते चला आता है।

अनेक दिन राजलक्ष्मीके साथ रहनेके बाद श्रीकांत फिर एक दिन बाहर निकल पड़ता है। इस बार वह एक वैष्णव-मठमें पहुँचता है, जहाँकी प्रमुख वैष्णवी कमललता उसे रोक रखती है। श्रीकांतका मन भी वहाँसे वापस आनेको नहीं होता, और परम वैष्णवीय वातावरणमें उसके कुछ दिन बड़े आरामसे कट जाते हैं। कमललता श्रीकांतको हृदयसे चाहती है, और मन ही मन उसका बड़ा आदर करती है।

अंततः श्रीकांत जब उस आश्रमसे फिर वापस कलकत्ते पहुँचता है तो उसे वहाँ राजलक्ष्मी उसकी प्रतीक्षामें मिलती है। इस बार राजलक्ष्मी अपने सारे मोहको छोड़कर, अपने सारे वैभवको त्यागकर, श्रीकांतको संपूर्ण रूपमें पानेके लिए आई है। वह श्रीकांतको अपने साथ गंगामाटी नामक गाँवमें ले जाती है और वहाँ दोनों व्यक्ति परम शान्तिके वातावरणमें रहने लगते हैं।

तभी एक दिन श्रीकांतको अपने मित्र, एवं कमललताके प्रिय, गौहरकी बीमारीका समाचार मिलता है। वह सीधा मुरारीपुरके लिए अकेले प्रस्थान करता है। उसके वहाँ पहुँचनेके पहले ही गौहरकी मृत्यु हो जाती है। कमललताके दुःखका पार नहीं रहता, और उसकी मानसिक वेदना तब और बढ़ जाती है, जब गौहरके साथ उसका अनुचित संबंध जानकर मठके अधिवासी उसका तिरस्कार करते हैं। श्रीकांत वापस गंगामाटीके लिए चलता है; कमललता भी उसके साथ स्टेशनतक आती है। श्रीकांत उसे वृन्दावनका टिकट देकर ट्रेनमें बैठा देता है। 'गाड़ी दूर-से-दूर होने लगी, गवाक्षसे देखा, उसके झुके हुए मुँहपर स्टेशनकी प्रकाश-माला कई बार आकर पड़ी और फिर अंधकारमें मिल गई। सिर्फ़ यही मालूम हुआ कि हाथ उठाकर मानो वह मुझे शेष नमस्कार कर रही है।' और यहीं श्रीकांतकी कथा समाप्त हो जाती है—मानव-जीवनकी भाँति ही अपूर्ण और अशेष!

'श्रीकांत'के विस्तृत कथा-भागमें लेखकने तेरह नारी-पात्रोंका अवतरण किया है। इनमेंसे अन्नदा, राजलक्ष्मी (प्यारी), अभया और कमललता उपन्यासमें प्रमुख पात्रोंका स्थान ग्रहण करते हैं; उनके व्यक्तित्व काफ़ी उभरे हुए हैं। टगर, सुनंदा और पूटूँका कथा-विधानमें स्थानीय महत्त्व है, और शेष बुआजी, मालती, बर्मी स्त्री, कुशारी पत्नी, चक्रवर्त्ती-गृहिणी और पद्मा पार्श्व-चरित्र मात्र हैं। प्रमुख पात्रोंमें राजलक्ष्मीको छोड़कर, अन्नदा, अभया और कमललताका चित्रण केवल एक-एक पर्वमें ही हुआ है। अन्नदा जीजी प्रथम पर्वमें हमारे सम्मुख आती हैं, अभया दूसरे पर्वमें और कमललता चतुर्थ पर्वमें। केवल राजलक्ष्मी उपन्यासके चारों पर्वोंमें अंकित

है। वस्तुतः राजलक्ष्मी ही 'श्रीकांत'की कथाकी, और श्रीकांतके व्यक्तित्व की प्रमुख संवेदना है। सबसे पहले हम उसीके चरित्रका विश्लेषण करेंगे।

राजलक्ष्मी अथवा प्यारीको हम श्रीकांतके जीवनका सत्य कह सकते हैं। उपन्यासमें उसके प्रथम दर्शन प्यारीके रूपमें होते हैं। कुमारके तंबूकी बाईजी, 'खूब सुंदर, सुकंठ और गानेमें निपुण' है; उसके होठोंकी गठन कुछ इस क़िस्मकी है, मानो हर बात वह मज़ाक़ में ही कहती है और मन ही मन हँसती है। एक वेश्याके आवरणमें भी वह श्रीकांतके प्रति अपने प्रेमको हृदय-में सुरक्षित रख छोड़ती है। अपने बाल-सहचरको देखते ही उसके व्यक्तित्व-की प्यारीका जीवन समाप्त हो जाता है। उसका इधर-उधर भटकता हुआ मन श्रीकांतपर आकर स्थिर हो जाता है, जैसे कोई बरसातकी उमड़ती हुई नदी किसी अज्ञात शक्तिके वशीभूत होकर शारदीय रजनीकी सुरसरि-धारके समान शांत हो जाय। यहींसे उसके जीवनका प्रथम अंक समाप्त होकर द्वितीय अंक आरंभ हो जाता है। वह श्रीकांतके घुमक्कड़ एवं बीहड़ मनको वशमें करनेकी चेष्टा करती है; उसकी श्रीकांतसे यही प्रार्थना है कि 'सुखके दिनोंमें नहीं, तो दुःखके दिनोंमें मुझे न भूलिए।'

राजलक्ष्मीके चरित्रके मूल्यांकनके लिए, उसके श्रीकांतके साथ संबंधको हमें माप-स्वरूप स्वीकार करना होगा। उपन्यासके उत्तरार्द्धमें तो उसने अपना जीवन श्रीकांतके साथ एकाकार ही कर दिया है। और उसका यह आत्मसमर्पण तभी प्रारम्भ हो जाता है, जब वह परिणत वयमें श्रीकांतको प्रथम बार देखती है। मार्गमें श्रीकांतकी रुग्णावस्थाका समाचार पाकर वह सीधी उसे अपने घर लिवा लाती है। श्रीकांतके स्वस्थ होनेपर वह अपने खोये हुए बाल्यावस्थाके अधिकारको पुनः प्राप्त करना चाहती है, किंतु श्रीकांतका थकित व्यवहार उसे कुछ संकुचित कर देता है। कुछ दिनों तक लक्ष्मी एवं श्रीकांतमें इसी प्रकारकी आँख-मिचौनी चलती है। पर अंततः श्रीकांतके पुरुषकी अकर्मण्य प्रकृतिपर राजलक्ष्मीकी नारीकी ममता एवं स्नेह विजय प्राप्त कर लेता है। श्रीकांतको पानेके लिए राजलक्ष्मी-ने कितने प्रयत्न किये हैं, इसका स्पष्ट उल्लेख वह स्वयं करती है—"तुम्हें

पानेके लिए मैंने जितना किया है, उससे आधा भी अगर भगवान्‌के पानेके लिए करती तो अब तक शायद वे भी मिल जाते। मगर मैं तुम्हें न पा सकी।" उद्धरणके अंतिम अंशमें श्रीकांतको न पा सकनेकी जो खीज परिलक्षित है, वह स्पष्ट ही श्रीकांतकी अस्थिर प्रकृतिके कारण है। पर राजलक्ष्मीका अपार धैर्य श्रीकांतको पाकर ही रहता है। गोसाईं द्वारिकानाथसे वह यही आशीर्वाद चाहती है कि इसी तरह हँसते-खेलते इनके समक्ष ही एक दिन वह मर जाये। श्रीकांतसे वह कहती है, "तुम्हारी कुलटा राजलक्ष्मीने अपनी नौ वर्षकी उम्रमें उस किशोर वरको एक मनसे जितना ज़्यादा प्यार किया था, इस संसारमें उतना ज़्यादा प्यार कभी किसीने किसीको नहीं किया।" वस्तुतः श्रीकांतके प्यारमें ही राजलक्ष्मीका भाग्य निहित है।

राजलक्ष्मीके जीवन-वृत्तसे उसकी चारित्रिक दृढ़ताका बड़ा स्पष्ट आभास मिलता है। चतुर-बुद्धि रतनकी इस बातमें पर्याप्त सचाई है कि 'बाईजीकी बातमें कभी ज़रा भी फ़र्क़ नहीं पड़ता।' मानसिक दुःखका अत्यधिक भार उठानेपर भी वह धरित्रीके समान सहनशील है। अभयाके शब्दोंमें 'राजलक्ष्मीने जीवनमें दुःखको ही संबल-रूपसे प्राप्त किया है।' पर इतनेपर भी उसके चरित्रमें विशुद्ध वैष्णव सहनशीलताका नमूना मिलता है। संयम उसके स्वभावमें सहज बन गया है। वह श्रीकांतसे स्वयं कहती है, "तुम्हारी लक्ष्मी चाहे जैसी हो, लेकिन अस्थिर मनकी नहीं है। उसने एक बार जिसे सत्य समझ लिया, फिर उसे उससे कोई डिगा नहीं सकता।"

संयम एवं सहनशीलताके साथ-साथ राजलक्ष्मीमें व्यावहारिक साधनाकी भी कमी नहीं है। वह प्रारंभसे ही एक भारतीय आचरण-शील रमणीके समान हमारे सम्मुख आती है। पुरुष एवं स्त्रीका भेद करती हुई वह कहती है, "वे जो इच्छा हो खावें, जो इच्छा हो पहिनें, जैसे भी हो सुखसे रहें, हम लोग आचारका पालन करती जावें, बस यही बहुत है।" कृच्छ्र-साधनामें उसकी प्रवृत्ति उसे तपःपूत बनाती है। छुआछूतका विचार उसके जीवनके साथ इस प्रकार ग्रथित है कि इस विषयमें सत्यासत्यका प्रश्न ही अवैध

है। गुरु-पुरोहित, तैंतीस करोड़ देवता, तथा बहुत-सी विधवाओंका भरण-पोषण उसके चरित्रकी धार्मिक पृष्ठभूमि है।

लक्ष्मी एक ओर जहाँ अपने चरित्रमें इतनी सहज है, वहीं उसके व्यक्तित्वमें आत्माभिमान एवं स्पष्टवादिता भी है। वह किसी बातको छिपाना नहीं जानती। प्यारीके रूपमें वह श्रीकांतसे कहती है, "मैं भली औरत नहीं हूँ, यह तो तुम जानते हो? फिर भी, तुम्हें क्यों संदेह नही हुआ?" स्पष्टवादिताकी शक्ति वह कमललतासे अर्जित करती है, और अपने प्रियतमको वह अपनी सारी कलंक-कथा, उसके न चाहते हुए भी, सुना देती है। उसे अपने ऊपर पूरा विश्वास है और तभी तो वह कहती है, "जिस साधनासे तुमको पाया जाता है, उससे तो भगवान भी मिल सकते हैं। यह वैष्णव वैरागियोंका काम नहीं है। मैं डरने जाऊँगी न जाने कहाँकी इस कमललतासे?"

अपने पूर्वके कलंकित जीवनके बावजूद राजलक्ष्मीका चरित्र अत्यंत शांत एवं दयामय है। सहिष्णुता उसके स्वभावमें है। गाँवमें जो लोग उसके परम शत्रु हैं, उन्हींके आठ-दस लड़कोंको वह पढ़ाई-लिखाईका ख़र्च देती है। शीतकालमें कितने ही लोगोंको कपड़े और कम्बल देती है। वस्तुतः उसकी इस दयाकी पृष्ठभूमिमें स्वस्थ भावुकता है। उसका हृदय इतना कोमल है कि वह दूसरोंके कष्टोंका वर्णन सुन तक नहीं सकती। इसीलिए स्टेशन-प्लेट-फार्मपर मिले हुए एक ग़रीब क्लर्ककी लड़की सरलाको वह एक साड़ी उप-हार-स्वरूप भेजती है। दान ही नहीं वरन् अदम्य त्यागकी भावनासे उसका व्यक्तित्व परिपूर्ण है। सर्व-त्यागके द्वारा ही उसने अपने प्रेमको ऐसा निष्पाप, ऐसा एकांत बना लिया है। श्रीकांतके शब्दोंमें, "एक-एक करके सभी कुछ छोड़ दिया मालूम होता है। सिर्फ़ एक मैं ही बाक़ी रह गया हूँ।" निष्काम परोपकारकी भावना उसके मनमें बहुत दिनोंसे लगी हुई है। श्रीकांत-द्वारा, अनजान चक्रवर्त्ती-गृहिणीकी निर्धनता सुनकर वह उनका बहुत-सा क़र्ज़ा अपने ऊपर ले लेती है। यहाँ हमें रुग्ण श्रीकांतकी परिचर्या करनेके कारण चक्रवर्त्ती-गृहिणीके प्रति उसकी कृतज्ञता भी दिखाई देती है।

रतनके अनुसार "माँ जब देती हैं तो दोनों हाथोंसे उँडेल देती हैं।" भगवती बाबूकी चित्रलेखाकी तुलनामें शरत्‌की राजलक्ष्मी अधिक शांत परंतु अधिक प्रभविष्णु है। उसके रागमें भी अनासक्ति है। इसीलिए संन्यासी आनंदको वह 'दुनियासे अलगकी कोई चीज़' दिखाई पड़ती है।

राजलक्ष्मीके परोपकार-कृत्योंसे स्पष्ट है कि उसका मन कितना दया एवं ममता-मय है। अपने सौतेले लड़के बंकूको वह अपने पुत्रके समान ही मानती है। यौवनावस्थामें बदल जानेपर भी, बालक बंकूकी धारणा है कि ऐसी माँ सबको नसीब नहीं हो सकती। राजलक्ष्मी स्वयं उसकी भावनाओंका इतना अधिक ध्यान रखती है कि उसके समक्ष वह यह भी नहीं चाहती कि कोई उसे 'प्यारी' कहकर संबोधित करे, और इस प्रकार उसके पुत्रको स्मरण दिलाये कि उसकी माँ एक नाचने-गानेवाली बाईजी है। 'उसकी असंयत कामना, उच्छृङ्खल प्रवृत्ति, उसे चाहे जितने अधःपातकी ओर क्यों न ठेलना चाहे, परंतु यह बात भी तो उससे भूली नहीं जाती कि वह एक लड़केकी माँ है।' लेखकके अनुसार, ऐसी रमणियोंको देखकर यह दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि नारीकी चरम सार्थकता मातृत्वमें है। राजलक्ष्मी अपनी मूल प्रकृतिमें एक गृहिणी है, इसीलिए 'लोगोंका गेरुवा वसन छुड़वाना उसका काम हो गया है।' एक गृहिणीके रूपमें उसका अतिथि-सत्कार उसकी ख़ास अपनी चीज़ है।

अपने इन्हीं गुणोंके कारण राजलक्ष्मीकी प्रभविष्णुता अदम्य है। रतनके शब्दोंमें, "क्या जाने क्या जादू-मंत्र जानती हैं वे! अगर कहें कि तुम लोगोंको यमराजके घर जाना होगा, तो इतने आदमियोंमें किसीकी हिम्मत नहीं कि कह दे, 'ना'।" वस्तुतः उसकी इस प्रभविष्णुताका एक कारण उसकी सूक्ष्म अंतर्दृष्टि है। वह दूसरेके मनकी बातोंको दर्पणवत् स्पष्ट देख सकती है। इसके अतिरिक्त अपने सरस व्यवहारमें भी वह बेजोड़ है। 'अपनी इच्छाको ही जबर्दस्ती दूसरेके कंधेपर लाद देनेके कड़ुएपनको वह स्नेहके मधुर-रससे इस तरह भर दे सकती है कि उस ज़िदके विरुद्ध किसीका भी कोई संकल्प सिर नहीं उठा सकता।' उसकी व्यवहार-

कुशलतामें वह करामात है, जिससे कुशारी पत्नी एवं उनकी देवरानीके बीच बहुत दिनसे चला आनेवाला कलह समाप्त हो जाता है। इस व्यावहारिक बुद्धिके न होनेके कारण ही वह शास्त्र-ज्ञाता सुनंदाको बहुत ऊँचा स्थान नहीं देती। उसकी विचार-शक्ति एवं मनुष्योंकी परख कुछ कम नहीं है। सुनंदा के बारेमें वह कहती है, "उसकी पोथीकी विद्या जबतक मनुष्योंको सुख-दु:ख, भलाई-बुराई, पाप-पुण्य, लोभ-मोहके साथ सामंजस्य नहीं कर पाती, तबतक पुस्तकोंके पढ़े हुए कर्त्तव्य-ज्ञानका फल मनुष्योंको बिना कारण छेदेगा, अत्याचार करेगा और तुम्हें बताये देती हूँ कि संसारमें किसीका भी कल्याण नहीं करेगा।" इस कथनसे हमें उसकी गहरी अंतर्दृष्टिका पता चलता है। किंतु उसकी व्यवहार-कुशलता एवं अंतर्दृष्टिके अतिरिक्त, उसके चरित्रकी प्रभावोत्पादकताका मुख्य कारण उसका 'भद्रपन' है। वह अपनी प्रकृतिसे कभी किसीको हानि नहीं पहुँचा सकती। राजलक्ष्मीकी प्रभविष्णुता श्रीकांतकी अकर्मण्यताके समक्ष और भी अधिक प्रदीप्त हो उठती है।

लक्ष्मीके चरित्रका विश्लेषण करते समय एक बातके लिए हमें विशेष रूपसे सावधान रहना पड़ेगा, और वह यह है कि अपनी सारी प्रभविष्णुता-के बावजूद, राजलक्ष्मी श्रीकांतके चंचल मनके समक्ष सदैव झुकी-सी रहती है। श्रीकांत अकर्मण्य है, इसलिए राजलक्ष्मीकी नारी उसे निश्चित रूपसे प्रभावित करती है, किंतु बदलेमें श्रीकांतकी आकर्षण-शक्ति भी कुछ कम नहीं है। राजलक्ष्मी, शायद व्यक्तित्वकी विपर्ययताके कारण, पुरुषके प्यारको अधिक महत्त्व देती है। 'दु:खके तराजूमें इस आत्मोत्सर्गके साथ समतौलता बनाये रखनेके लिए जिस प्रेमकी ज़रूरत है, उसे यदि पुरुष अपने भीतरसे बाहर न प्रकट कर सके, तो किसी भी स्त्रीके लिए यह संभव नहीं है कि वह पूरा कर सके।' और इसीलिए नारीके समक्ष पुरुषको प्राथमिकता देती हुई वह आगे कहती है, "पुरुष जाति चिरकालसे ही उच्छृंखल रही है, चिरकालसे ही कुछ-कुछ अत्याचारी भी रही है; किंतु, इसीलिए तो स्त्रीके पक्षमें भाग खड़े होनेकी युक्ति काम नहीं दे सकती। स्त्री जातिको सहन

करना ही होगा; नहीं तो संसार नहीं चल सकता।' और नारी-जाति के संबंधमें उसके यह विचार तभी हैं, जब वह स्वयं पर्याप्त रूपसे सहनशील है। उसके लिए कष्टोंका बोझा उठाना ही परम नारीत्व है और 'इसमें कोई हीनताकी बात नहीं है।' पुरुषके प्रति उसका आत्म-समर्पण इतना अधिक है कि वह श्रीकांतको अपना गुरु—अपने सारे कर्मोंका नियामक मानती है।

राजलक्ष्मीके चरित्रके माध्यमसे शरत्के कृतित्वपर कई आरोप लगाये गये हैं; उनमेंसे सर्वप्रमुख यह है कि शरत्ने अपने जीवन-दर्शनमें पतित नारियों एवं वेश्याओंके प्रति सहानुभूति ही नहीं प्रकट की, वरन् उनको अवांछनीय उच्च स्थान दिया है, और ऐसा करनेसे कलाकी सामाजिकताको धक्का पहुँचाया है। यह सच है कि शरत्की एक-आध कृतियोंको पढ़कर बहुत शीघ्रतामें ऐसी धारणा बना लेना नितांत स्वाभाविक है, परंतु लेखकके दृष्टिकोणको कुछ अधिक गहराईसे समझनेपर उक्त धारणा भ्रांतिमूलक जान पड़ेगी। 'श्रीकांत'की राजलक्ष्मीको ही लीजिए! उसके जीवनका पूर्वार्द्ध प्यारी वेश्याके रूपमें बीता है। किंतु प्रश्न तो यह है कि उसके वेश्या बननेका कारण क्या है? इसके उत्तरमें हमारे सम्मुख उसका बाल-विवाह और उसके दुष्परिणाम आ जाते हैं। लक्ष्मी एवं उसकी बहिनका विवाह एक साथ ही, एक अधेड़ ब्राह्मण रसोइयेके साथ होनेवाला था, किंतु दहेजके कारण ब्याह आधा ही रह गया, और राजलक्ष्मीके जीवनका कोई भी सहारा अवशिष्ट न रहा। ऐसे समयमें उसे 'कुत्ते-बिल्लियोंकी-सी दुर्दशा'का सामना करना पड़ा। इन सारे दुःखोंसे घबड़ाकर अपरिणत वयमें ही उसने वेश्याका रूप स्वीकार कर लिया।

यह तो हुई उसकी चारित्रिक पृष्ठभूमि! किंतु क्या इतना सब होने पर भी उसे पतित कहा जा सकता है? शायद नहीं! उसका वात्सल्य, उसकी पति-भक्ति, उसकी सहनशीलता किसी भी भारतीय नारीके लिए गौरवका विषय हो सकती है। उसके व्यक्तित्वमें व्यभिचार-बुद्धिका अभाव है। अपने देशके सतीत्वपर उसे गर्व है, पति-परित्याग उसके निकट पापकी सीमा है। और उसकी सहिष्णुता तो सचमुच सराहनीय है, जिसके सहारे

वह श्रीकांतके बीहड़ मनको भी वशमें कर लेती है। अपने इन्हीं गुणोंके कारण राजलक्ष्मी उपन्यासकारके लिए ही नहीं, वरन् पाठकके लिए भी श्रद्धेय है। फिर शरतकी अन्नदा जीजीके संबंधमें उच्च धारणाएँ उन्हें असतीत्वका समर्थक नहीं ठहरातीं।

राजलक्ष्मीके उपरांत 'श्रीकांत'में दूसरा प्रमुख नारी-चरित्र अन्नदाका है। उपन्यासमें अन्नदाका बहुत कम अंकन हुआ है, परंतु उसके जीवनका जितना भाग भी चित्रित है, वह भागीरथीके जलके समान निर्मल एवं पवित्र है। अन्नदा दीदीके प्रभावके कारण ही श्रीकांतके रूपमें लेखक 'स्त्री जातिको कभी तुच्छ रूपमें नहीं देख सका।' उनको देखनेसे ऐसा जान पड़ता है, 'मानो राखसे ढँकी हुई आग हो। जैसे युग-युगांतरव्यापी कठोर तपस्या समाप्त करके अभी आसनसे ही उठकर आई हो।' वे पारस-मणिके समान उज्ज्वल एवं दिव्य हैं; उनका स्पर्श लोहेको सोना बना देता है। श्रीकांतका दृढ़ विश्वास है कि 'उनका दर्शन पाकर प्रत्येक उपस्थित व्यक्ति सच्चरित्र साधु हो जाता।' कहना न होगा कि अन्नदाकी इस प्रभविष्णुताका आधार उनका अपूर्व शील-सौजन्य है। उन्हें देखनेसे ही मानो हृदयमें स्नेह एवं श्रद्धाका संचार होने लगता है।

अन्नदाके चरित्रका सर्वप्रमुख गुण उनकी अटल पति-भक्ति है। क्रुद्ध श्रीकांत कहता है, "उस दिनसे अबतक इस शैतानके बच्चेने (अन्नदाका गँजेड़ी पति) उन्हें कितनी मार मारी है, इसका कोई हिसाब नहीं। इतने पर भी जीजी लकड़ी ढोकर, कंडे बेचकर किसी तरह इसे खिलाती-पिलाती हैं, गाँजेके लिए पैसे देती हैं—फिर भी यह उनका अपना न हुआ।" अन्नदा ने पतिको अपना धर्मतक समर्पित कर दिया है, उनके मुसलमान हो जानेपर वह स्वयंको भी मुसलमान ही मानती हैं। शाहजीकी मृत्युके उपरांत वे अकेले उनका सारा कर्ज़ चुकाती हैं, क्योंकि पतिका ऋण ख़ुद उनका ऋण है।

अन्नदाका दांपत्य-जीवन अपने प्रारंभिककालसे लेकर पतिके बिछोह तक प्रायः दुःखमय ही बीता। उनके पतिने सदैव उनके एवं अपने लिए लज्जा एवं कलंकके उपकरण प्रस्तुत किये, परंतु वे किसी प्रकार उन्हें दबाती

चलीं। यहाँ तक कि एक धनी परिवारकी कन्या होनेपर भी वे अपने पतिके साथ घर छोड़कर चली आईं और जब कि उनके पति अत्यंत निर्धनावस्थामें सँपेरेका काम करके, गहन वनमें कुटिया बनाये हुए रहते थे। यहाँ उनका जीवन कितने दुःख एवं कितनी करुणा-जनक अवस्थामें बीता, इसका अंदाज़ लगाना कठिन है। परंतु इतनेपर भी उनका धैर्य, उनकी सहनशीलता अटल रही। वे अपने दुःखोंके लिए स्वयं अपने पूर्व-जन्मके पापोंको ही उत्तर-दायी ठहराती हैं। किसी अन्य व्यक्तिके ऊपर दोषारोपण करना उनके स्वभावके विरुद्ध है।

अन्नदा जीजीके समान 'पतिव्रता स्त्री'का श्रीकांतके कोमल मनपर पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा है। उनके शांत एवं सजल व्यक्तित्वके कारण वह नारीके कलंककी बातपर सहज ही विश्वास नहीं कर सकता। 'सोचता हूं कि न जानते हुए नारीके कलंककी बातपर अविश्वास करके संसारमें ठगा जाना भला है, किंतु विश्वास करके पापका भागी होना अच्छा नहीं।' जिस अन्नदाका स्मरण-मात्र इतना पुनीत है, उसके व्यक्तित्वकी शुभ्रता एवं पवित्रताका अनुमान आसानीसे लगाया जा सकता है। श्रीकांतके शब्दोंमें, "जिनके मुखकी याद मनमें लाते ही, न मालूम कैसे, प्रथम यौवनकी उच्छृंखल-लता अपने आप सिर झुका लेती है।" संन्यासिनी ऐसी शांत अन्नदा एवं धरित्रीके समान सहनशील उसका मन किसी भी व्यक्तिके हृदयमें श्रद्धा एवं विश्वास संचारित कर सकते हैं। श्रीकांतके जीवनके तो कण-कणपर अन्नदा-का प्रभाव छा गया है। उसने प्रण किया है कि 'जीवनमें जब कभी किसीके मुँहसे ऐसी कोमल बोली, होठोंमें ऐसी मधुर हँसी, ललाटपर ऐसा अलौकिक तेज, आँखोंमें ऐसी सजल करुण दृष्टि पाऊँगा, तभी मैं आँख उठाकर उसकी ओर देखूंगा। जिसे मैं अपना मन दूंगा वह भी मानो ऐसी ही सती साध्वी होगी।' और सचमुच ही श्रीकांतके माध्यमसे अन्नदाका अलौकिक तेज मानो राजलक्ष्मीमें प्रतिबिंबित होकर उसकी कायाको तपःपूत बना देता है, उसके असत्को सत्में परिवर्त्तित कर देता है।

अन्नदाका जीवन पितृ-गृह छोड़नेके बाद दुःखमय बीता है। अभया उनकी कथा सुनकर कह उठती है, "श्रीकांत बाबू! अन्नदा जीजी, राज-

लक्ष्मी—इन दोनोंने जीवनमें दुःखको ही सम्बलरूपसे प्राप्त किया है।" विरोधाभास-सा जान पड़नेपर भी यह सच है कि अन्नदाका व्यक्तित्व दुःख एवं कष्टोंपर आधारित है। श्रीकांतका विश्वास है कि 'मेरी अन्नदा जीजी अपने दुःखका सारा भार चुपचाप सहन करनेके सिवाय और कुछ न कर सकतीं।' इस सती-सावित्रीके देशमें भगवान्‌ने सचमुच ही पतिके कारण सहधर्मिणीको अपरिसीम दुःख देकर, सतीके माहात्म्यको उज्ज्वल-से-उज्ज्वल-तर करके संसारको दिखाया है। पर अन्नदा ऐसी सतीके मुँहपर असतीकी काली छाप मारकर उसे हमेशाके लिए संसारसे क्यों निर्वासित कर दिया, इसका रहस्य कोई नहीं जानता। शायद ऐसी नारियोंका संपर्क ग्रहण करने लायक आजका समाज है नहीं। तभी तो उनका व्यक्तित्व कीचड़के देशमें कमलके समान लगता है।

अन्नदा जीजी दुखी होनेपर भी सहनशील और स्वाभिमानिनी हैं। वे शाहजीका ऋण अपने आभूषणोंको बेचकर चुकाती हैं, और अपने स्नेहमय बंधु-द्वय इंद्रनाथ और श्रीकांतसे कुछ भी आर्थिक सहायता नहीं लेतीं, क्योंकि उनमें-से कोई भी स्वयं जीविकोपार्जन नहीं करता। 'कुल बाईस पैसे लेकर उस निरुपाय निराश्रय स्त्रीने संसारके सुदुर्गम पथमें अकेले यात्रा कर दी है।' और उन्हें दान देनेका साहस भी किसमें था; उस जलती अग्निशिखा-में जो कुछ भी दिया जाता, वह जलकर ख़ाक हो जाता। अन्नदा जीजी संतोष एवं धैर्यकी जीवित प्रतीक हैं। उन्होंने भगवान्‌के चरणोंमें एकांत भाव से अपने आपको समर्पित कर दिया था। शाहजीकी मृत्युपर भी वे विशेष दुखी नहीं होतीं, केवल यही कहती हैं, "जाने दो, अच्छा ही हुआ इंद्रनाथ, भगवान्‌को मैं तनिक भी दोष नहीं देती।" नारीका ऐसा चरित्र जिसे किसी-से कुछ भी शिकायत नहीं है, किसी भी समाज एवं साहित्यमें गौरवकी वस्तु हो सकता है। शरत्‌की कलाके फलस्वरूप अन्नदा जीजीके अंकनमें जो व्यंज-नात्मकता आ गई है, इससे उनका चरित्र और भी शुभ्र एवं श्रद्धेय हो उठा है।

राजलक्ष्मी एवं अन्नदाके पश्चात् 'श्रीकांत'में तीसरा प्रमुख नारी-चरित्र अभयाका है। अभयाके नाममें ही उसके व्यक्तित्वकी पूरी-पूरी

व्यंजना छिपी हुई है। भय उसके मानसिक संस्थानका अंग नहीं है। उसकी शारीरिक रूप-रेखा उसकी प्रभावोत्पादकताको भलीभाँति व्यक्त करती है—'ऊँचा कपाल स्त्रियोंकी सौंदर्य-तालिकामें कोई स्थान नहीं रखता, यह मुझे मालूम है; फिर भी, इस तरुणीके चौड़े मस्तकपर बुद्धि और विचार-शक्तिकी एक ऐसी छाप लगी हुई देखी जिसे मैंने कदाचित् ही देखा है।' उसकी बातचीतसे भी यह ज्ञात होता है कि वह 'अत्यंत फार-वर्ड' है। वस्तुतः उसका चरित्र शरत्के नारी-समाजके उस वर्गके अंतर्गत आता है, किरणमयी जिसकी अग्रगामिनी है तथा कमल जिसकी सौम्य प्रति-निधि है। 'चरित्रहीन'की किरणमयीका विद्रोह दूधके पहले उफ़ानकी तरह अत्यंत तीव्र एवं आवेगपूर्ण था; परंतु अभया तक आते-आते यह विद्रोह पर्याप्त स्थिर एवं संयमित हो गया है।

अभया, किरणमयीकी भाँति, प्राचीन परंपराओंका एकदम ही तिरस्कार नहीं करती। उसमें प्रभविष्णुता है, मनुष्यको वशमें करनेकी अद्भुत शक्ति है; पर इतनेपर भी उसका व्यक्तित्व अत्यंत शांत है। वह अपनी सौतके साथ मजेमें गिरस्ती चला सकती है। स्वामी-द्वारा तिरस्कृत एवं परित्यक्त होनेपर भी उसकी पति-भक्ति कम नहीं हुई है। निष्ठुर पतिको खोजनेके लिए वह अनेक कष्टोंको सहन करती हुई, एक दूरके रिश्तेके भाई रोहिणीको साथ लेकर, बंगालसे बर्मा आ पहुँची है। श्रीकांतसे वह कहती है, "आपके मुँहमें फूल-चंदन पड़ें, श्रीकांत बाबू, मैं और कुछ नहीं चाहती। वे जीवित हैं, बस इतना ही मेरे लिए काफ़ी है।" उसकी प्रभविष्णुता इतनी अधिक है कि उसके निर्लज्ज पतिको भी स्वीकार करना पड़ता है कि 'ऐसी सती लक्ष्मी क्या कहीं और है ?'

परंतु उक्त विवेचनासे यह नहीं समझना चाहिए कि अभयाकी पतिभक्ति परंपरानुगत है। 'शेष प्रश्न'की कमलका स्मरण दिलाती हुई वह कहती है, एक दिन मेरे द्वारा जो विवाहके मंत्र बोल लिये गये थे उन्हींको बुलवा लिया जाना ही क्या मेरे जीवनका एकमात्र सत्य है, बाक़ी सब बिलकुल मिथ्या ही है ? इतना बड़ा अन्याय, इतना बड़ा निष्ठुर अत्याचार, मेरे पक्ष

में कुछ भी, कुछ भी नहीं है ?" वह अपनी विचार-शैलीमें काफ़ी सुलझी हुई है। जब वह देखती है कि उसका पति किसी भी प्रकार उसके साथ रहनेको तैयार नहीं तो वह स्वयं ही उसका त्याग कर देती है, और रोहिणी के साथ अपना नया घर बसा लेती है। इस प्रकार उसका चरित्र आदर्श अथवा यथार्थ न होकर, नितांत स्वाभाविक है। सब औसत मनुष्योंकी भाँति उसके व्यक्तित्वमें भी भलाई और बुराईके परमाणु हैं, जिनमें कभी एक पक्ष विजयी होता है, और कभी दूसरा। हाँ, अन्नदा जीजी जैसे आदर्श-नारी-चरित्रोंके सम्मुख उसका चित्रण यथार्थवादी अधिक है। पर व्यक्तित्व की ऊँची-नीची भूमियोंके बावजूद उसका मन, राजलक्ष्मीके समान हो, सचमुच भद्र है।' इसीलिए उसकी आकर्षण शक्तिका अनुभव करके श्रीकांतको कहना पड़ता है, "यह कौन है जो मुझे इस तरह धीरे-धीरे ज़ोर डालकर अपने जीवनके साथ जकड़ रही है।"

उपन्यासकारके अधिकांश प्रतिनिधि नारी-पात्रोंकी परंपरामें अभया अत्यंत सहनशील एवं कर्मण्य है। नितांत कष्टमय परिस्थितियोंमें भी वह हँस सकती है, यद्यपि उसकी हँसीमें उसके भयानक दुःखकी छाया दिखाई देती है। परंतु उसकी सहनशीलताकी एक सीमा है, क्योंकि अपनी प्रकृतिमें वह कर्मण्य है। वह आरामसे बैठना नहीं जानती; उसका चरित्र स्थिर (Static) न होकर गत्यात्मक (Dynamic) है। इसीलिए प्रचलित परंपराओंके प्रति वह विद्रोह करती है। 'चिरकालसे ही स्त्रियोंको ऐसे दुर्भाग्यका भोग करना पड़ रहा है और इस दुःखको सहन करते रहनेमें ही उनके जीवनकी चरम सफलता है,' यह सोचकर उसकी अपनी विपत्तियों एवं निराशाके बीच वह चुपचाप नहीं रह सकती। उसका उद्योग ही उसे दूर देश तक लाया है, और उसका उद्योग ही उसके आनेवाले जीवनको भी सफलतापूर्वक ग्रथित करता है। प्रसिद्ध समीक्षक श्री इला-चन्द्रजोशीका यह मत कि 'शरत्की नारियोंका विद्रोह समुद्रके तूफ़ानके समान है, जो अपनी मर्यादाको लांछित नहीं कर सकता, अभयाके इस संयमित असंतोष एवं विद्रोहके संबंधमें कदाचित् सर्वाधिक सत्य है।

अभयाकी व्यवहार-कुशलता कम ध्यान देने योग्य नहीं है। श्रीकान्तके निकट आनेपर भी बर्माकी यात्राके समय उसके व्यवहारमें ऐसा कुछ था जो प्रत्येक क्षण याद दिला दिया करता था कि 'हमलोग केवल यात्री हैं जो एक जगह ठहर गये हैं—किसीके साथ किसीका सचमुचका कोई संबंध नहीं है; दो दिन बाद शायद जीवन-भर फिर कहीं किसीकी किसीसे मुलाक़ात ही न हो।' इस प्रकार, कुछ आवश्यक प्राचीन संस्कारोंके साथ वह 'फारवर्ड' है—आधुनिका है। दूसरेके मनोभावोंको पहिचाननेमें वह प्रायः भूल नहीं करती। श्रीकान्तके मनकी चिन्ताको वह भलीभाँति, अनायास ही समझ लेती है।

किरणमयीके वर्गकी नारी होनेके कारण अभयाकी विचार-शक्ति पर्याप्त रूपसे परिपक्व है। 'अभया केवल अपने मतको अच्छा प्रमाणित करनेके लिए ही वाग्वितंडा नहीं करती—वह अपने कार्यको भी बलपूर्वक विजयी करनेके लिए बाक़ायदा युद्ध करती है। उसका मत कुछ हो और काम कुछ हो, ऐसा नहीं है।' नामके महत्त्वपर प्रकाश डालती हुई वह कहती है, "नाम ही तो सब कुछ है श्रीकान्त बाबू, नामको छोड़कर दुनियामें और है ही क्या? ग़लत नामोंके भीतरसे मनुष्यकी बुद्धिकी विचारशीलता और ज्ञानकी धारा कितनी बड़ी भूलोंके बीच बहाई जा सकती है, सो क्या आप नहीं जानते? इसी नामके भुलावेके कारण ही तो सब देश ओर सब काल विधवाके आचरणको सबसे श्रेष्ठ मानते आ रहे हैं। यह निरर्थक त्यागकी निष्फल महिमा है श्रीकान्त बाबू, बिलकुल ही व्यर्थ, बिलकुल ही ग़लत।" अभयाके इन तर्कोंको सुनकर श्रीकान्तको कहना पड़ता है, "दर-असल उसे बहसमें हरा देना एक तरहसे असम्भव ही है।" अभयाको अपने मतामतपर पूरा विश्वास भी है। बर्मा जाते समय वह श्रीकान्तसे कहती है—"यदि कहीं अटको तो चिट्ठी लिखकर मेरी राय ज़रूर ले लोगे!"

अभयाकी पारिवारिक दशा अत्यन्त दयनीय है; उसके बाप हैं नहीं, माँ भी मर गई हैं, और इस सबके ऊपर पतिका निष्ठुर व्यवहार एवं लांछना उसके लिए असह्य हो गई है। अन्तमें, पतिका घर छोड़कर वह

स्वयं ही नहीं चली जाती, वरन् वह वहाँसे तिरस्कृत करके निकाली जाती है। ऐसी दशामें उसका आत्म-सम्मान अनेक सामाजिक विधानोंके रहते हुए भी उभर पड़ता है, और वह श्रीकान्तसे कहती है—"वे अपनी बर्मी स्त्रीको लेकर सुखसे रहें, मुझे इसकी कोई शिकायत नहीं; किन्तु मैं आपसे यह बात जानना चाहती हूँ कि पति जब एकमात्र बेतके ज़ोरसे स्त्रीके समस्त अधिकारोंको छीन लेता है और उसे अँधेरी रातमें अकेली घरके बाहर निकाल देता है, तब इसके बाद भी विवाहके वैदिक मंत्रोंके ज़ोरसे उसपर पत्नीके कर्त्तव्योंकी ज़िम्मेदारी बनी रहती है या नहीं ?" पतिका घर छोड़-कर आनेके बाद अभयाका दुखित मन और भी चिड़चिड़ा हो जाता है। उसका स्नेह—उसकी ममता केवल दो ही व्यक्तियोंके लिए अवशिष्ट रह जाती है—एक तो रोहिणी और दूसरे श्रीकान्त। रोहिणीके साथ वह गार्ह-स्थिक जीवनका समारम्भ कर देती है, और श्रीकान्त जैसे मित्रकी वह प्लेगकी भयानक बीमारीमें सेवा-शुश्रूषा करनेसे नहीं हटती। वस्तुतः अभयाकी नारीका अपार स्नेह उसके दुर्भाग्यके तापके कारण सूख गया है। माँ बनने-की लालसा उसके मनमें विद्यमान है; अपने भावी पुत्रका पालन, वह सारा कलंक और सारा अपयश सिरपर लेकर भी, करनेको तैयार है। रोहिणी-का प्रेम तो उसके जीवनका सर्वस्व हो गया है। ऐसे मनुष्यके सारे जीवनको लँगड़ा बनाकर वह 'सती'का खिताब नहीं खरीदना चाहती, यह वह स्वयं स्वीकार करती है।

'श्रीकान्त'के नारी-समाजके तीनों प्रमुख व्यक्तित्व—राजलक्ष्मी, अन्नदा और अभया—एक-दूसरेके लिए अपने-अपने हृदयमें पर्याप्त स्थान रखते हैं। अभया अन्नदा जीजीकी भक्त है, और राजलक्ष्मी अभयाके सम्मुख नत-मस्तक है, यद्यपि इनमें-से किसीने किसीको देखा नहीं है। पर श्रीकान्त अभया और अन्नदाके चरित्रकी तुलनामें अन्नदाको ही ऊँचा स्थान देता है—'यह भी ठीक है कि उसके (अभयाके) विचारोंकी स्वाधीनता, उसके आच-रणकी निर्भीक सावधानता, उसका परस्परका सुन्दर और असाधारण स्नेह—यह सब मेरी बुद्धिको उसी ओर निरन्तर आकर्षित करते थे, किन्तु फिर

भी, मेरे जीवन-भरके संस्कार किसी तरह भी उस ओर मुझे पैर नहीं बढ़ाने देते थे। मनमें केवल यही आता था कि मेरी अन्नदा जीजी यह कार्य न करतीं।' अन्नदाकी अपार कष्ट-सहिष्णुताके सम्मुख अभयाका यह जीवन-निश्चय ही अधिक महिमामय नहीं है—कम-से-कम भारतीय दृष्टिकोणसे—कि 'सुख प्राप्त करनेके लिए दुख स्वीकार करना चाहिए, यह बात सत्य है किन्तु इसीलिए, यह स्वतः सिद्ध नहीं हो जाता कि जिस तरह भी हो, बहुत-सा दुःख भोग लेनेसे ही सुख हमारे कन्धोंपर आ बैठेगा। यद्यपि यह ठीक है कि 'अभयाके लिए कुछ भी कठिन नहीं है। मृत्यु! वह भी उसके आगे छोटी ही है', तथापि उसका मन तपस्याके भारतीय आदर्शोंसे युक्त नहीं–वस्तुतः अभयाके व्यक्तित्व, विचार-धारा एवं आचरणमें प्राच्य एवं प्रतीच्यको प्रकृतिका अद्भुत मिश्रण है; पर उसके 'मनमें (किरणमयी एवं कमलके समान ही) जलेबी-जैसा पेच है।'

'श्रीकान्त'में चौथा प्रमुख नारी-चरित्र है कमललता वैष्णवीका। उम्र उसकी तीससे ज़्यादा नहीं होगी—श्यामवर्ण, इकहरा बदन, हाथमें कुछ चूड़ियाँ हैं पीतलकी—सोनेकी भी हो सकती हैं। बाल छोटे-छोटे नहीं हैं, गिरह देकर पीठपर झूल रहे हैं। गलेमें तुलसीकी माला और हाथकी थैलीके भीतर भी तुलसीकी जपमाला है। छापे-आपेका ज़्यादा आडम्बर नहीं है। सब व्यवस्थाओंमें उसका कर्तृत्व है सबके ऊपर, किन्तु स्नेहसे, सौजन्यसे और सर्वोपरि सविनय कर्मकुशलतासे यह कर्तृत्व इतनी सहज शृंखलामें प्रवहमान है कि कहीं भी ईर्ष्या-विद्वेषका ज़रा-सा भी मैल नहीं जमने पाता। उपन्यासकारके इन वर्णनोंसे कमललताकी वैष्णवी वेश-भूषा और भाव-भंगिमा पाठकके मानस-चक्षुओंके सम्मुख नितान्त साकार हो जाती है। उसका शान्त एवं सौम्य व्यक्तित्व जीवनके तूफ़ानोंसे भरा हुआ है, इस बातको आसानीसे नहीं जाना जा सकता। उसका पूर्व-जीवन समाजकी दृष्टिसे कलंकित है। वैष्णवी होनेसे पहले उसका नाम था उषा। अपने होनेवाले पति मन्मथकी वंचनाके फलस्वरूप वह अविवाहितावस्थामें ही माँ बन गई। अपने नवजात शिशुको गंगामें बहाकर उसने एक पाप और

अर्जित किया। अन्ततः सब ओरसे विमुख होकर वह वैष्णवियोंके मठमें आकर सम्मिलित हो गई।

कमललतामें प्रेम करनेकी अपूर्व शक्ति है, किन्तु उसके हृदयकी रागात्मिका वृत्ति पूर्णतः व्यक्त नहीं हो पाती। अंदर-ही-अंदर घुटते रहनेके कारण उसका प्रेम अदम्य हो गया है। इस बातक उल्लेख करती हुई वह श्रीकान्तसे कहती है, "तुम लोगोंके और हमलोगोंके प्यारकी प्रकृति ही भिन्न है। तुमलोग चाहते हो विस्तार और हम चाहती है गम्भीरता, तुम लोग चाहते हो उल्लास और हम चाहती है शान्ति। जानते हो गुसाँई कि प्रेमके नशेसे हम भीतर-ही-भीतर कितना डरती हैं। उसके उन्मादसे हमारे हृदय की धड़कन नहीं रुकती।" यद्यपि आश्रमके वातावरणके फलस्वरूप उसकी वासनाका उन्नयन भक्तिमें हो चला है, तथापि उसका अतृप्त प्रेम अपने लिए उपयुक्त आश्रमकी खोजमें प्रवृत्त है। उसका स्नेह सार्वजनीन है; 'किसीके चले जानेपर वह शोकमें अधमरी हो जाती है।' पर इससे उसके उमड़ते हुए रागको अभिव्यक्ति नहीं मिलती। पूर्ण आस्तिक होते हुए एवं भगवद्‌भक्तिके वातावरणमें रहते हुए भी उसका आत्म-समर्पण पूरा नहीं हो पाता, जिसके लिए सम्पूर्ण मानवता साधारणतः, और स्त्री-जाति विशषतः, सदैव लालायित रहती है।

उषाके रूपमें कमललताकी रागात्मक वृत्तियाँ सबसे पहले मन्मथपर केन्द्रीभूत हुई थीं। श्रीकान्तको वह बताती है, "फिर भी, एक दिन उससे ज़्यादा मेरा अपना कोई नहीं था—संसारमे इतना प्यार किसीने भी किसीको नहीं किया होगा।" पर तन-मन सौंप देनेके उपरान्त भी उसे अपने प्रियसे प्रतिदान-स्वरूप वंचना मिली। इसके बाद, मठमें आनेपर उसका झुकाव गौहरकी ओर हुआ। किन्तु इस बार उसके और उसके प्रेमके बीच धर्मकी ऊँची, अलंघ्य दीवार थी। निदान, इस बार भी उसका प्यार अभिव्यक्त न हो सका। तभी उसके आश्रममें श्रीकान्तका आगमन हुआ। अब उसने सोच लिया था कि वह श्रीकान्तको अपने पाससे न जाने देगी। किन्तु वह 'विवाहित' श्रीकान्तका भी सामीप्य प्राप्त न कर सकी। श्रीकान्तके चले

जाने पर गौहर बीमार पड़ा और उसकी मृत्यु हो गई। उसकी रुग्णावस्थाके समय कमललताने अन्तिम तीन दिनोंमें न तो खाना खाया और न सोया, गौहरका बिछौना छोड़कर वह एक बार भी नहीं उठी। कमललताके इस व्यवहारके कारण उसके मठवालोंने उसका तिरस्कार किया। इस लांछना से ऊबकर वह कहीं बाहर जानेकी इच्छा करने लगी। इसी बीच मित्रकी बीमारीका समाचार देरसे पाकर, श्रीकान्त भी आये। कमललता उन्होंके साथ गाँव छोड़कर चली आई, शेष जीवनके दिन वृन्दाबनमें बितानेके लिए। वृन्दावन जानेको तैयार श्रीकान्तसे बिदा लेते समय वह कहती है, "जानती हूँ कि तुम्हारे कितने आदरकी हूँ। आज विश्वासपूर्वक उनके पाद-पद्मोंमें मुझे सौंपकर तुम निश्चिन्त होओ, निर्भय होओ। मेरे लिए सोच-सोचकर अब तुम अपना मन ख़राब मत करना गुसाँई, तुम्हारे निकट मेरी यही प्रार्थना है।"

यह है बहुत संक्षेपमें कमललताकी प्रेम-कथा। उसके निरुपाय जीवनमें मन्मथ, गौहर तथा श्रीकान्तका प्रवेश हुआ, किन्तु किसीसे भी उसे अपने प्रेमका प्रतिदान न मिल सका। अन्ततः भारी मन और एकाकी जीवन लिये हुए वह वृन्दावन-विहारीकी शरणमें चली गई, जिससे कि निराश्रय ज़िंदगीके अंतिम दिन त्याग एवं शान्तिके वातावरणमें बिताये जा सकें।

कमललताका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभविष्णु है। उसके रूप-रंग तथा व्यवहारमें आकर्षण और जादू भरा हुआ है। इस प्रभविष्णुताके मूलमें शायद उसका असहाय प्रेम ही है, जो वर्षोंसे उसके हृदयके किसी कोनेमें संचित पड़ा है। इसीलिए वैष्णव-मठके वातावरणमें भी उसका प्रभाव इतना मादक है। गौहरके नौकर नवीनके अनुसार इस वैष्णवीका जाल तोड़कर अचानक बाहर नहीं निकल जाया जा सकता। श्रीकान्त सोचता है यह असंभव नहीं है और बहुत असंगत भी नहीं है। नारी-हृदयकी सारी अतृप्ति उसकी रूप-रेखा एवं व्यवहारमें फूटकर निकलना चाहती है, किंतु समुचित निकासके अभावमें वह उसके व्यक्तित्वमें उभरी-उभरी-सी है, जिसके फलस्वरूप वह इतनी मोहक, आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक बन गई है।

'श्रीकान्त'के प्रमुख नारी-पात्रोंके व्यक्तित्वकी कुछ मीमांसा करनेके उपरान्त अब हम उन चरित्रोंको देखेंगे जिनका उपन्यासमें स्थानीय महत्त्व है। ऐसे पात्र तीन हैं—सुनन्दा, टगर और पूटूँ। सुनन्दाके चरित्रका विश्लेषण हम सर्वप्रथम करेंगे। उसके व्यक्तित्वका मूल तत्त्व है न्यायप्रियता। अन्यायके समक्ष वह 'टूट जायगी पर नवेगी नहीं।' जिस दिनसे उसे यह ज्ञात होता है कि उसके जेठ किसी दूसरेकी संपत्तिका उपभोग कर रहे हैं, उसी दिन वह घर छोड़कर पति-पुत्रके साथ बाहर चली जाती है। बड़ी दृढ़ताके साथ वह अपनी जिठानीसे कह देती है, "नहीं जीजी, वह जायदाद अपनी नहीं है। उसे अगर तुम न लौटा दोगी तो मैं अब रसोईमें घुसूँगी ही नहीं। उस नाबालिग लड़केके मुँहका कौर छीनकर अपने पति-पुत्रको भी न खिला सकूँगी, और ठाकुरजीका भोग भी मुझसे न लगाया जायगा।" अन्ततः वह घोर निर्धनतामें रहना पसन्द करती है, पर अन्यायके प्रतिवादमें वह अपना सब-कुछ छोड़ देती है—जीर्ण वस्त्रकी तरह। दृढ़ताके साथ-साथ उसके व्यक्तित्वमें सरलता एवं स्पष्टताका बहुत बड़ा अंश है। इसके अतिरिक्त सुनन्दामें व्यावहारिक तथा मानसिक संयम सहज हो गया है, जो उसकी अध्ययनशीलताके साथ उसके प्रभावको और भी अधिक बढ़ाता है। वस्तुतः उसके शास्त्र-ज्ञानने ही उसे ऐसा कठोर, पत्थरके सदृश बना दिया है, और इसीलिए राजलक्ष्मीकी दृष्टिमें सुनन्दाकी यह पोथीकी विद्या अधिक श्रद्धेय नहीं है। पर अपनी सिधाई तथा नम्रताके कारण वह सबको प्रभावित करती है। सुनन्दा अपने पतिके विश्वासकी अमानतदार है, तथा श्रीकान्त उसे 'अजीब औरत' मानता हुआ, स्पष्ट निर्णय देता है, "जिन थोड़े से नारी-चरित्रोंने मेरे मनपर गहरी रेखा अंकित की है, उनमें-से एक है कुशारी महाशयके छोटे भाईकी विद्रोहिनी बहू सुनन्दा।"

टगरका चरित्र स्थानीय महत्त्व रखता हुआ भी उपन्यासकी कथाको विशेष प्रभावित नहीं करता। श्रीकान्तकी बर्मा-यात्राके समय वह अपनी कलहप्रियतासे पाठकोंके निकट शिष्ट हास्यका आलम्बन अवश्य बन जाती है। बर्माके दृश्योंमें भी यत्र-तत्र उसकी अवतारणा की गई है।

पूटूँका चरित्र श्रीकान्तके जीवनमें और 'श्रीकान्त'के कथा-भागमें अवश्य कुछ महत्त्व रखता है। 'लड़की अच्छी है। साधारण भद्र गृहस्थ घरानेकी, रंग गोरा तो नहीं था लेकिन देखनेमें सुन्दर थी।' उसका आन्तरिक व्यक्तित्व स्पष्ट तथा सरल जान पड़ता है। उसका विवाह श्रीकांतसे तै होने जा रहा है, पर इस संबन्धमें बाबाजीकी सारी चालबाज़ी वह श्रीकान्तको स्वयं बता देती है। वह हृदयकी अत्यंत निर्मल है। जब श्रीकान्त अपने रुपयेकी मददसे उसका विवाह अन्यत्र उसके प्रिय शशधरसे करानेका वचन देता है, और कहता है, "अच्छा, वहाँ तुम्हारी शादी हो जानेपर अगर वे लोग तुमसे प्रेम न करें?" तो बड़े विश्वास एवं दृढ़ताके साथ वह उत्तर देती है, "मुझसे? प्रेम क्यों नहीं करेंगे? मैं रसोई बनाना, सिलाई करना और गृहस्थीके सारे काम जानती हूँ। मैं अकेले ही उनका सारा काम कर दूँगी।"

पार्श्व-चरित्रोंमें अनुशासनप्रिय तथा स्नेहमय श्रीकान्तकी बुआजी, अस्थिर प्रकृतिकी मालती, सरल एवं निरीह बर्मी स्त्री, क्लैसिकल प्रवृत्तियों-वाली कुशारी पत्नी, निर्धन, चिड़चिड़ी परन्तु सहृदय चक्रवर्त्ती-गृहिणी, तथा कमललताकी भोली-भाली सखी पद्मा विशेष उल्लेखनीय हैं।

आत्मकथात्मक उपन्यास होनेके कारण 'श्रीकान्त'की विचारात्मक उक्तियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। 'श्रीकान्त'के अध्ययनसे शरत्‌की नारी-संबन्धी निम्नलिखित धारणाएँ एकत्र की जा सकती हैं:—

(१) स्त्री-जातिको तुच्छ रूपमें नहीं देखा जा सकता। (१:४८)

(२) नारीके कलंकपर अविश्वास करके ठगा जाना अच्छा, पर विश्वास करके पापका भागी बनना अच्छा नहीं! (उपन्यासके नायककी यह युक्ति नहीं, संस्कार है।) (१:७३)

(३) स्त्री-जातिका मन भी कैसा विराट् अचिन्तनीय व्यापार है। (१:१०२)

(४) कितनी बुरी है यह स्त्रियोंकी जाति, एक दफ़ा भी किसीको प्यार किया कि मरी! (१:१०१)

(५) नारीकी चरम सार्थकता मातृत्वमें है, यह बात शायद ख़ूब गला फाड़कर प्रचारित की जा सकती है। (२:१३०)

(६) कन्या-दान बंगाली गृहस्थका भार है जो उन्हें सोने नहीं देता। (१:७८)

(७) हृदयका विनिमय नर-नारीकी अत्यन्त साधारण घटना है—संसारमें नित्य ही घटती रहती है—विराम नहीं, विशेषत्व नहीं। फिर भी यह दान और प्रतिग्रह ही व्यक्ति-विशेषके जीवनका अवलम्बन कर ऐसे विचित्र विस्मय और सौन्दर्यसे उद्भासित हो उठता है कि उसकी महिमा युगयुगान्त तक मनुष्यके हृदयको अभिषिक्त करती रहकर भी समाप्त नहीं होना चाहती। यही वह अक्षय संपत्ति है जो मनुष्यको बृहत् करती है, शक्तिशाली बनाती है और अकल्पित कल्याणद्वारा नया बना देती है। (४:१५८)

(८) बंगालकी कन्या अत्याचारकी चिर-अभ्यस्त है; और कहीं तो शायद कुत्ते-बिल्लियोंकी भी इतनी दुर्गति करनेमे मनुष्यका हृदय काँपता होगा। (४:१६०)

(९) (नारीके) स्नेहकी गहराई समयकी स्वल्पतासे नहीं नापी जा सकती। (३:३९)

(१०) अजीब देश है यह बंगाल! इसमें राह चलते माँ-बहिनें मिल जाती हैं, किसमें सामर्थ्य है कि इनसे बचकर निकल जाय? (३:३९)

(११) तुम्हारे देशकी स्त्रियाँ अपने आपको छोटा समझनेके कारण छोटी नहीं हो गई हैं। सच यह है कि तुम्हीं लोगोंने उन्हें छोटा समझकर छोटा बना दिया है, और तुम खुद भी छोटे हो गये हो। (२:१३४)

(१२) सर्वाङ्गीण सती-धर्मकी एक अपूर्वता—दुःसह दुःख और सर्वथा अन्यायके बीचमें भी उसकी आकाश-भेदी विराट् महिमा, मेरी अन्नदा जीजीकी स्मृतिके साथ चिरकालके लिए मनकी गहराईमें खुदकर अंकित हो गई है। (२:७७)

(१३) आज मैं आपसे यह कहे जा सकता हूँ कि मैंने अपने जीवनमें जो थोड़े-से महान् नारी-चरित्र देखे हैं उन सबने दुःखके भीतरसे गुजरकर ही मेरे मनमें ऊँचा स्थान पाया है। (२:९१)

देवदास

●

'देवदास'की गणना शरत्के दुःखान्त उपन्यासोंकी प्रथम श्रेणीमें होती है। अपने विशिष्ट क्षेत्रमें यह कृति एक साहित्यिक क्लैसिक बन गई है। कथा और कलाकी सरलताने 'देवदास'को कितना मार्मिक, कितना हृदय-द्रावक बना दिया है, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं। उपन्यासके पटोद्घाटन और पटाक्षेपकी योजनामें शरत्की टेकनीक अपने उच्चतम शिखरपर जा पहुँचती है। 'देवदास'की कथा अत्यन्त संक्षिप्त और सादी है। सेक्स संबंधी सामाजिक विषमता उसकी आधार-भूमि है, और उसकी पृष्ठभूमिका निर्माण स्थानीय विशेषताओंसे युक्त, बंगालके ग्रामीण वातावरणमें हुआ है। आकारके अनुसार ही उपन्यासमें पात्रोंकी संख्या भी बहुत कम है।

'देवदास'की मूल कथा इस प्रकार है––तालसोनापुर गाँवमें देवदास—देव भैया और पार्वतीका बाल्यकाल साथ-साथ व्यतीत होता है। अपरिणत वयमें दोनों ही अभिन्न साथी हैं। कुछ बड़ा होनेपर शरारती देवदासको पढ़नेके लिए कलकत्ते भेज दिया जाता है और पारो गाँवमें अकेली रह जाती है। पारोके माँ-बाप उसके विवाहके लिए चिन्तित हैं। पारोकी दादी चाहती है कि पारोका विवाह देवदासके साथ हो जाय, पर देवदासकी माँ इस प्रस्तावको अस्वीकृत कर देती हैं। अन्ततः पारोका विवाह हाथीपोताके एक अधेड़ ज़मींदारसे होता है, जिसकी पहली पत्नी मर चुकी है। इस विवाहसे न पारो सुखी है और न देवदास ही, परन्तु परिस्थितियोंके सामने दोनोंको झुकना पड़ता है। अविवाहित देवदास कलकत्तेमें रहता है और अपनी मानसिक वेदनाको भुलानेके लिए मदिराका सेवन प्रारम्भ कर

देता है। वहाँ उसकी जान-पहचान चन्द्रमुखी नामक एक वेश्यासे होती है, जो उसे हृदयसे चाहने लग जाती है। अनियमित जीवन व्यतीत करनेके कारण देवदासका स्वास्थ्य बहुत गिर जाता है, और एक दिन सब ओरसे निराश होकर, अपने नौकर धर्मदासके साथ वह अपने घरके लिए चल देता है। रास्तेमें पार्वतीकी ससुरालका स्टेशन मिलता है, और वह धर्मदासको गाड़ीमें सोता छोड़कर, वहीं उतर पड़ता है। अत्यन्त रुग्ण एवं दयनीय अवस्थामें वह एक बैलगाड़ी लेकर हाथीपोताकी ओर रवाना होता है। ४८ घंटों तक अपार कष्ट सहकर वह पार्वतीके घर पहुँचता है। रात होनेके कारण वह घरके बाहर ही पड़ा रहता है; सबेरा होते-होते उसके प्राण निकल जाते हैं। अपरिचित शवको चांडाल लोग श्मशान ले जाकर जलाते हैं; जब पार्वतीको अपने सौतेले पुत्र-द्वारा यह समाचार ज्ञात होता है तो वह सब कुछ समझ जाती है, और देवदासके जलते हुए शवकी ओर दौड़ती है, पर कुछ दूरतक चलकर मूर्च्छित हो जाती है, और इस प्रकार नियति-चक्रका एक घेरा समाप्त होता है।

'देवदास'के नारी-चरित्रोंका अंकन बड़ी सादगीसे किया गया है। रेखा-चित्रोंकी भाँति ही इन पात्रोंमें व्यञ्जनात्मकता अधिक है, किसी भी प्रकारकी जटिलताका अभाव है। चरित्रांकनकी इस सिधाई एवं सरलताके कारण उपन्यासके पात्रोंमें आकर्षण एवं प्रभावकी मात्रा बहुत बढ़ गई है, और कथानक अत्यन्त शक्तिशाली बन गया है। 'देवदास'की नारी रोमांससे ओत-प्रोत, स्नेह तथा ममतामें भीगी हुई है। उसकी मानसिक वृत्तियाँ जटिल नहीं हैं; अपनी सज्जामें वह एकदम निरीह, भोली तथा सरल है। स्त्रीके मनकी अँधेरी गहराइयोंसे वह अपरिचित है, अवचेतनकी रहस्यात्मकतासे वह अछूती है। अतः 'देवदास'की नारीको हम पारदर्शक कहना ही अधिक उचित समझेंगे।

'देवदास'की नायिका पार्वती है, और देवदासके व्यक्तित्वकी नायिका पारो है। पारोका चरित्र माधवी, ललिता तथा ज्ञानदाकी परम्परामें है—

निर्मल, विकारहीन और शान्त। शरत्‌की नायिकाओंके इस वर्गमें वयः-संधिका बड़ा स्वाभाविक चित्रण है। वे बाल्यावस्थाकी सरलता और परिणत वयकी दृढ़ताके संयोगसे निर्मित हैं। उनके व्यक्तित्वमें कोमलता और कठोरता साथ-साथ चलती है। शैशव और यौवनकी इस सम्मिलित पृष्ठ-भूमि पर शरत्‌के इन नारी-चरित्रोंका अंकन अत्यन्त सजल एवं स्निग्ध है। अपनी प्रकृतिके अनुसार, वय तथा विचारोंके संक्रान्ति कालमें इन नायिकाओं-के जीवनपर किसी ट्रैजडीकी छाया ही अधिक दिखाई देती है।

पारो और देव भैया बचपनसे ही अभिन्न हैं। वस्तुतः उनकी वैयक्तिक संवेदना एक-दूसरेके साथ इतनी अधिक घुल-मिल गई है कि एकके चरित्रका विश्लेषण करते समय हम दूसरेको अलग नहीं रख सकते। बाल्यावस्थामें पारो देवदासके प्रत्येक सुखका बहुत अधिक ध्यान रखती है। उसे पिटनेसे बचाती है, संकटकालमें स्वय-निर्वासनके समय उसके भोजनका प्रबन्ध करती है, और इतनेपर भी अधिक चपल न होनेके कारण वह देव भैयासे हरदम डरती रहती है। लड़कपनके इस भय और आदरका अर्घ्य लिये हुए पार्वती जीवनपर्यन्त देवदासके सम्मुख विनत रही, इसका पूरा प्रमाण हमें उप-न्यासकी कथासे मिलता है।

देवदासको कलकत्ते भेजनेका जब उपक्रम होता है तो पार्वती कहती है, "देखो, देव भैया, जाना नहीं।" पर पारोकी अविरल अश्रुधारा और उसका चीखना-चिल्लाना देवदासको जानेसे न रोक सका। देव भैयाके चले जानेपर यदा-कदा उसके जो पत्र आते हैं, वही उसके सूने बचपनके साथी हैं। वह अकेली इधर-उधर घूमती है, पर अन्य किसी बाल-सहचरको नहीं ढूँढ़ती। गाँवके क्रीड़ा-स्थलों अथवा स्कूल पहुँचनेपर उसके हृदयमें देव भैयाकी स्मृति फिर जाग उठती है, और उसके छोटे-छोटे कपोलोंपर बड़े-बड़े आँसू गिरने लगते हैं। इस तरह बाल्यावस्थासे ही देवदास पार्वतीकी सुख-शान्तिका अमानतदार है।

उत्तरोत्तर बढ़ती हुई वयसका भार पार्वतीमें लज्जा भर देता है, और बहुत दिनों बाद देवदासके गाँव लौटनेपर पारो उसके सामने अधिक प्रगल्भताके

साथ बातचीत करनेमें संकोचका अनुभव करती है, परन्तु लज्जाका भाव मनमें रखते हुए भी जब पारोको यह ज्ञात होता है कि देवदासकी माँ उसे बहू बनानेके लिए तैयार नहीं है तो वह रातके समय ही देवदासके पास पहुँचती है। यहाँ उसकी प्रेमकी दृढ़ता सचमुच दर्शनीय है। लड़कपनसे ही उसकी यह धारणा थी कि 'देव भैयापर मेरा कुछ अधिकार है।' अपनी सखी मनोरमासे वह स्पष्ट कहती है, "मैं हँसी नहीं करती........मैं यही जानती हूँ कि मेरे स्वामीका नाम देवदास है।" और अपने अधिकारके दावेके लिए वह रात ही में देवदासके घर जाती है। उसे भूतोंसे डर नही लगता, अँधेरेमें उसका जी नहीं घबराता, नितान्त निर्जन एवं निस्तब्ध रास्तेमें वह भयातुर नहीं होती। जब देवदास उससे पूछता है, "इस तरह यहाँ आनेमें क्या तुम्हें तनिक भी लज्जा नहीं हुई ?" तो वह सिर हिलाकर कह देती है, "कुछ भी नहीं।" उसके प्रेमकी पवित्रता और सच्चाई उसके हृदयको आवेगमय बना देती है, इसीलिए उसे अपने मार्गमें किसी भी प्रकारकी सामाजिक बाधा अथवा कलंकका भान नहीं होता।

पार्वतीके चरित्रमें एक ओर जहाँ सरलता और सिधाई है, वहीं दूसरी ओर दृढ़ता एवं सहनशीलता भी है। 'पार्वती सदासे आत्माभिमानिनी थी' और इसीलिए वह प्राण-पणसे इस बातकी चेष्टा करती थी कि मैं जो इतना कष्ट सहती हूँ, सो इसका किसीको तिल भर भी पता न चलने पावे। वह देवदासके सम्मुख झुकती अवश्य है, परन्तु उसके व्यक्तित्वके समक्ष अपनी सत्ता एकदम नष्ट नहीं कर देती। पारोकी प्रार्थना एक बार अस्वीकृत करके जब फिर देवदास स्वयं अपनी ओरसे उसके साथ विवाहका प्रस्ताव रखता है तो वह अपनी असहमति तथा उदासीनता प्रकट करती हुई कहती है, "तुम्हारे माता-पिता हैं, और मेरे नहीं हैं ? उनके राज़ी होने या न होनेकी ज़रूरत नहीं है ?......जबसे होश सँभाला है, तभीसे तुमसे डरती आ रही हूँ। सो क्या इसीलिए तुम मुझे भय दिखलानेके लिये आये हो ? तुम अहंकार कर सकते हो, मैं नहीं कर सकती !" उसकी भावनाओंका आवेग इतना अधिक बढ़ जाता है कि वह विषकी तरह क्रूर हँसी हँसकर

देवदासको एक चुनौती देती है, "जाओ आख़िरी वक़्त मेरे नामपर एक कलंककी घोषणा कर दो।"

यदि इस स्थानपर पार्वती देवदासके प्रस्तावको स्वीकृत कर लेती तो उपन्यासके कथानककी दिशा ही बदल जाती, परन्तु स्वाभिमानिनी पारो अपनी तरुणावस्थाकी पहली चोटको भूल नहीं पाती, और इसीलिए वह अपने सबसे निकट व्यक्ति देवदासका भी तिरस्कार कर देती है। यहाँ पार्वतीका चरित्र आदर्श अथवा यथार्थ न होकर नितान्त स्वाभाविक एवं प्राकृतिक है। उसके हृदयकी दृढ़ता तो ऐसी है कि एक वृद्ध विधुरके साथ विवाहके समय भी उसके होठोंके कोनेपर हँसीकी एक रेखा रहती है। नियतिसे वह किसी भी प्रकार दबना नहीं जानती, इसीलिए अपने बड़े-से-बड़े दुर्भाग्यमें वह रोती नहीं, स्थिर होकर बैठती है। उसके जीवनकी पहली निराशा उसे पत्थरकी भाँति कठोर तथा सहनशील बना देती है। उसका अपराजित रूप और उद्दाम यौवन एकदम शान्त हो जाता है।

वृद्ध पतिके घर आनेपर उसके जीवनका दूसरा अंक प्रारंभ होता है। अब वह बड़ी विचारशील, नम्र एवं निरभिमान बन गई है। उसकी सारी कामनाएँ जैसे समाप्त हो गई हों! जीवनके उत्साहपर असमयमें ही सफ़ेदी छा गई हो! परम वैष्णवीय भावनाओंसे अभिभूत होकर उसने अपार शान्तिके वातावरणमें परिस्थितियोंकी कटुताके समक्ष आत्म-समर्पण कर दिया है। ज़िंदगीकी सारी वासनाओंका उन्नयन हो गया है। 'काम-धंधा करने, मीठी बातें कहने और परोपकार तथा सेवा-शुश्रूषा करनेमें दिन कट जाते हैं और सब कुछ भूलकर ध्यानमग्ना योगिनीकी तरह रहनेमें भी कट जाते है। कोई उसे कहता है लक्ष्मी-स्वरूपा अन्नपूर्णा और कोई कहता है अन्यमनस्का उदासिनी।'

विवाहके उपरान्त पार्वतीमें अनायास ही विचार-शीलता बढ़ जाती है। लेखकके शब्दोंमें, 'अवस्थाके अनेकों प्रकारके परिवर्त्तनोंने पार्वतीको उसकी उम्रकी अपेक्षा बहुत-कुछ परिपक्व कर दिया है। इसके सिवा व्यर्थकी लज्जा-शरम या जड़ता-संकोच उसमें कभी था ही नहीं।' पतिके घर आने-

पर उसकी व्यवहार-कुशलतामें भी अभिवृद्धि हुई है। अपने सौतेले लड़केकी पत्नी द्वारा उसके दानपर आपत्ति होनेके कारण पार्वती अपना हाथ खींच लेती है—'अब अतिथिशाला और देवमन्दिरकी पहलेकी तरह सेवा नहीं होती।' उसके लिए सारी बाह्य सज्जा अनावश्यक हो गई है। नितान्त निरभिमान होकर उसने अपने सारे आभूषण अपनी ननदको सौंप दिये हैं। अपनी नम्रता एवं व्यवहार-कुशलताके कारण ही वह क्रुद्ध यशोदा तथा जलदबालाको अपने वशमें कर लेती है।

वृद्ध पति मिलनेपर भी पार्वती उनको हृदयसे चाहती है। वर्षोंका व्यवधान उनके बीचमें दीवार नहीं बनता। वह अपने पति भुवन चौधरीसे कहती है, "तुम बूढ़े हुए तो मैं भी बहुत जल्दी बूढ़ी हो जाऊँगी। औरतोंको बूढ़ी होते क्या ज़्यादा देर लगती है?" और केवल पति ही नहीं, पतिकी सारी 'कच्ची अव्यवस्थित' गृहस्थीका भी उसे पूरा ध्यान है। विवाहके बाद इसीलिए वह शीघ्र ही अपने घर नहीं जाती। सौतेली सन्तानोंके लिए उसके मनमें इतनी ममता है कि बड़ी लड़की यशोदाको कहना पड़ता है, "क्यों भैया, सौतेली माँ भी इतना आदर कर सकती है?" यशोदा-का सारा क्रोध और गर्व तो पार्वतीकी नम्रताके सम्मुख एकदम झुक जाता है। रूठी हुई यशोदाको मनाकर घर लानेके लिए उसकी ससुराल जानेको वह स्वयं उद्यत होती है। यशोदाके आ जानेपर वह उससे कहती है—"बड़ा घर ठहरा, कितने ही नौकर-नौकरानियोंकी ज़रूरत होती है। मैं भी तो एक दासीके सिवा और कुछ नहीं हूँ। छीः बेटी, तुच्छ दास-दासियोंपर नाराज़ होना क्या तुम्हें शोभा देता है?" कहना न होगा कि इस हार्दिक सौजन्यके सम्मुख किसका अभिमान टिक सकता है?

अन्य सात्त्विक गुणोंके साथ-साथ अब पार्वतीके व्यक्तित्वमें दयाका भाव भी उभर उठा है। देवदासके पुराने नौकर धर्मदासको वह अपने गलेका हार उतार कर दे देती है, जिससे कि वह उसे अपनी लड़कीको पहना सके। निःसन्तान होनेके कारण उसका वात्सल्य बहुत व्यापक हो गया है। 'उसके अपने लड़के-बाले नहीं है, इसीलिए दूसरोंके लड़के-बच्चोंपर उसका

बहुत अधिक अनुराग है। ग़रीबों और दुखियोंकी बात तो दूर रही, जिन लोगोंके खाने-पीनेका कुछ ठिकाना है, उनके बाल-बच्चोंका भी अधिकांश व्यय उसने अपने ऊपर ले लिया है। इसके सिवा देव-मन्दिरका काम-धंधा करके, साधु-संन्यासिनियोंकी सेवा करके और अंधों तथा लूले-लँगड़ोंकी परिचर्या करके उसके दिन कट रहे हैं.....वह दरिद्र भले आदमियोंको चुपचाप आर्थिक सहायता देती है। यह उसका ख़ुद अपना ख़र्च था।' वस्तुतः अपने इन सत्कार्योंके फलस्वरूप पार्वती नारीके उस मूल रूप तक पहुँच गई है, जिसे हम 'जगज्जननी' कहते हैं। दयाके साथ-साथ, क्रोधके स्थानपर अब उसमें क्षमाशीलता आ गई है। महेन्द्रकी बहूके अपराधोंपर कुछ भी ध्यान न देकर वह उसे क्षमा कर देती है, और कहती है, "छी: बेटा, वह तो मेरी बहुत अच्छी लड़की है।" अपनी इस सात्त्विकताके प्रभाव-से ही वह सबका क्रोध शान्त करती है, दूसरोंके हृदयसे अपने प्रति विद्वेषका भाव मिटा देती है।

जीवनके उत्तरार्द्धमें यद्यपि पार्वतीका स्वभाव बहुत कुछ बदल जाता है, पर उसके हृदयमें देवदासके प्रति प्रेम कभी कम नहीं होता। विवाहो-परान्त देवदाससे प्रथम बार मिलनेपर उसको कुछ संकोचका अनुभव अवश्य होता है, किन्तु उसके मनकी दृढ़ता पूर्ववत् रहती है। धर्म-द्वारा जब उसे देवदासकी दुर्दशाका समाचार मिलता है तो उसे इस बातका पश्चात्ताप होता है कि वह देव भैयाको कुछ सुख न दे सकी। देवदासके द्वारा अपने मस्तकपर किये गये आघातसे बने हुए चिह्नको वह बहुत पवित्र मानती है—"देव भैया, यह निशान ही मेरे लिए सांत्वना है—यही मेरा संबल है। तुम मुझसे स्नेह करते थे, इसलिए तुमने हम लोगोंका बाल्य इतिहास ललाटपर लिख दिया है। यह मेरे लिए लज्जा नहीं, कलंक नहीं, बल्कि गौरवकी सामग्री है।" वह देवदासको किसी भी प्रकार सुख पहुँचानेमें अपनेको कृतकार्य समझती है। जब देवदास कहता है, "तुम्हारे घर चलूँगा तो मेरी ख़ूब सेवा करोगी?" तो पार्वती उत्तर देती है, "यह तो मेरी लड़कपनकी साध है। स्वर्गके देवता, मेरी यह साध पूरी कर दो।

इसके बाद अगर मैं मर जाऊँ तो उसका कोई दुःख नहीं।" और जब मनो-रमा उसे पत्र-द्वारा देवदासके मद्य-पानका समाचार देती है तो वह उसे अपने यहाँ लानेके लिए स्वयं ही तालसोनापुर पहुँचती है। इस कार्यमें वह तनिक भी लज्जाका अनुभव नहीं करती—'अपनी चीज़ आप ले जाऊँगी इसमें लाज काहे की?' परन्तु नियति-चक्रके सम्मुख पार्वतीकी कुछ भी नहीं चलती। देवदास उसीके घरके सामने आकर मर जाता है और उसे इसका पता भी नहीं लगता। इसीलिए शरत्‌के साथ-साथ पाठकोंको भी देवदास और उसके वर्गके लोगोंके लिए प्रार्थना करनी पड़ती है, "उसकी तरह किसीकी मृत्यु हो तो मरनेमें कोई हर्ज नहीं है। लेकिन ऐसा हो कि उस समय एक स्नेहपूर्ण कर-स्पर्श उसके मस्तकतक पहुँचे और एक करुणार्द्र स्नेहपूर्ण मुख देखते-देखते इस जीवनका अन्त हो। मरनेके समय वह किसीकी आँखोंका एक बूँद जल देखकर मर सके।"

पार्वतीके उपरान्त 'देवदास' की कथामें, और देवदासके व्यक्तित्वमें चन्द्र-मुखीका प्रमुख भाग है। वह कलकत्तेमें वेश्यावृत्ति करके अपना जीवनयापन करती है, परन्तु वह अत्यन्त सहृदय है। अपनी जीविकोपार्जनमें उसे कोई कठिनाई नहीं, क्योंकि रूप और वाक्पटुता उसके व्यक्तित्वमें पूर्ण विकसित हैं। यद्यपि उसकी अवस्था अधिक हो गई है तो भी उसके शरीरमें रूप नहीं समाता, ऐसा जान पड़ाता है कि अवस्थाके साथ ही उसके रूपमें भी वृद्धि हो रही है। वार्तालापमें उसे अप्रतिभ करना बहुत ही कठिन काम है। परन्तु ये तो उसके चरित्रके व्यावसायिक गुण हैं। इनके बीचमें भी उसकी मूल-नारी-प्रकृतिकी ज्योति कभी क्षीण नहीं होती।

चन्द्रमुखीके व्यक्तित्वका अधिक अच्छा भाग उस समय प्रकाशमें आता है, जब उसका देवदाससे संपर्क होता है। उसके हृदयकी सुप्त सद्वृत्तियाँ तभी जाग्रत होती हैं। देवदाससे प्रथम बार भेंट होनेपर ही वह उसकी ओर आकर्षित हो जाती है। चुन्नीलालसे वह कहती है, "जब उनका मन ठिकाने हो, तब फिर एक बार लाना, उन्हें फिर एक बार देखूँगी।" ऐसा जान पड़ता है कि वह किसी ऐसे ही व्यक्तिकी प्रतीक्षामें थी जो उसके विकारग्रस्त

मनको निर्मलताकी ओर ले जावे। वह देवदाससे प्रेम करने लग जाती है। उसके चले जानेपर वह अपना व्यवसाय समाप्त कर देती है, और अपने शृंगारकी ओरसे उदासीन हो जाती है। उसके प्रेममें भोग प्रधान न होकर, त्याग प्रधान है। अब उसकी वेश्या-मनोवृत्तिकी प्रतिक्रिया होती है।

अत्यन्त हीन दशामें चन्द्रमुखी देवदासकी प्रतीक्षा करती रहती है, और अन्तमें जब वह आता है, तब मानो उसकी तपस्या पूर्ण होती है। वह कहती है, "नाराज़ न होना। जानेसे पहले मैंने आशा की थी कि अगर एक बार तुमसे भेंट हो जाय तो अच्छा हो।" और फिर वह देवदासको बताती है, "जिस दिन तुम पहले-पहल यहाँ आये थे, उसी दिन तुमपर मेरी दृष्टि पड़ी थी। यह मैं जानती थी कि तुम बहुत बड़े धनीके लड़के हो। लेकिन धनकी आशासे मैं तुम्हारी ओर आकृष्ट नहीं हुई......शराबसे मुझे बहुत घृणा है। कोई शराबसे मतवाला होता तो उसपर बहुत क्रोध आता। लेकिन तुम मतवाले होते तो क्रोध नहीं आता—बहुत ही दुःख पाती।" अब चन्द्रमुखी अपने निराश्रित जीवनमें देवदासको ही सहारा समझती है; अभावके समय वह उससे धन माँगनेका वादा भी करती है, परन्तु साथ ही वह यह भी चाहती है कि किसी प्रकार देवदासकी वह कुछ सेवा कर सके। जानेके समय वह देवदाससे कहती है, "ईश्वर न करे, यदि कभी दासीकी आवश्यकता हो तो इसे स्मरण रखना।" उसका विश्वास है कि देवदासकी गृहस्थीमें दासीकी तरह रहकर वह अपने दिन सुखसे बिता सकेगी।

कलकत्ता छोड़कर गाँवमें रहनेपर भी उसे देवदासकी सदा चिन्ता रहती है। उसका पता लगानेके लिए वह पैदल ही तालसोनापुर जाती है। रास्तेमें उसके अनभ्यस्त कोमल पैर क्षत-विक्षत होकर लहू-लुहान हो जाते हैं, पर भूखी-प्यासी रहते हुए भी वह हार नहीं मानती। इस अविचलित प्रेमका अचल रूपसे देवदासके मनपर प्रभाव पड़ता है। मरणासन्न अवस्थामें देवदासको अपनी माँके साथ ही चन्द्रमुखीका स्मरण हो आता है।' 'पापिष्ठा समझकर जिससे हमेशा घृणा की है, उसीको अपनी माताके पास ही गौरवके साथ स्पष्ट होते देख उसकी आँखोंसे झर-झर आँसू बहने लगते हैं।'

यहाँ एक बातका स्मरण रखना आवश्यक है कि देवदासको इतना अधिक प्रेम करती हुई भी चन्द्रमुखी उसे अपने लिए प्राप्त नहीं करना चाहती, क्योंकि वह भली भाँति जानती है कि उसके अभीष्टपर किसी दूसरेका अधिकार है। शराबके नशेमें देवदासने जब पार्वतीका नाम लिया था, तभी वह अपनी सीमा समझ गई थी, परन्तु देवदासको प्यार करनेसे उसे कोई रोक न सकता था। यदि वह चाहती तो अपनी सेवा और सहिष्णुतासे निरुपाय देवदासको प्राप्त भी कर सकती थी, परन्तु उसके हृदयकी विशालता और कदाचित् उसकी सामाजिक स्थितिके ज्ञानने ऐसा नहीं होने दिया। और इस प्रकार दूसरेका घर उजाड़कर उसने अपना घर नहीं बसाया। देवदासके पास पहुँचनेकी तीव्र इच्छाको अपने मनमें ही रखकर, वह कलकत्तेके समीपवर्ती किसी गाँवमें चली गई, क्योंकि तीर्थ और धर्मपर उसकी कोई श्रद्धा नही, और हो भी कैसे सकती थी जब कि उसका तीर्थ और धर्म देवदास ही बन गया था।

अपने कोमल शरीर और मनको लेकर चन्द्रमुखी गाँवमें एक झोंपड़ी बनाकर रहने लगती है। प्रेमकी असफलताने उसे निराश नहीं किया, वरन् उसकी वासनाओंका उन्नयन किया है। वह देवदासके भेजे हुए रुपयोंको गाँवके विपत्तिमें पड़े हुए व्यक्तियोंको उधार देती है, सूद नहीं लेती। जो रुपये नहीं दे सकता, वह नहीं देता। वह मूल धनके लिए भी लोगोंको तंग नहीं करती, क्योंकि वह सोचती है, "वे जीते रहे, मुझे रुपयोंकी चिन्ता क्या!" और इस तरह परम शान्तिके वातावरणमें उसके दिन व्यतीत होते हैं। सेवा और परोपकारकी भावनाएँ उसके व्यक्तित्वमें एकदम सहज हो गई हैं। इसीलिए जब अपनी झोंपड़ीको छोड़कर चन्द्रमुखी कलकत्ते-के लिए चलने लगती है तो गाँवकी सभी स्त्रियाँ और पुरुष रोने लगते हैं, स्वयं चन्द्रमुखीकी आँखोंमें भी जल नहीं समाता।

चन्द्रमुखीका चरित्र नारीके मूल गुणों—धैर्य एवं सहिष्णुतासे विहीन नहीं है। 'उसमें कितनी अधिक बुद्धि है। वह कितनी शान्त और धीर

है। और वह कितना स्नेह करती है'—ये तीनों छोटे-छोटे वाक्य उसके चरित्रके प्रमुख तत्त्वोंपर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। उसका अलोभ तथा मदिराके प्रति घृणा उसे वेश्या सिद्ध नहीं करते। सहनशीलता उसमें इतनी अधिक है कि उसे पूरा-पूरा समझनेके पहले ही देवदास कहता है (और यह कितना सत्य है!) "आहा! तुम सहिष्णुताकी प्रतिमूर्त्ति हो! स्त्रियोंको लांछना, भर्त्स्ना, अपमान, अत्याचार और उपद्रव आदि कितने सहने पड़ते हैं, तुम्हीं सब इसका दृष्टान्त हो!"

चन्द्रमुखीके हृदयमें पार्वतीके लिए पर्याप्त श्रद्धा है। वह देवदाससे कहती है, "मुझे विश्वास नहीं होता कि पार्वतीने तुम्हें धोखा दिया है। वल्कि मेरा ख़्याल है कि स्वयं तुमने अपने आपको धोखा दिया है . . . .मेरी समझमें स्त्रियोंकी जो यह बहुत बड़ी बदनामी है कि वे बहुत ही चंचल तथा अस्थिरचित्त हुआ करती हैं, सो ठीक नहीं। वे उतनी अधिक बदनामीके योग्य नहीं हैं।" इन शब्दोंसे स्पष्ट जान पड़ता है कि वेश्या-वृत्तिमें होनेपर भी चन्द्रमुखी प्रेमकी उच्चता एवं महानता भली भाँति समझती है। वस्तुतः उसे अपनी वर्त्तमान स्थितिपर पश्चात्ताप भी है, वह बताती है—'जितनी घृणा तुम मुझपर करते हो, मैं भी उतनी ही घृणा अपने आप पर करती हूँ।' स्त्री-पुरुषके प्रेमके संबंधमें उसके विचार बड़े सुलझे हुए हैं, उसका मत काफ़ी सुचिन्तित एवं सुनिश्चित जान पड़ता है। वह कहती है, "रूपका मोह तुम लोगोंकी अपेक्षा हम लोगोंमें बहुत ही कम होता है; इसीलिए तुम लोगोंकी तरह हम लोग उन्मत्त नहीं हो जातीं। तुम लोग आकर अपना प्रेम जतलाते हो, न जाने कितनी तरहकी बातों और भावोंमें जब उसे प्रकट करते हो, तब हम लोग चुप ही रहती हैं। प्रायः ऐसा होता है कि तुम लोगोंके मनको क्लेश पहुँचानेमें हम लोगोंको लज्जा आती है, दुःख होता है, संकोच होता है। मुँह देखनेमें भी जब घृणा होती है, तब भी कदाचित् लज्जाके कारण कह नहीं सकतीं कि हम तुम्हें प्रेम नहीं कर सकेंगी। इसके बाद एक बाह्य प्रणयका अभिनय आरंभ होता है। फिर एक दिन जब उसका अन्त हो जाता है तब पुरुष क्रुद्ध और अस्थिर होकर कहते हैं

कि कैसी विश्वासघातिनी है......उस समय कदाचित् कुछ ममता उत्पन्न हो जाती है। स्त्रियाँ समझती हैं कि कदाचित् यही प्रेम है। वे शान्त और धीर भावसे संसारके सब काम-धंधे करती हैं, दुःखके समय प्राणपणसे सहायता करती हैं। उस समय तुम लोग उनकी कितनी सुख्याति करते हो! बात-बातमें उन्हें कितना धन्य कहते हो? लेकिन संभवतः उस समय भी उन्हें प्रेमका अक्षर ज्ञान तक नहीं होता।" उक्त लंबे उद्धरणसे चन्द्रमुखीकी विचारशीलता स्पष्ट प्रकट होती है, और साथ ही उसकी सूक्ष्म दृष्टिका भी पता चलता है। यहाँ स्मरणीय है कि अपने प्रेमके सम्बन्धमें चंद्रमुखीकी उक्त धारणा नहीं है। यह तो स्त्री-पुरुषके प्रेमके सम्बन्धमें एक सामान्य कथन है। अवश्य ही, इससे कुछ उसकी प्रवृत्तियों पर भी प्रकाश पड़ता है।

'देवदास' में पारो तथा चन्द्रमुखी—दो ही प्रमुख नारीपात्र हैं। इन दोनोंकी तुलना करता हुआ देवदास स्वयं चन्द्रमुखीसे कहता है, "तुम दोनोंमें परस्पर कितना अन्तर है, फिर भी कितनी समानता है। एक आत्माभिमानिनी और उद्धत है; और दूसरी कितनी शान्त और संयत है। वह कुछ भी सहन नहीं कर सकती और तुम कितना सहन करती हो। उसका कितना यश और कितना सुनाम है और तुम पर कितना कलंक है। उससे सभी प्रेम करते हैं और तुमसे कोई प्रेम नहीं करता।"

उपन्यासके पार्श्व-चरित्रोंमें, मनोरमाका व्यक्तित्व औसत दर्जेका है; पारोकी यह सखी वस्तुओंको ऊपरी निगाहसे देखनेवाली है। पार्वतीकी सौतेली वधू जलदबालामें लड़कपन अधिक है। बुद्धिमती और कार्यपटु होते हुए भी एक गृहिणीकी सूक्ष्म बुद्धिका उसमें अभाव है। क्रोधको वशमें रखना वह नहीं जानती। परन्तु प्रकृतिकी सरल एवं भोली है। इसके अतिरिक्त देवदासकी माँ, देवदासकी भाभी, पारोकी माँ, पारोकी दादी और पारोकी सौतेली पुत्री यशोदाका, कथानकमें यत्र-तत्र उल्लेख भर है। उपन्यासमें हमें उनकी चरित्र-योजनाकी सामग्री नहीं मिलती। इनका कहीं कोई विशेष स्थानीय महत्त्व भी नहीं है। 'देवदास' की ख्याति तो पारो एवं चन्द्रमुखीके चरित्रांकन पर ही आधारित है।

दत्ता

●

शरत्‌ने अपने कुछ उपन्यासोंमें प्रेममूलक समस्याके साथ ही गुँथी हुई बंगाली समाजकी ब्राह्म तथा हिंदू समस्याको भी अंकित किया है। अपने रचनाकालके पूर्वार्द्धमें उन्होंने 'परिणीता' के माध्यमसे एक ऐसा चित्र उपस्थित किया था; प्रौढ़ लेखनीसे प्रसूत 'दत्ता' और 'गृहदाह' में भी इसी समस्याको सुलझानेका प्रयत्न किया गया है। उक्त तीनों उपन्यासोंमें प्रेमका संघर्ष प्रायः एक प्रकारका है। इनमें-से 'दत्ता' एवं 'गृहदाह' की रचनामें समयका विशेष व्यवधान नहीं है। अतः उनका मूल कथानक समानान्तर विचार-धाराके फलस्वरूप कहा जा सकता है। परन्तु यदि 'दत्ता' को 'गृहदाह' से कुछ पहलेकी रचना माना जाय, जैसा कि दोनों उपन्यासोंकी प्रकृति एवं चरित्र-चित्रणसे स्पष्ट है, तो ऐसा जान पड़ेगा मानो 'परिणीता' की सरलहृदया ललिता ही कुछ अधिक गम्भीर एवं विकसित होकर 'दत्ता' की विजया बन गई है, और आगे चलकर 'गृहदाह' की अचलामें विजयाकी अस्थिरता तथा रहस्यात्मकता अपनी चरम सीमा पर जा पहुँची है।

'दत्ता' का कथानक इस प्रकार है—जगदीश, वनमाली तथा रासविहारी बचपनके मित्र हैं। जगदीशके एक लड़का है, जिसका नाम है नरेन्द्र। वनमालीके एक कन्या है, जिसका नाम है विजया, एवं रासविहारीके पुत्रका नाम विलास है। वृद्धावस्थातक पहुँचते-पहुँचते जगदीश एवं वनमालीकी मृत्यु हो जाती है, केवल रासविहारी जीवित रहते हैं। विजयाके रूप-गुण तथा धनको देखकर कूटनीतिज्ञ रासविहारी उसे अपनी पुत्र-वधू बनाना चाहते हैं। विजया भी विलासकी ओर कम आकृष्ट नहीं है। अतः एक

प्रकारसे यह निश्चित हो जाता है कि विजया विलासकी पत्नी होगी। तभी एक दिन विजयाकी नरेन्द्रके साथ प्रथम बार भेंट होती है। उसे देखकर वह मुग्ध हो जाती है तथा उसे अपने पिताकी अन्तिम कामना याद आती है कि विजया नरेन्द्रकी वधू बने। परन्तु विजया एवं विलास दोनों ही ब्राह्म हैं, जब कि नरेन्द्र हिंदू है। रासविहारीकी कूटनीति एवं धार्मिक विषमताके फलस्वरूप नरेन्द्र और विजयाके बीच ऊँची दीवार खड़ी हो जाती है। विजयाकी अनिच्छा रहते हुए भी उसके विलासके साथ विवाहकी तिथि निश्चित हो जाती है। पर शरत् भली भाँति जानते थे कि मनीषियोंने व्यर्थ ही नहीं कहा है—**'जा पर जाकर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलहिं न कछु सन्देहू'**, और इसीलिए कथाका अन्त होते-होते, बड़े ही नाटकीय ढंगसे विजयाका विवाह नरेन्द्रके साथ हो जाता है।

'दत्ता' के अपेक्षाकृत विस्तृत कथा-भागमें केवल दो ही नारी-पात्रोंका अंकन हुआ है। एक तो विजया, जो उपन्यासकी नायिका है, और दूसरा नलिनीका जो पार्श्व-चरित्र है। इतने कम नारी-पात्र लेखककी किसी भी अन्य कृतिमें शायद न मिलेंगे। इसका कारण कदाचित् यही हो सकता है कि उपन्यासकारने 'दत्ता' की रचना इस प्रकारकी है कि उसका कथानक केवल एक नारी-चरित्रकी संवेदनासे ढँक जाय! इसीलिए उपन्यासके कथा-विधानमें किसी दूसरे नारी-पात्रकी आवश्यकता नहीं हुई। नलिनीका चरित्र कथामें कुछ संघर्ष भरनेके लिए रखा गया है। इस दृष्टिसे उपन्यासमें उसका स्थानीय महत्त्व अवश्य है। अन्यथा 'दत्ता' की एक-एक पंक्तिमें विजयाके हृदयकी संवेदना ही परिव्याप्त है।

विजया अभिजात्य वर्गके एक धनी पिताकी एक मात्र पुत्री है। बचपनमें ही उसकी माताकी मृत्यु हो गई थी, और युवावस्था तक पहुँचते-पहुँचते वह अपने पिताको भी खो बैठी। भाई-बहिन उसके कोई है नहीं! उसकी संपत्ति एवं कुलीनताकी रक्षाके लिए उसके पिताके घनिष्ट मित्र रासविहारी तथा उनका पुत्र विलास अवशिष्ट हैं। इन्हींके सहारे वह घर-बाहरका प्रबन्ध करती है।

विजयाके चरित्रकी सर्व-प्रमुख विशेषता है उसकी पितृ-भक्ति, जो आधुनिक सभ्यताके रंगमें रँगी हुई कन्याओंमें प्रायः नहीं मिलती। अपने वृद्ध पिता वनमालीसे वह सदैव ही कहती रही है, "बापू, तुम्हारा आदेश मैं किसी दिन नहीं टालूँगी।" स्नेहमय पिताके अनुरोधोंको वह टालती है, किन्तु केवल तभी जब कूटनीतिज्ञ रासविहारी-द्वारा धर्मका भयानक आवरण उसके मन पर डाल दिया जाता है, किन्तु अपनी इस करनीका उसे सदैव पश्चात्ताप रहता है, और इसीलिए पिताके आदेशके विरुद्ध उनके बाल्य-मित्र जगदीशके पुत्र नरेन्द्रसे, ऋणकी अदायगी स्वरूप लिखा हुआ घर वह वापस करनेकी सोचती है, 'बापूका आदेश ही उसकी अदालत है।'

पिताकी शिक्षा-दीक्षाके अनुरूप ही विजयाके व्यक्तित्वमें व्यावहारिक संयम सहज हो गया है। विलासके कठोर-से-कठोर वाक्य-प्रहारोंको वह बिना किसी उत्तरके सहन कर लेती है। इस व्यावहारिक संयमके फलस्वरूप उसकी प्रकृति बहुत कुछ संधि-करनेवाली हो गई है। अपने किसी अपराध-को स्वीकार करके कलहको शान्त करनेमें उसे कोई लज्जा नहीं। मानसिक संघर्षके समय यह ब्राह्म महिला केवल यह सोचकर रह जाती है, "मंगलमयकी इच्छासे सब मंगलके लिए ही हुआ है।" परन्तु जब इतनेसे भी काम नहीं चलता तो वह विवश होकर आकस्मिक निर्णय करती है, अन्यथा प्रत्युत्पन्नमति उसकी विचार-शैलीकी विशेषता नहीं।

अभिजात्य वर्गके रहन-सहनके कारण उसके दैनिक जीवनके आचार-विचार बड़े ही सुलझे हुए हैं। सभ्य समाजके आचरणोंका वह स्वयं पालन करती है और साथ ही दूसरोंसे भी उसी प्रकारके व्यवहारकी आशा रखती है। विलासके अशिष्ट व्यवहारसे वह सदैव असन्तुष्ट रहती है। भद्रताके तकाज़ेके कारण ही प्रथम भेंटके समय वह नरेन्द्रसे उसका नामतक नहीं पूछ पाती। उसकी शिष्टताका मापदण्ड भी नितान्त भारतीय है। वह पुरुषोंको पहले खिलानेका अधिकार नहीं छोड़ना चाहती और जाति-भेदमें उसका विश्वास है; इसीलिए ब्राह्म होते हुए भी उसके विचारोंमें हिंदुत्व

अवशिष्ट है। दूसरोंकी निन्दा उसे एकदम अच्छी नहीं लगती, औ यहर बात वह नरेन्द्रको कुछ कठोरताके साथ बता भी देती है।

किसी भी चित्रकारको आकर्षित करनेवाले सौंदर्यकी स्वामिनी होनेके साथ-साथ विजयाके चरित्रमें सहृदयताकी कमी नहीं है। गाँवकी प्रजाका दुःख सुनकर उसका कोमल चित्त व्यथासे भर उठता है। नरेन्द्रके खाने पीनेकी दुर्व्यवस्था जाननेपर उसकी आँखोंमें आँसू आ जाते हैं। हृदयकी-स्निग्धतासे संयुक्त दया भी उसके मनकी स्वाभाविक वृत्ति है। अपने गुमाश्ते वृद्ध दयालकी बीमारीमें, वह स्वयं रुग्ण होते हुए, नरेन्द्रको उसके पास परिचर्याके लिए भेजती है। किसीके दुःख निवारणके लिए दो-चार सौ रुपया व्यय कर डालना उसके लिए बड़ी बात नहीं। अपने पुराने नौकर कालीपदको नौकरीसे अलग किये जानेपर वह रासविहारी तथा विलासको असन्तुष्ट करके स्वयं उसे रख लेती है। उसके जीवनकी यह छोटी-छोटी घटनाएँ उसके कोमल मनकी परिचायक हैं, जो स्त्रियोचित दयाके संयोगके कारण अत्यन्त सजल एवं स्निग्ध हो गया है।

विजयाकी विचार-शक्ति अवस्थाके अनुकूल ही पूर्ण परिपक्व नहीं हो पाई है। विलास-द्वारा दिये गये यश-प्राप्त करनेके प्रलोभनोंमें वह सहज ही फँस जाती है। लेखकके शब्दोंमें, "सचमुच इतने बड़े नामका लोभ-संवरण करना अठारह वर्षकी लड़कीके लिए संभव नहीं !" और इस प्रकार समाजसे सम्मान प्राप्त करनेके लिए, वह पिताकी अन्तिम इच्छाको ठुकरा कर भी, नरेन्द्रके पैतृक घरको लेनेकी सम्मति दे देती है, जिससे उसमें ब्राह्म-मन्दिरकी प्रतिष्ठा हो सके। पर ब्रह्मसमाजकी अनुयायिनी होनेपर भी उसके मनमें अन्य धर्मोंके प्रति विद्वेष नहीं है। धार्मिक सहिष्णुता उसके चरित्रका प्रमुख अंग है। इसीलिए अपने घरकी बगलमें वह दुर्गा-पूजाके उत्सवको संपन्न करनेकी आज्ञा दे देती है। विलासके इस संबंधमें आपत्ति करनेपर वह स्पष्ट शब्दोंमें कहती है, "आप जो कर सकें करें, लेकिन मैं किसीके धर्म-कर्ममें बाधा नहीं डाल सकूंगी।" अपरिपक्व अवस्थाकी होनेपर भी उसकी सावधानीसे रासविहारी बहुत परेशान हैं। अपनी

दिनचर्यामें विघ्न पड़ता देखकर वह विलासको फटकार देती है—"महीने-महीने दो सौ रुपय वेतन आप लेते हैं। वे रुपये तो मैं आपको यों ही खाली देती नहीं, काम करनेके लिए देती हूँ.... आपके असंख्य उत्पात मैं निःशब्द सहती आ रही हूँ, लेकिन मैंने जितना ही सहन किया है, अन्याय और उपद्रव उतना ही बढ़ता गया है। मालिक-नौकरके संबंधके सिवा आजसे आपका मेरा और कोई संबन्ध नहीं रहेगा।" और इस प्रकार विलाससे, जो उसका संभाव्य पति है, वह स्वयं को 'तुम' कह कर संबोधित करनेका अधिकार तक छीन लेती है। पर जब उसके क्रोधका आवेश उतर जाता है, तो अपने अशिष्ट आचरणके लिए वह लज्जित होती है। विलासके प्रति प्रदर्शित असंयत रूक्षतापर उसे पश्चात्ताप है।

ऊपरकी समीक्षासे एकदम स्पष्ट है कि विजयाका चरित्र सामान्य मानव-जीवनकी भलाइयों-बुराइयोंसे भरा हुआ, नितान्त स्वाभाविक है। कभी उसका मन इतना दुर्बल हो जाता है कि वह विलासके डरसे अपने प्रिय भृत्य कालीपदको निरपराध ही नौकरीसे अलग करनेके लिए तैयार हो जाती है, और कभी उसका मन इतना सशक्त हो उठता है कि वह रासविहारीको भी कठोर-से-कठोर बातें निःसंकोच सुना देती है। अपनी स्पष्टवादिताके कारण वह रासविहारीके सम्मुख ही उनकी नीयतपर सन्देह प्रकट करती है। विलासको वह बता देती है कि उसका प्रेम केवल धनके लिए है। मनकी इन ऊँची-नीची भूमियोंसे अवसर पाकर नलिनीके प्रति उसकी ईर्ष्या भी उभर पड़ती है। नरेन्द्रको नलिनीकी ओर झुकते देखकर वह हत-बुद्धि हो जाती है। उसके हृदयको भारी धक्का लगता है, वह सोचती है, "जगत्‌के सभी पुरुष एक ही साँचेमें ढले हुए हैं। रासविहारी, दयाल, विलास, नरेन्द्र—असलमें किसीके साथ किसीका कोई प्रभेद नहीं। बुद्धि और अवस्थाके तारतम्यसे जो कुछ बाहर दिखलाई देता है, केवल वही प्रभेद है। नहीं तो अपने सुख और सुभीतेके लिए नीचतामें, कृतघ्नतामें, निर्मम निष्ठुरतामें नारीके लिए ये सभी समान हैं।" कहना न होगा कि

मनुष्यमें ऐसी विचार-धारा तभी जाग्रत होती है, जब कि उसके मनके निर्बलतम स्थानपर चोट पहुँचती है।

यहाँ तक तो विजयाके चरित्रके सामान्य गुण-दोषोंकी संक्षिप्त समीक्षा हुई। अब हम उसके मानसिक संस्थानकी उस वृत्तिका विश्लेषण करेंगे, जो नारी-समाजकी आदिम एवं मूल मनोवृत्ति है, और जिसे हम प्रेम जैसे व्यापक नामसे पुकारते हैं। विजयाके हृदयकी रागात्मिका शक्ति बहुत तीव्र न होकर संयमित अधिक है। उसके हृदयमें यौवनावस्थाके आवेगके दो साझीदार हैं—नरेन्द्र और विलास। अवश्य ही पल्ला नरेन्द्रकी ओर झुका दिखाई देता है, क्योंकि उसका नैसर्गिक आकर्षण नरेन्द्रकी ओर ही है, परन्तु कुछ परिस्थितियोंसे विवश होकर उसे विलासकी ओर झुकना पड़ता है। इसके दो प्रमुख कारण हैं—एक तो विलास विजयाका सजातीय ब्राह्म है, और दूसरे अपेक्षाकृत वह धनसंपन्न है। नरेन्द्रके विपक्षमें ये दोनों ही बातें ठहरती हैं। वह हिंदू है और उसके घरमें संपत्तिका नाम-निशान नहीं। इसके अतिरिक्त वृद्ध तथा अनुभवी रासविहारीकी कूटनीति भी विजया और नरेन्द्रके बीच यथासंभव ऊँची दीवार खड़ी करनेका प्रयत्न करती है। इस प्रकार विजयाका हृदय प्रथम यौवनावस्थासे लेकर विवाह होनेके कुछ क्षण पूर्व तक, तीव्र मानसिक संघर्षोंकी रंगभूमि बना रहता है।

प्रथम बार ही एक अपरिचित व्यक्तिके रूपमें जब विजयाकी नरेन्द्रसे भेंट होती है तो उसका मन अस्थिर हो उठता है। वह सोचती है, "कौन है यह, और अब कब इससे भेंट होगी ?" फिर लेखककी तो मान्यता ही है, 'जो लोग समझते हैं, यथार्थ बंधुत्व होनेके लिए अनेक दिन चाहिएँ उन्हें याद दिला देना ज़रूरी है, कि नहीं, यह बहुत ज़रूरी नहीं है।' यहाँ शरत्बाबू अपनी इस उपपत्तिके लिए कोई निश्चित कारण नहीं देते, और वस्तुतः यह 'यथार्थ बंधुत्व अकारण ही आविर्भूत होता है।' अतः इस प्राकृतिक नियमके अनुकूल ही विजया और नरेन्द्र एक-दूसरेको अपने काफ़ी निकट अनुभव करते हैं। पर विजयाके मनमें आकर्षणका जादू अधिक गहरा है, इसीलिए वह अपरिचित नरेन्द्रको देखनेकी तृष्णा मनमें सँजोये

रहती है। बहुत दिनोंतक न मिलनेपर वह बिना किसीको बताये उसका पता लगवाती है।

विजयाको सबसे अधिक असन्तोष इस बातका है कि नरेन्द्रके मनमें उसके प्रेमकी प्रतिक्रिया नहीं दिखाई देती। उस वैज्ञानिकको सदैव ही निर्विकार रहता जानकर उसकी झुँझलाहट बढ़ जाती है। इसीलिए कभी-कभी अपने व्यवहार तथा वार्त्तालापसे वह नरेन्द्रको परेशान भी कर देती है। पर उसकी सारी छेड़-छाड़ उसके हृदयके प्रेमको और पुष्ट करती है। विजयाके आचरणको देखकर, बड़ी सरलतासे नरेन्द्र स्वयं कहता है, "मैं तो आपके लिए एकदम पराया हूँ, मेरे दुःख-कष्टसे सचमुच ही तो आपका कुछ हानि-लाभ नहीं है, तो भी आपका आचरण देखकर बाहरका कोई नहीं कह सकता कि मैं आपका अपना व्यक्ति नहीं हूँ।" नरेन्द्रके इस कथनमें यद्यपि बाह्य शिष्टाचारका कोई अंश नहीं, तथापि उसकी निष्कपट उदासीनता, जो उसके व्यवहार एवं बात-चीतसे टपकती है, विजयाके निकट चिन्ताका विषय है। प्रणय-रीतिसे अपरिचित नरेन्द्र विजयाके मनोभाव ठीक-ठीक नहीं पहचान पाता, इसीलिए उसके चले जानेपर अनजानेमें ही विजयाका मन, आँखें और वस्त्र एकसाथ भींग उठते हैं।

कुछ तो नरेन्द्रकी सरलताके कारण और कुछ रासविहारी एवं विलासके भयसे विजया नरेन्द्रके प्रति अपने प्रेमको स्पष्टतः प्रकट नहीं कर पाती। बीमारीकी अवस्थामें अवश्य ही वह एक बार सबके सम्मुख भावावेशमें नरेन्द्रसे कहती है, "मैं जब तक अच्छी न हो जाऊँ, बोलो, कि तबतक तुम कहीं न जाओगे—तुम चले गये तो मैं शायद बचूँगी नहीं।" यह नियतिका व्यंग है कि विजयाके इतने बड़े आग्रहको भी नरेन्द्र नहीं समझ पाता। परिणामस्वरूप अनिच्छा रहते हुए भी वह परिस्थितियोंके प्रभावसे दिन प्रति दिन विलासके अधिकाधिक निकट आती जाती है। कलकत्ते जाते हुए, स्टेशन पर जब नरेन्द्र उसके संदेशको क्रोधित होकर ठुकरा देता है तो इस समाचारको जानकर वह एकदम स्तब्ध रह जाती है। कालीपद देखता है कि उसकी दृष्टि जैसी ही निर्विकार, वैसी ही शून्य है।

विलासका प्रेम उसके मनमें प्रविष्ट नहीं होता। "शामके गहरे अँधेरेमें एकाकी कमरेमें उसके संगी-विहीन प्राण जब व्यथासे व्याकुल हो उठते हैं, तब कल्पनामें निःशब्द पद-संचार करके जो धीरे-धीरे उसके बगलमें आ बैठता है, वह विलास नहीं और एक व्यक्ति है।" विजया यद्यपि भलीभाँति समझती है कि विलासके सम्मुख, संसार-यात्राके दुर्गम पथमें, इस हृदयमें रहनेवाले व्यक्तिका मूल्य बहुत कम है—वह जैसा अपटु है, वैसा ही निरुपाय भी—तथापि अपने मनसे वह उसे निकालनेमें असमर्थ है। नरेन्द्रके प्रति प्रेम उसके अस्तित्वका आधार हो गया है। इसी-लिए विलासके साथ विवाहकी भूमिका-स्वरूप, आशीर्वादके स्वर्ण-वलयको हथकड़ियोंके समान, वह अवश हाथोंमें पहनती है। पर उस मूर्छितप्राय निरुपाय नारीके हृदयकी गंभीर वेदनाको कोई नहीं समझ पाता।

और जब एक दिन नरेन्द्र-द्वारा दिये गये अपने मृत पिताके पत्रोंसे उसे इस बातका पता चलता है कि उनकी हार्दिक इच्छा यही थी कि विजयाका विवाह नरेन्द्रके साथ हो, तो उसके मनका संघर्ष अपनी चरम सीमापर पहुँच जाता है। अपने ऋणी नरेन्द्रको दान देनेकी बातसे उसके मनको कष्ट पहुँचता है, परन्तु वस्तुतः तो नरेन्द्र ही उसका स्वामी है। जब उसे इस बातका ज्ञान होता है, तो रासविहारीकी कूटनीतिके चक्रमें पड़कर नरेन्द्रके प्रति किये गये अपने व्यवहारको याद कर उसका मन सन्तापसे भर उठता है, परन्तु अब तो बाहर निकलनेका भी कोई मार्ग नहीं रहता।

इसी बीचमें एक ग़लतफ़हमी उसके उखड़े हुए, उदासीन हृदयको नरेन्द्र-से दूर कर देती है। वह एक बार नरेन्द्रको दयालकी अविवाहित भांजी नलिनीके साथ देखकर शंकित हो उठी थी, परंतु जब वह यह सुनती है कि रोज़ शामको नरेन्द्र कलकत्तेसे नलिनीको पढ़ानेके लिए आया करता है तो उसका सन्देह और भी दृढ़ हो जाता है। फिर एक बार जब वह दयालके घर नरेन्द्र और नलिनीको अत्यन्त घनिष्ट भावसे पास-पास बैठा देखती है तो उसके हृदयमें नरेन्द्रके प्रति सारा प्रेम एकबार ही मुरझा जाता है, नलिनीके प्रति ईर्ष्याकी आग उसके मनमें भड़क उठती है। नरेन्द्रकी ओर

तो वह देखती तक नहीं। उसके बाद यह पूछने पर, "मुझे शायद पहचान भी न सकीं ?" वह शान्त अवज्ञाके साथ उत्तर देती है, "पहचान सकनेसे ही क्या पहचान करना ज़रूरी हो जाता है ?"

पर इसके बाद कथानक फिर एक बार मोड़ लेता है और विजयाको ज्ञात होता है कि नरेन्द्र केवल उसीसे प्रेम करता है। यह जानकर उसका मन निर्मल हो उठता है, परन्तु अब तो उसके बाहर निकलनेके सारे मार्ग अवरुद्ध हैं। वह नरेन्द्र तक पहुँचे किस प्रकार ? इस विकट परिस्थिति में उसके स्नेहकी दृढ़ता सचमुच दर्शनीय है। वह भग्न कण्ठसे कहती है, "नहीं नहीं, मरणके अतिरिक्त अब और कोई मार्ग नहीं है।" पर प्रेमका निर्बल-से-निर्बल सूत्र भी बड़ी कठिनाईसे टूटता है। नलिनी एवं दयालकी चतुराईसे एक बड़े नाटकीय वातावरणमें विजया और नरेन्द्रका विवाह हो जाता है, और इस प्रकार विजयाके प्रेमका और उपन्यासके कथानकका बड़े सन्तोषजनक एवं सुखद रूपमें अन्त होता है।

विजयाके नैसर्गिक प्रेमको नरेन्द्रका प्रतिद्वन्द्वी विलास, कुछ दुर्बल क्षणोंको छोड़कर, कभी प्राप्त न कर सका। यह सोचते हुए भी कि कुछ दिनोंके बाद ही विलास उसका पति होने जा रहा है, विजया उसे अपने निकट न ला सकी। कुछ दिनोंके लिए अवश्य, जब खिन्नता तथा उदासी-के वातावरणमें वह नरेन्द्रकी ओरसे विमुख हो गई थी, उसका विवश मन विलासकी ओर आकर्षित हुआ था। पर शीघ्र ही उसकी भूलका निराकरण हुआ तथा उसकी नैसर्गिक वृत्तियाँ पूर्ववत् हो गईं। यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो 'परिणीता' से लेकर 'गृहदाह' तक प्रेमकी प्रतिद्वंद्विताकी भावना एक निश्चित ढंगसे विकसित होती हुई दिखाई देती है। 'परिणीता' की ललिताकी ओर शेखर तथा गिरीश आकर्षित हैं, पर प्रतिदान-स्वरूप ललिता केवल शेखरको ही अपना हृदय देती है। अतः उसके मनमें किसी प्रकारका संघर्ष नहीं। 'दत्ता' में विजयाको प्राप्त करनेके इच्छुक दो हैं—नरेन्द्र तथा विलास। यद्यपि विजया समग्र भावसे नरेन्द्रको ही चाहती है, परन्तु कुछ कालके लिए उसका झुकाव विलासकी ओर भी होता है। उसके मनमें

संघर्षकी भावना अपेक्षाकृत कुछ अधिक तीव्र हो जाती है। 'गृहदाह' के कथानककी मूल संवेदना उक्त दोनों उपन्यासोंकी मूल संवेदनासे एकदम मिलती-जुलती है—ब्राह्म तथा हिंदू, एवं धनी तथा निर्धनीका वही प्रेममूलक संघर्ष इसमें भी विद्यमान है, परन्तु अपने जीवनके उत्तरार्द्ध तक आते-आते, नारीके एकनिष्ठ प्रेममें शरत्‌का विश्वास कुछ डिग उठा था। 'गृहदाह' में भी अचलाके दो प्रेमी हैं—महिम और सुरेश। पर यहाँ अचला-का हृदय दोनोंकी ओर समान भावसे आकर्षित है। उपन्यासके अन्त तक शायद लेखक स्वयं नहीं निश्चित कर सका कि अचला महिमको अधिक चाहती है अथवा सुरेशको। मनोविज्ञानके प्रभाव तथा अवस्था एवं अनु-भवमें वृद्धिके साथ-साथ, लेखककी नारीमें रहस्यात्मकताकी मात्रा बढ़ती गई है, इसका स्पष्ट आभास हमें उपर्युक्त विवेचनसे मिलता है।

जैसा कहा जा चुका है, 'दत्ता' में केवल दो नारी-चरित्र हैं—विजया तथा नलिनी। जहाँ विजया पूरे उपन्यासमें छाई रहती है, वहाँ नलिनीका कथानकमें स्थानीय महत्त्व है। इसीलिए उसके चरित्रके अध्ययनकी सामग्री हमें अधिक नहीं मिलती। नलिनी विजयाके यहाँ एक कर्मचारी दयालकी सुशिक्षिता एवं रूपवान भांजी है। अवस्थामें विजयासे वह कुछ ही बड़ी है। नरेन्द्रके प्रति उसकी आत्मीयता अत्यन्त सहज भावसे हो जाती है। पर उसका नरेन्द्रके साथ केवल मैत्रीका संबन्ध है। हृदयकी वह निष्कपट तथा सरल जान पड़ती है। इसीलिए उसकी हार्दिक इच्छा है कि नरेन्द्र और विजया परस्पर एक सूत्रमें बँध जाँय, और अपने इस निश्चयको वह अनेक विघ्न-बाधाओंके रहते हुए भी कार्य-रूपमें परिणत कर डालती है। उसके मनमें सेक्सकी विकृतियाँ नहीं हैं, इसीलिए उसका व्यक्तित्व इतना उदार, इतना सरल तथा इतना विनोद-प्रिय है। उसका जितना चरित्र उपन्यासमें अंकित है, वह नितांत पारदर्शक तथा समन्वित है। दो बिछुड़े हुए हृदयोंको मिलानेका पुण्य उसकी प्रकृतिको स्पृहणीय बना देता है।

गृहदाह

●

विचार एवं विधान—दोनों ही दृष्टियोंसे 'गृहदाह' शरत्बाबूकी अत्यन्त प्रौढ़ कृति है। लेखककी नारी-चरित्र संबन्धी विचार-भूमिमें उसका विशिष्ट स्थान है। 'परिणीता' और 'दत्ता' में अंकित प्रेमकी प्रतिद्वंद्विता एवं रागात्मक संघर्ष अपनी चरम सीमापर 'गृहदाह'में पहुँचा है। उपन्यासके शीर्षकसे ही उसके सारे वातावरणकी एक झलक हमारी आँखोंके सामने आ जाती है। किसीके जलते हुए घरकी संवेदनासे प्रेरित होकर शरत्ने इसकी रचना की होगी। 'गृहदाह' के पात्रोंका विकास प्रारंभसे ही शंका और संशयके वातावरणमें होता है। उनके अभिशप्त व्यक्तित्व मानसिक अस्थिरता एवं दुर्बलताके प्रतीक हैं। इसीलिए उपन्यासके कथानकमें पाठक एक क्षणके लिए भी जी भरकर साँस नहीं ले पाता। उसका मन सहमा-सहमा-सा रहता है। पग-पगपर उसे किसी आनेवाली आकस्मिक दुर्घटनाका आभास मिलता है। इन्हीं कारणोंसे 'गृहदाह' को यदि आदिसे लेकर अंत तक एक सिसकती हुई ट्रैजडी कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

यह बात निश्चित है कि 'गृहदाह' की घटनाओंकी यथाक्रम योजना बिना उसे आद्योपान्त पढ़े हुए समझ लेना संभव नहीं। यहाँपर बहुत संक्षेपमें हम उसकी मूल-कथाकी कुछ चर्चा करेंगे। महिम और सुरेश अभिन्न मित्र हैं। महिम निर्धन, परंतु प्रकृतिका अत्यन्त दृढ़ है। इसके विपरीत सुरेश एक धनाढ्य गृहका लड़का है, पर अनेक गुणोंके होते हुए भी उसका स्वभाव अपेक्षाकृत अस्थिर है। इन दोनों ही युवकोंका अपना निकटका कोई संबन्धी नहीं है। महिम एक अचला नामकी ब्राह्म युवतीसे प्रेम करता है, तथा उससे विवाह करना चाहता है; किन्तु ब्रह्म-समाजका कट्टर

विरोधी होनेके कारण सुरेश ऐसा करनेसे महिमको रोकता है। इस विवाहमें अवरोध डालनेके लिए वह स्वयं अचलाके पिताके पास जाता है। पर वहाँ पहुँचकर अचलाके शील-सौंदर्य पर वह भी कम मुग्ध नहीं होता। उसके पिताका कई हजारका ऋण वह शीघ्र चुका देता है। सुरेशका धन-वैभव तथा उसके गुणोंको देखकर केदारबाबू अचलाका विवाह उसीसे करना चाहते हैं।

यहींसे अचलाके हृदयमें रागात्मक संघर्षका प्रारम्भ हो जाता है। पर विवाह वह महिमसे ही करती है। पति-गृह पहुँचनेपर अचलाकी भेंट मृणालसे होती है, जिसका विवाह पहले महिमके साथ होनेवाला था। यहाँ आकर उपन्यासके सभी पात्रोंपर संशय एवं शंकाकी एक ऐसी छाया पड़ती है, जिससे वे अन्त तक नहीं उबर पाते। अचला मृणालके कारण महिम पर संदेह करती है, और महिम सुरेशके कारण अचलापर सन्देह करता है। इस प्रकार पारस्परिक विश्वासके अभावके कारण, पति तथा पत्नी-दोनोंमें-से कोई भी एक दूसरेसे सन्तुष्ट नहीं रह पाता। इसी बीच नव-विवाहित युग्मके यहाँ सुरेश जा पहुँचता है। उसके आगमनसे कलहके वातावरणमें और भी कटुता उत्पन्न हो जाती है। अन्ततः महिमसे अप्रसन्न होकर अचला सुरेशके साथ वापस अपने पिताके यहाँ कलकत्ते चली आती है।

गाँवमें अकेला महिम बीमार पड़ता है। सुरेश उसे अपने यहाँ लिवा लाता है। सबकी सम्मिलित परिचर्याके फलस्वरूप महिम स्वस्थ होता है, और जल-वायु परिवर्त्तनके लिए सुरेश और अचलाके साथ जबलपुरके लिए प्रस्थान करता है। रास्तेमें रातके समय सुरेशके मनके असुर जागृत होते हैं, और वह अचलाको धोखा देकर उसे ज़नाने डिब्बेसे इलाहाबादके पहले ही मुग़लसरायपर उतार लेता है। सोता हुआ बेचारा महिम ट्रेनमें चला जाता है। इस प्रकार पतिसे अलग किये जानेपर पहले तो अचला सुरेशसे बहुत अप्रसन्न होती है; पर अन्तमें कलहके शान्त होनेपर वह छद्म नाम धारणकर सुरेशके साथ बड़े राजसी ठाठ-बाटके साथ डेहरीमें रहने लगती है।

तभी इधर-उधर घूमता हुआ महिम वहाँ पहुँचता है। उससे साक्षात्कार होनेपर लज्जा और ग्लानिसे सुरेश तथा अचला दोनों गड़ जाते हैं। पर कोई कुछ कहता नहीं। एक दिन पासके गाँवमें प्लेगकी परिचर्याके लिए गये हुए सुरेशकी मृत्यु हो जाती है। उसकी बीमारीका समाचार जानकर महिम और अचला भी वहीं पहुँच गये थे। सुरेशकी अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त कर महिम और अचला वापस डेहरी आते हैं। बिना किसी विशेष वार्त्तालापके निरुपाय अचलाको छोड़कर महिम वहाँसे चला जाता है। और इस प्रकार 'गृहदाह' का कार्य पूर्ण होता है। इसके उपरान्त मृणालके आग्रह के फलस्वरूप महिमने अचलाको फिर स्वीकार किया या नहीं, इस बातका कोई आभास लेखक हमें नहीं देता। शायद इससे आगेकी कथाको वह स्वयं न जानता हो, शायद नियति-चक्रसे घायल अचलाके दुर्भाग्य पर वह और प्रकाश न डालना चाहता हो। जो भी हो, शंका और संदेह, संशय और अविश्वासकी चरम परिणति दारुण यंत्रणामें हो जाती है, जिसकी कथा पढ़कर कठोर-से-कठोर हृदयवाला व्यक्ति भी एक बार सिहर उठता है। यह है इन मानवीय मनोविकारोंके रंगमंच 'गृहदाह' की मूल रूप-रेखा!

'गृहदाह' के विस्तृत कथा-भागमें केवल दो प्रमुख नारीपात्र हमारे सामने आते हैं—अचला और मृणाल। वीणापाणिका उपन्यासमें स्थानीय महत्त्व है, तथा शेष बुआजी और हरियाकी माँ पार्श्व-चरित्र हैं। शरत्के नारी-पात्रोंमें शायद अचलाका चरित्र ही सबसे अधिक रहस्यमय एवं उलझा हुआ है। 'चरित्रहीन' की किरणमयी तथा 'शेष प्रश्न' की कमलके चरित्र भी जटिल हैं, परन्तु उनकी जटिलता केवल इस कारण है कि उनकी मान्यताएँ और धारणाएँ प्राचीन परम्पराके विरुद्ध हैं, उनके व्यक्तित्वमें विद्रोहका भाव अधिक है। इसलिए उनकी जटिलता सापेक्षिक दृष्टिकोण से है। पर अचलाका चरित्र तो अपने आपमें ही बड़ी अँधेरी गहराइयोंको लिये हुए है। उसका चंचल एवं अस्थिर मन मनोविज्ञानके बड़े-से-बड़े पण्डितोंके निकट अध्ययनकी वस्तु है। अचलाके इस गहन चरित्रका विश्लेषण हम सर्वप्रथम करेंगे।

अचलाके व्यक्तित्वका सबसे बड़ा विरोधाभास यह है कि व्यावहारिक संयम तथा मानसिक असंयम दोनों साथ ही साथ उसके स्वभावमें स्थित हैं। उसके मानसिक असंयमकी विवेचना हम आगे चलकर करेंगे, यहाँ उसके व्यावहारिक संयमकी कुछ चर्चा आवश्यक है, परन्तु उसकी यह संयत प्रकृति जितनी उसके विवाह-पूर्व जीवनमें द्रष्टव्य है, उतनी उसके विवाहके बादके जीवनमें नहीं। उपन्यासके प्रारम्भिक परिच्छेदोंमें इस 'संयतवादिनी तरुणी' के 'शान्त और दृढ़ प्रतिवाद' उसके 'शान्त मृदु कण्ठ'से सुनकर सहसा चकित रह जाना पड़ता है। महिमके संबन्धमें नवागत सुरेशके बड़े-से-बड़े आक्षेपोंको वह चुपचाप सुन लेती है। तब सुरेश सोचता है, 'यह लड़की शिक्षामें, ज्ञानमें, उमरमें,—संभव है सभी विषयोंमें उसकी अपेक्षा छोटी है, फिर भी उसने इन कुछ ही क्षणोंकी बातचीतमें उसे जो इस क़दर पराजित कर दिया, सो सिर्फ़ असाधारण संयमके बलपर ही। इसीलिए वह इतनी शान्त होकर भी इतनी दृढ़, इतना जानकर भी इतनी नीरव है......एक क्षणके लिए भी चंचल होकर, बहस करके, कलह करके, अपनेको छोटा नहीं किया। बराबर अपनेको दमन किया है।' स्वल्पभाषिणी होनेसे उसकी धीरता और भी बढ़ जाती है। क्रोधका उसकी प्रकृतिमें अधिक स्थान नहीं, वह प्रारम्भसे ही क्षमाशील दिखाई देती है। एक दिन उसको और उसके पिताको सुरेशने जो बड़े तीव्र स्वरमें कठोर बातें सुनाई थीं, उनके लिए वह उसे हृदयसे क्षमा कर देती है। कलकत्तेमें आये हुए महिमकी बीमारीका समाचार सुनकर वह ज़रा भी चंचल नहीं होती। बड़े स्थिर चित्तसे वह सुरेशके घर जाकर अपने पतिकी परिचर्या करती है, परन्तु जैसा, कहा जा चुका है, अचलाकी यह व्यावहारिक स्थिरता उसके जीवनके पूर्वार्द्ध में ही है। विवाहके बादके मानसिक संघर्षके समय तो वह बहुत चिड़चिड़ी हो जाती है, बात-बात पर खीज उठती है। वैसे उसे अपने पितापर विशेष श्रद्धा नहीं है, पर जब सुरेश उनके संबन्धमें वृद्ध रामचरणसे कुछ चर्चा करता है तो वह अप्रत्याशित रूपसे क्रुद्ध हो जाती है। इसी प्रकार सुरेशकी बीमारीमें परिचर्याके लिए कभी वह आती

है, तथा कभी नहीं आती। वस्तुतः पति-परित्यागके बादसे उसके मनकी वृत्तियाँ उसके वशमें नहीं रह जातीं।

ब्राह्म होते हुए भी धर्म-सहिष्णुताका अचला परित्याग नहीं करती। यत्र-तत्र उसकी वाक्पटुता और व्यावहारिकताका भी हमें आभास मिलता है। उसके चरित्रके ये गुण उसे एक भद्र महिला ठहराते हैं। वृद्ध एवं अनुभवी रामबाबू भी सोचते हैं, 'वह वास्तवमें भद्र महिला है। अपनी किसी भी सहूलियतकी खातिर वह हरगिज़ झूठ नहीं बोल सकती।' वैसे अचलाकी पितृभक्ति कम नहीं है, पर केदारबाबूकी मानसिक दुर्बलताओंसे परिचित होनेपर, वह उनपर अश्रद्धा करने लगती है। इस प्रकार जीवनके बाह्य और ऊपरी उपकरणोंको लेकर अचलाकी भद्रताके संबन्धमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। पर जब हम उसके मनस्तत्त्वकी सूक्ष्म परीक्षा करते हैं तो वहाँ उसकी कमज़ोरियोंका ही अधिकार दिखाई देता है। अचलाके मनको यदि मानसिक दौर्बल्यके प्रतीक मनोविकारोंका रंगस्थल कहा जाय तो कदाचित् अत्युक्ति न होगी। पर यह निर्विवाद है कि उसके मनकी भद्रताने, चाहे वह कितनी ही कम क्यों न हो, उसके जीवनको अधिकाधिक निर्बल एवं अशक्त बना दिया है। इस भद्रताके कारण, अथवा इस भद्रताके 'आचरण' के कारण ही, वह सुरेश और महिम दोनोंमें-से किसीको भी सन्तुष्ट न कर सकी ऐसा कहना आंशिक रूपसे अवश्य ही सत्य है। उसकी मानसिक अस्थिरताके और भी कई कारण हैं, पर उनमें-से एक यह भी है।

अचलाके हृदयमें परस्परविरोधी भावोंकी स्थिति बड़े आश्चर्य-जनक रूपसे है। एक ओर मनकी वह इतनी अस्थिर और चंचल है, पर दूसरी ओर उसके व्यक्तित्वकी दृढ़ता भी दर्शनीय है। अपने पिता एवं सुरेशकी इच्छाके विरुद्ध वह महिमको उसके प्लेग-ग्रस्त मित्रके घर जानेसे आग्रहपूर्वक रोकती है। इस संबन्धमें सुरेशके यह पूछनेपर "इसमें अब किसी तरहका परिवर्त्तन संभव नहीं ?" वह स्पष्ट एवं निर्भीक स्वरमें सिर हिलाकर संक्षिप्त उत्तर देती है, "नहीं"। इस दृढ़ताकी पृष्ठभूमिमें कहीं-कहीं उसका

हठ भी वर्त्तमान है। पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि अचलाके चरित्रकी यह दृढ़ता उसके लिए स्वाभाविक नहीं है। जब किसी मानसिक संघर्षसे वह बहुत पीड़ित हो उठती है, तब भावावेगमें शीघ्र ही वह अविचलित होकर किसी भी निष्कर्षपर पहुँच जाती है। इस प्रकार उसके मनकी अस्थिरता ही उसके चरित्रमें यत्र-तत्र मिलनेवाली दृढ़ताका मूल-स्रोत है। महिम और सुरेशको लेकर जब उसका रागात्मक द्वन्द्व अपनी चरम सीमापर पहुँच जाता है तो वह महिमको बुलाकर उसके दाहिने हाथमें अपनी अँगूठी पहना देती है। वह कहती है, "शरमानेके लिए अब मेरे पास समय नहीं है.....अब मुझसे सोचा नहीं जाता। अब तुम्हें जो कुछ करना हो, करना।" किन्तु पति-परित्यागके उपरान्त उसने जो लज्जा, ग्लानि एवं अपार मानसिक संतापके भारको सिरपर उठाकर अपनी सहनशीलता दिखाई है, वह अनुपम है।

विषम परिस्थितियोंमें अपनेको उनके अनुकूल बना लेनेकी क्षमता अचलामें है। कथानकके प्रारम्भमें सुरेशसे असन्तुष्ट होते हुए भी पिताकी आवश्यकताको देखकर वह उसका ऋण स्वीकार कर लेती है। पितृ-गृहमें नितान्त अभिजात्य वातावरणमें पलनेके उपरान्त जब वह महिमके साथ अपनी ससुरालके टूटे-फूटे मकानमें पहुँचती है तो वह किसी-न-किसी प्रकार अपनेको वहाँकी ग्रामीणताके अनुकूल बना लेती है। अचलाके चरित्रमें बुद्धिका पर्याप्त विकास हो चुका है। सुरेश और मृणालका विवाह कर वह अपनेको दोनोंसे संबंधित ग़लतफ़हमियोंसे मुक्त करना चाहती है। सुरेश-से वह कहती है, "आपके समक्ष मैं असंख्य ऋणोंसे ऋणी हूँ। इसके सिवा मैं आपकी हिताकांक्षिणी भी हूँ। आपको मैं स्वस्थ स्वाभाविक गृहस्थके रूपमें देखना चाहती हूँ। एक दिन आप ब्याह करनेको तैयार थे; आज मेरा विशेष अनुरोध है कि आप इसे स्वीकार करें।" अचलाके इस प्रस्तावसे स्पष्ट है कि वह किस प्रकार एक ही तीरमें दो निशाने मारना चाहती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि सुरेश इस प्रस्तावको स्वीकार कर लेता तो कदाचित् 'गृहदाह' के कथानककी गतिविधि ही बदल जाती। उस

दशामें न स्वयं अचला मृणालके कारण महिम पर सन्देह कर सकती, और न महिम ही सुरेशके कारण अचलापर सन्देह कर पाता।

उपन्यासमें अचला मुख्य रूपसे महिम, सुरेश तथा मृणालसे संबन्धित है। उसके चरित्रका विकास इन्हीं तीनों व्यक्तियोंके संपर्कके कारण होता है। महिमके लिए उसके हृदयमें नैसर्गिक प्रेम है। सुरेशके विवाह संबंधी प्रथम प्रस्तावको वह स्पष्ट रूपसे अस्वीकृत कर देती है, क्योंकि अनन्य भावसे वह केवल महिमको ही चाहती है तथा उसीके हाथमें विवाहके प्रस्ताव-स्वरूप वह अपनी अँगूठी पहनाती है। ईर्ष्याग्रस्त सुरेश जब महिमको अपने साथ एक मित्रको देखनेके लिए प्लेगके क्षेत्रमें ले जाना चाहता है, तो वह दृढ़तापूर्वक इसका विरोध करती है। जबलपुर जाते समय ट्रेनमें उसे महिमकी ही चिन्ता रहती है, सुरेशकी नहीं। और जब सुरेश उसे छलपूर्वक महिमसे अलग कर देता है तो वह अत्यन्त विकल हो जाती है। यहाँतक कि वह सुरेशके ऊपर उसे मारने तकका आक्षेप लगा देती है, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि महिमकी उदासीनताने उसे उसके प्रति विमुख कर दिया है। गाँवसे तो वह महिमसे असन्तुष्ट होकर चली आई थी, फिर कभी न जानेके लिए! उसके मस्तिष्कमें बार-बार यह विचार आता है कि वह महिमसे प्रेम नहीं करती और एक बार महिमके सम्मुख ही इस तथ्यको वह प्रकट भी कर देती है। महिम और अचला वस्तुतः एक दूसरेको प्यार करते हुए भी क्रमशः सुरेश और मृणालके कारण एक दूसरेके निकट नहीं आ पाते। महिम यदि अचलाके प्रस्तावको मानकर उसे किसी पश्चिमके शहर ले जाता, जहाँ सुरेश और मृणाल दोनों उससे दूर रहते, तो उनके प्रेम-का ऐसा दुःखद अन्त न होता। वस्तुतः महिम और अचलाके बीच सुरेश ही ऐसी ऊँची दीवार है, जिसके कारण वे एक-दूसरेसे मिल नहीं पाते। सुरेशकी मृत्युके उपरान्त अचला महिमका हाथ पकड़कर कहती है, "अब मैं कमज़ोर नहीं हूँ, तुम्हारा हाथ पकड़कर जितनी दूर कहो, जा सकूँगी।" पर तब तक तो महिम और अचला एक दूसरेसे इतनी दूर हो गये हैं कि एकदम निकट रहते हुए भी वे परस्पर नहीं मिल सकते। यद्यपि यह

सच है कि 'इस लड़कीको केन्द्र करके उसके (महिम के) जीवनके ऊपरसे जो तूफ़ान बह गया है, वह प्रलयकी तरह असीम है, उसकी कोई उपमा नहीं।'

महिमके प्रति नैसर्गिक प्रेम रखती हुई भी, अचला सुरेशकी ओर कम आकर्षित नहीं है। पिताकी इच्छा होनेपर भी यद्यपि वह पहले सुरेश द्वारा किये गये विवाहके प्रस्तावको अस्वीकृत कर देती है, पर बादमें कुछ तो महिमकी उदासीनताके कारण और कुछ सुरेशकी प्रकृतिके कारण, वह सुरेशसे भी अपनेको अलग नहीं कर पाती। एक बार वह जब सुरेशके साथ विवाहके लिए प्रस्तुत हो जाती है तो केवल विवश होकर ही। वस्तुतः अचलाके प्रथम यौवनकी प्रथम उमंगोंका एकमात्र अधिकारी महिम ही है। प्रारम्भमें वह महिमसे प्रेम करती है और सुरेशके प्रति श्रद्धालु है। सुरेशसे बीचमें असन्तुष्ट हो जानेपर भी वह उसकी दया एवं निर्भीकतापर गर्व करती है। महिमकी पत्नी बन जानेपर भी अचलाके अवचेतनमें सुरेशके प्रति प्रेम बराबर छिपा रहता है। ज्यों-ज्यों वह उसे असत्य एवं मिथ्या समझने-का प्रयत्न करती है, त्यों-त्यों वह और भी प्रबल होता जाता है। सुरेशके बार-बार यह पूछनेपर कि महिमके साथ वह दुखी तो नहीं है, एक बार उसके मुँहसे निकल ही पड़ता है—"मैं क्या पत्थर हूँ सुरेश बाबू ?" इस प्रकार वह बता देती है कि इस संबंधमें उसकी सहनशीलता असाधारण नहीं है। इसके उपरान्त जब छलपूर्वक सुरेश अचलाको महिमसे अलग कर देता है, तब वह निश्चित रूपसे सुरेशपर अश्रद्धा करने लगती है। पर अब तक समयके झँकोरोंमें उसका सुरेशके प्रति प्रेम इतना पुष्ट हो चुका है कि वह उसे छोड़ नहीं पाती। डेहरीमें रहते समय उसकी सेक्स संबंधी शारीरिक एवं मानसिक अतृप्ति उसे उसकी इच्छाके विरुद्ध, सुरेशके प्रति अधिकाधिक निकट लाती है। कथानकके अंततक पहुँचते-पहुँचते उसका सुरेशके लिए प्रेम दयामें परिणत हो जाता है। सुरेशका परित्याग वह किसी भी समय नहीं कर पाती, किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि अचला 'बड़ी—बहुत बड़ी' तभीतक है, जबतक वह महिमसे संबंधित है। महिमको छोड़ देनेसे कदाचित्

उसकी सारी महिमा चली जाती है। सुरेश तो उसके हृदयकी शायद सबसे बड़ी दुर्बलता है।

अचलाका मृणालसे संबंध ईर्ष्यामूलक है। बार-बार मज़ाक़में कहनेपर अचला मृणालको सचमुच ही सौत समझ लेती है। पहली बार भेंट होने पर वह मृणालपर सपत्नी भावसे संदेह करती है। यद्यपि वह मनको समझाती है, "इसमें वास्तवमें मज़ाक़के सिवा और कुछ भी नहीं, जी ख़राब करनेकी कोई ऐसी बात नहीं,—मेरा मन ही अपवित्र है" पर इससे उसका संशय दूर नहीं होता। अंततः वह इसी निर्णयपर पहुँचती है, 'इतने दिनों तक एक गृहस्थीमें रहकर कोई पुरुष इस स्त्रीको बग़ैर प्रेम किये कैसे छोड़ सकता है?' किंतु इतना होनेपर भी मृणालका सरल स्वभाव उसे मुग्ध किये बिना नहीं रहता।

ऊपर हमने अचलाके मनको विभिन्न मनोविकारोंका शाश्वत रंगस्थल कहा है। उसके चरित्रके बाह्य उपकरणोंकी परीक्षा करनेके उपरांत अब हम बहुत संक्षेपमें उसके मनस्तत्त्वका सूक्ष्म अन्वीक्षण करेंगे। कुछ तो अपने अस्थिर हृदय और कुछ परिस्थितियोंके प्रभावसे अचलाका प्रेम सुरेश और महिम दोनोंकी ओर ही खिंचता हुआ दिखाई देता है। इस संबंधमें एक मत यह भी हो सकता है कि अचला कदाचित् इतनी सीधी, इतनी भली है कि अपने दो प्रेमियोंमेंसे वह किसीको असंतुष्ट नहीं करना चाहती। इस नीतिके फलस्वरूप ग़लतफ़हमीका जन्म होता है, और यह ग़लतफ़हमी, यह पारस्परिक विश्वासका अभाव ही मानव-जीवनकी भयानकतम ट्रैजडी-का मूल स्रोत है। अस्तु, अचलाके मनमें आदिसे लेकर अंततक एक रागात्मक संघर्ष विद्यमान रहता है। इस संबंधमें वह महिमको अपनी सफ़ाई भी देना चाहती है, पर अपनी हठवादिताके कारण वह उसे सुनना नहीं चाहता। इससे अचलाका अंतःकरण और भी शुद्ध नहीं हो पाता। अपने जलते हुए घरमें जानेसे वह सुरेशको भी रोकती है और महिमको भी। महिम नहीं मानता पर सुरेश रह जाता है। और यह घटना ही मानो प्रतीक रूपसे 'गृहदाह' की मूल संवेदना हो जाती है।

अचलाके मनका प्रेममूलक संघर्ष उसके व्यक्तित्वमें घोर अशांतिको जन्म देता है। सुरेशके घरमें महिमकी परिचर्या करते समय उसे स्पष्ट दिखाई देता है कि 'कोई कहीं उसे उठते-बैठतेमें काँटा-सा चुभा रहा है।' जबलपुर जाते समय उसकी चित्त-वृत्तियाँ और भी अस्थिर हो जाती हैं। ट्रेनमें अपने कटु व्यवहारके लिए क्षमा माँगती हुई वह वीणापाणिसे कहती है, 'मेरा मन ख़राब रहता है।' अचलाके मुखसे निकला हुआ यह छोटा-सा वाक्य उसकी मानसिक यंत्रणाका यथार्थ परिचायक है। वह अनुभव करती है 'मानो गाढ़ अंधकारने उसके आदि-अंतको पूर्ण-रूपसे निगल लिया है। प्रकाशका चेहरा,—आनंदका मुँह अब वह कभी देखेगी ही नहीं, इससे इस जीवनमें अब उसे मुक्ति मिलेगी ही नहीं।' गहरी पीड़ासे दुखी होनेपर उसकी भगवान्‌में आस्था भी कुछ डिगने लगती है, जिसने उसके यौवनके प्रथम आनंदको असत्यसे इस प्रकार विकृत कर दिया है। वृद्ध रामबाबूको स्पष्ट दिखाई देता है कि 'इसके मनमें कोई एक भयानक वेदना भट्ठीकी आगकी तरह दिन-रात जल रही है।'

अचलाके मनमें ईर्ष्या, क्रोध और गर्वकी भावना भी यथास्थान उपस्थित हैं। इन सबका मिला-जुला स्वरूप हमें उस समय दिखाई देता है जब वह सुरेशके मुखसे मृणालके सतीत्वकी प्रशंसा सुनकर कहती है, "संसारमें सिर्फ़ मृणाल ही एकमात्र सती नहीं, सुरेश बाबू, ऐसी भी सती मौजूद हैं, जो मन-ही-मन एक बार किसीको पति-रूपमें वर लेती हैं तो फिर हज़ारों लाखों प्रलोभन दिखानेपर भी उन्हें डिगाया नहीं जा सकता।" किंतु अपने संबंधमें अचलाकी यह गर्वोक्ति सच नहीं उतरती और उसे अपने यौवनका सबसे मादक समय डेहरीमें रहकर असत्य एवं लज्जाकी छायामें बिताना पड़ता है। यह सच है कि अचलाको अपनी भूलोंका पश्चात्ताप है, उसे आत्मग्लानि भी है, किंतु उसका चरित्र इतना सशक्त नहीं कि वह असत्‌को छोड़कर सत्‌की ओर बढ़ सके। अपने रुग्ण पतिकी परिचर्या करके एक बार उसका अंतःकरण नितांत शुद्ध और 'गंगाजलकी भाँति निर्मल और पवित्र' हो जाता है, किंतु इतने पर भी उसके मनकी विकृति उसे पतनकी

ओर ही ले जाती है। जब महिम उसे डेहरीमें सुरेशके साथ देखता है, उस समय तो वह अपनी मृत्युकी कामना करती है, पर इसके बाद भी वह सही रास्तेपर नहीं आ पाती। वस्तुतः अचलाके प्रेममें त्यागसे अधिक भोग है। मरणासन्न सुरेश महिमसे ठीक ही कहता है, "उसका प्रेम तुम्हारी ग़रीबीके साथ ऐसी उलझनमें पड़ गया कि,—खैर जाने दो। ऐसी सुंदर चीज़को मैंने मिट्टीमें मिला दिया,—न तो खुद पा सका न दूसरेको पाने दिया।"

अचलाके वैवाहिक जीवनको लेकर काफ़ी विचार-विमर्श किया जा सकता है। अपनी पति-भक्तिपर उसे झूठा विश्वास है और यही उसके पतनका मूल कारण है। एक-आध बार वह परिस्थितियोंके चक्रसे निकलनेका यत्न भी करती है, परंतु तब सुरेश उसका पीछा नहीं छोड़ता। पर इसमें कोई संदेह नहीं कि उसका पति-प्रेम इतना सबल नहीं है कि वह उसे सुरेशके आकर्षणसे मुक्त कर सके। वह स्वयं सोचती है कि 'उसका विवाहित जीवन पतिके साथ एक तरहसे विरोधमेंसे ही गुज़रा है।' पहले केवल उसका मन व्यभिचारी था, बादमें उसका शरीर भी वैसा ही हो गया। इसीलिए वृद्ध रामचरण तथा वीणापाणिके सरल तथा निष्कपट व्यवहारकी तुलनामें असत्य एवं लज्जाकी छायामें पलनेवाली अचलाकी जीवनचर्या और भी भयानक, अशांत दिखाई देने लगती है।

सुरेश अचलाको एक स्थानपर 'गणिका' कहता है। क्या सचमुच ही वह मानसिक रूपसे गणिका नहीं है? उसकी व्यभिचार-बुद्धिने ही उसे इतना दुर्बल, इतना दयनीय बना दिया है। वस्तुतः मनोविज्ञानकी दुहाई देकर साहित्य एवं समाजके आदर्शोंको खंडित नहीं किया जा सकता, क्योंकि मनुष्य मूलतः पशु है और इसीलिए उसकी सहज वृत्तियाँ (instincts) पाशविक अधिक हैं। प्रेमकी अस्थिरता संभवतः इसी प्रकारकी सहज-वृत्ति है जो मनुष्यको अपनी आदिम प्रकृतिमें मिली है। मनोविज्ञानके सिद्धांतोंके अनुसार जब व्यक्ति किसी एक पदार्थपर ८–१० सेकेंडसे अधिक अपना ध्यान एक बारमें नहीं जमा सकता तो ऐसी परिस्थितियोंमें एकनिष्ठ

प्रेमकी सत्तापर अविश्वास करना स्वाभाविक ही है। पर यहाँ हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इस प्रकारकी मनोवृत्ति मानव-समाजके लिए कोई बहुत स्पृहणीय एवं गर्व करनेकी वस्तु नहीं है। अपनी आदिम प्रकृतिमें मनुष्य बड़ा कठोर और बर्बर है; वह मूलतः पशु ही है। किंतु परिष्कारके द्वारा हम हैवानसे इंसान बनते हैं। इस परिष्कारके अभावमें 'आहार, निद्रा, भय' आदि से संयुक्त मनुष्य और पशुमें अंतर ही क्या है? पशु किसी वस्तु अथवा व्यक्तिके साथ अपना अपेक्षाकृत स्थायी रागात्मक संबंध नहीं जोड़ सकता। पर इस सहज-वृत्तिसे ऊपर उठकर मनुष्यमें भावनाका भी समावेश है। अतः मनोविज्ञानके आधारपर प्रेमकी अस्थिरताको मानव-जीवनका सत्य नहीं माना जा सकता। ऐसा जान पड़ता है कि मनोविज्ञान-का सत्य एक है, और समाजका सत्य दूसरा।

अचलाके व्यक्तित्वमें एकनिष्ठ प्रेमका अभाव है। मनकी अस्थिरता उसके चरित्रकी प्रमुख समस्या है। इस समस्याके मूलमें कई कारण हैं, जिनमें-से दो प्रमुख हैं। एक तो उसकी प्रकृति, उसका मनोविज्ञान असाधारण रूपसे अस्थिर प्रकृतिका है। दूसरे वह अपनी इस दुर्बलताको सामाजिक नैतिकताके नियंत्रणमें भी नहीं रखना चाहती। जीवन-मरणमें सिर्फ़ एक ही को अनन्य गति समझकर चिंता करने लायक उसका सीमाबद्ध मन नहीं है। वह मन एक पतिके जीवनकालमें ही दूसरेको पति कहनेमें अपराधके भारसे चाहे कितना ही पीड़ित क्यों न हो, लज्जा और अपमान-की ज्वालासे चाहे कितना ही क्यों न जल रहा हो, परंतु धर्म और परलोक-की गदा उसे धराशायी करनेका भय नहीं दिखा सकी। ब्राह्म-समाजकी स्वच्छंद प्रवृत्तियाँ उसकी रागात्मक अस्थिरताको और भी प्रश्रय देती हैं। इस सामाजिक नियंत्रणके अभावमें तो शायद संसारके सारे स्त्री-पुरुषोंका मनोविज्ञान व्यभिचारी हो जाता, और इसीके कारण अचलाके व्यक्तित्व-में अन्नदा जीजीका वह सतीत्व, वह एकनिष्ठ प्रेम नहीं है, जिसके कारण शरत् कभी नारीके कलंकपर विश्वास नहीं कर सके तथा नारी जातिको कभी छोटा करके नहीं देख सके। पर इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रेमकी इस

अस्थिरतामें व्यक्तिके मानसिक संस्थानका बहुत बड़ा हाथ है, और यह निश्चित है कि अचलाका मानसिक संस्थान दृढ़ एवं सबल न होकर अपेक्षाकृत अस्थिर एवं निर्बल है। इसीलिए आदि-से-अंततक वह स्वयं अपनी भावनाओंको नहीं पहचान पाती। मानसिक विकारोंका कोलाहल उसके व्यक्तित्वमें इतना अधिक है कि वह अपनी आत्माकी आवाज़ नहीं सुन सकती। तभी उसका हर क़दम ग़लत रास्तेपर पड़ता हुआ दिखाई देता है। अचलाके चरित्रका अध्ययन हमें आशु बाबूके प्रसिद्ध वाक्यका स्मरण दिला देता है, 'स्रोतके खिंचावसे कौन कब पास आ जाता है और कौन कब दूर चला जाता है, इसका कुछ भी हिसाब कोई नहीं जानता।' इस दिशामें 'शेष-प्रश्न' की कमल और 'गृहदाह' की अचला काफ़ी मिलती-जुलती हैं। पर उनमें एक सुस्पष्ट अंतर है। अपनी बौद्धिकताके कारण जहाँ कमलको इतना ध्यान रहता है कि किस समय वह किसे प्यार कर रही है, वहाँ अपनी भावात्मकतामें अचला शायद अंततक स्वयं ही यह नहीं समझ पाती कि वह महिमको अधिक प्यार करती है या सुरेशको।

अचलाकी व्यभिचार-बुद्धिका एक कारण उसकी अत्यधिक भद्रता भी हो सकती है। वह एकाएक यह नहीं जान पाती कि किस प्रकार सुरेशको निराश कर वह महिमके पास चली जाय। वह सुरेशसे कहती है, "तुमने मेरा कुछ भी क्यों न किया हो, पर मैं अपने लिए तुम्हें मरने नहीं दे सकती।" यहाँतक कि बीमार सुरेशको घरतक लानेके लिए एक डोली मिलनेपर वह अपना सर्वस्वतक देनेको तैयार है। वस्तुतः अचलाकी आत्मा एकदम मर ही नहीं गई है; पतनोन्मुख होते हुए भी वह ऊपर उठनेकी कोशिश करती है। और भलाई-बुराईके बीच यह कश-म-कश ही 'गृहदाह' की ट्रैजडीका मूल कारण है।

अचलाकी उक्त भद्रता सुरेशको किसी हदतक उसे ग़लतफ़हमीमें डालती है, उसे अपनी ओर आकर्षित करती है। इसीलिए सुरेश उसका पीछा नहीं छोड़ता। अचलाको पानेके लिए सुरेशके मनका यह धैर्य भी अचलाके चारित्रिक पतनका एक कारण माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त

अपने पतिको लेकर मृणालके प्रति अचलाकी ईर्ष्याका उल्लेख भी इस प्रसंगमें आवश्यक है।

अचलाकी मानसिक दुर्बलताका विश्लेषण करते समय हमें इस बातका ध्यान रखना पड़ेगा कि उसके चरित्रकी अस्थिरताको बढ़ानेमें महिमकी उदासीनताका भी हाथ है। उपन्यासकारके शब्दोंमें, 'महिमके प्रति अचलाको सबसे बढ़कर खीज यह थी कि स्त्री होकर भी वह एक दिनके लिए भी पतिकी दुःख-दुश्चिंतामें हिस्सा नहीं बँटा सकी थी।' वस्तुतः अचलाके चरित्रका पूर्वार्द्ध अर्थात् विवाह होने तकका समय तो महिमको ही अर्पित है। इसके बाद अपनी ससुराल पहुँचनेसे लेकर कथानकके अंततक उसके मनमें निरंतर संघर्ष व्याप्त रहता है। इस उत्तरार्द्धमें महिमकी अपेक्षा उसका हृदय सुरेशकी ओर ही अधिक झुका दिखाई देता है।

अचलाके चरित्रके इतने विश्लेषणसे स्पष्ट है कि उसकी चारित्रिक गहनता किसी भी व्याख्यासे कुछ कम नहीं की जा सकती। सुरेशके अनुसार वह 'एक आश्चर्यजनक चीज़' है। उसकी 'बात और चितवनका व्यवधान' उसे सदैव 'दुर्बोध्य' बनाये रखता है। उसकी दुर्बोध्यता इतनी अधिक है कि अपने प्यारको वह शायद स्वयं भी नहीं समझ पाती। उसका मन इतना जटिल है कि उसके अनुसार, स्वयं अंतर्यामी भी उसे नहीं समझ पाये। वह कहती है, "हे अंतर्यामी, मेरे दुर्भाग्यसे तुम भी समझनेमें ग़लती कर गये। इस हृदयके अंदर हमेशासे क्या हो रहा है, सो क्या तुम्हारी दृष्टिमें भी नहीं पड़ा?" उक्त उद्धरणके पश्चात् इस विषयमें कुछ भी कहना अब अनावश्यक ही है।

'गृहदाह' में अचलाके उपरांत दूसरा प्रमुख चरित्र मृणालका है। जैसा हम अभी देखेंगे, उसके व्यक्तित्वकी गति-विधि ठीक अचलाकी विपरीत दिशामें है। अचलाके चरित्रके प्रमुख गुण हैं—व्यावहारिक संयम एवं मानसिक असंयम। मृणालके स्वभावकी विशेषता है व्यावहारिक असंयम एवं मानसिक संयम। इसके अतिरिक्त अचला जहाँ ब्राह्मसमाजी है, वहाँ मृणाल कट्टर हिंदू है। एक पति-सेवाको विशेष महत्त्व नहीं देती,

उसे धार्मिक दृष्टिकोणसे नहीं देखती, तो दूसरी पति-सेवाको ही अपना जीवन-सर्वस्व मानती है। एक प्रकारसे अचला और मृणालके चरित्रोंमें प्राकृतिक विरोध है। जिस क्षण अचलाको यह ज्ञात होता है कि मृणाल महिमको बहुत प्यार करती थी और अब भी करती है, उसी क्षण उसका मन महिमकी ओरसे फिर जाता है। इस तरहसे उनका प्रेम भी एक स्थानपर केन्द्रित नहीं हो पाता। अचला और मृणालकी प्रकृतिमें इस विरोधके कारण ही उन दोनोंकी चारित्रिक संवेदनाएँ और भी तीव्र हो उठी हैं।

मृणालके चरित्रकी मूल संवेदना है उसकी अटल पति-भक्ति। यह पतिभक्ति किन परिस्थितियोंसे घिरी हुई है, यह जान लेना भी आवश्यक है। जहाँ मृणाल विवाह करना चाहती थी वहाँ तो उसका विवाह हुआ नहीं, और इसके साथ-साथ अपने प्रथम यौवनमें उसे मिला साठ सालका वृद्ध पति। इन विषमताओंके बीच भी मृणालकी पतिभक्ति अविचलित रही, यह देखकर सहृदय पाठकका मस्तक श्रद्धासे नत हो जाता है। अपने स्वामीका मज़ाक बनाती हुई भी वह उनका पूरा-पूरा ध्यान रखती है। नियतिसे उसे जो कुछ मिला है वह उसीमें संतुष्ट है। अचलासे वह कहती है, "यह सिर्फ़ इसी जन्मका नहीं, भाभी, जन्म-जन्मान्तरका संबंध है। मैं जिनकी चिरकालकी दासी हूँ, उन्हींके हाथ भगवान्‌ने मुझे सौंप दिया है। आदमीके चाहने न चाहनेसे क्या आता-जाता है?" इस विश्वासके कारण ही वह अपने पतिपर किसी प्रकारका संदेह नहीं करती, और अचलाको भी इसी बातका उपदेश देती है। पतिकी मृत्युके उपरांत भी उसकी उनके प्रति श्रद्धामें कमी नहीं आती। बड़े शांत भावसे वह बताती है, "वे बूढ़े आदमी थे, दुनियामें वे ग़रीब थे, रूप और गुण भी उनमें साधारण पाँच जनोंसे ज्यादा नहीं था; पर वे ही मेरे लिए इहलोक थे और वे ही परलोक।"

मृणालके व्यक्तित्वमें विनोदप्रियता असाधारण रूपसे है। महिमको पानेमें असफलताकी भावना वह इसी विनोदमें व्यक्त करती है। इसके अतिरिक्त उसकी गार्हस्थिक जीवनकी बेबसी भी इसी मार्गसे बाहर निकलती है। नवविवाहित अचलाका मुंह देखकर वह महिमसे कहती है

"ना, तुम्हीं जीतमें रहे दादा ! मुझसे ब्याह करके ठगा जाते।" वह किसी समय महिमकी पत्नी होना चाहती थी, इस बातको वह बड़ी सरलतासे व्यक्त कर देती है। उसकी हँसीकी छटासे घर-भरमें उजाला हो जाता है। यहाँतक कि वह अपने पतिके सम्मुख भी हँसी-मज़ाक़ करनेसे नहीं चूकती। उनके सामने ही वह अचलासे कहती है, "ये ही मेरे मालिक हैं, दीदी। अच्छा, तुम्हीं बताओ न बहन, इन बहत्तर-साली बूढ़ेके साथ मैं अच्छी लगती हूँ? इस जनमका रूप-जोबन सब मिट्टी नहीं हो गया बहन?" इस प्रकार वह व्यंगविनोदके सहारे ही अपने विवश जीवनमें संतोष और सुखका संचार किया करती है, परंतु उसकी इस विनोदप्रियतामें उसके प्रथम यौवनकी निराशा छिपी हुई है।

मृणालकी प्रकृति एकदम गार्हस्थिक है। 'प्रतिकूलता मानो दुःख देकर इस मूर्ख स्त्रीको जीवन-यात्राके मार्गमें थकाकर बैठा नहीं सकती। गँवई-गाँवकी इस मूर्ख स्त्रीका ऐसा भाव है कि हृदयके आनंदके सिवा बाहरकी परिस्थितियोंका मानो उसके लिए कोई अस्तित्व ही नहीं.....यह बग़ैर पढ़ी-लिखी ग़रीब ग्राम्य लक्ष्मी भी सब तरहके सांसारिक दुःख-दारिद्रयकी गोदमें दिनरात रहते हुए भी सारी वेदना-यंत्रणाके ऊपर आरामसे उतरा रही है। न तो इसके शारीरिक थकान है और न मानसिक मलिनता।' रसोईके भंडारको वह गृहिणीके राज्यकी राजधानी मानती है। प्रारंभसे अंततक हम उसे 'कर्म-रत मौन' महिलाके रूपमें देखते हैं।

मृणाल अपने आचार-विचारमें बड़ी पक्की है। अपनी वृद्धा सासकी भावनाओंका ध्यान रखते हुए वह अचलाके हाथका बनाया हुआ भोजन नहीं करती। पर उसमें धार्मिक कट्टरता नहीं है, इसीलिए अचलाके ब्रह्म-समाजी पिताकी सेवा करनेमें वह कुछ भी संकोच नहीं करती। विवाहको वह एक पवित्र धार्मिक संस्था मानती है, और उसका यह धर्म और यह आचार-विचार वितर्कसे परेकी चीज़ है।

व्यवहार-पटु होते हुए भी मृणाल अत्यंत सरल है। अचलाका 'एकांत अमूलक द्वेष उसे काँटेकी तरह चुभा करता था।' वस्तुतः मृणालका

हृदय बहुत उदार है। उसमें सबके लिए स्थान है। उसका स्नेह सार्व-जनीन है। नितांत अपरिचित व्यक्तियोंसे वह बहुत शीघ्र घनिष्ट हो जाती है। सुरेशको भैया बनाते उसे देर नहीं लगती। जीवन-संग्राममें हारे हुए वृद्ध केदारबाबूको वह महीनों अपने यहाँ रखती है और उन्हें 'बापू' कह कर संबोधन करती है। उसे अपनी बुढ़िया सासका सदैव ध्यान रहता है। सबकी सेवा करना ही उसके जीवनका चरम ध्येय जान पड़ता है। अचलाके मनमें अपने प्रति ईर्ष्याका कुछ भी ख़याल न करके वह सदा उसकी शुभाकांक्षिणी रहती है। वह हृदयसे चाहती है कि अचला और महिमका पारस्परिक मनमुटाव मिट जाय। इसके लिए वह पत्र लिखकर उसे बार-बार समझाती है, और सही रास्ता दिखानेकी कोशिश करती है।

मृणालने किसी समय महिमको पतिरूपमें चाहा था, किंतु उसमें असफल होनेपर उसके मनमें किसी कुंठा अथवा विकृतिको जन्म नहीं मिला। वह सदैवकी भाँति सरल और विनोदप्रिय रहती है। महिमने उसके जीवनको बहुत प्रभावित किया है। उसकी दी हुई शिक्षाका सादर उल्लेख करती हुई वह केदारबाबूसे कहती है, "क्षमाका फल क्या सिर्फ़ अपराधीको ही मिलता है? जो क्षमा करता है उसे क्या कुछ भी नहीं मिलता, बाबूजी?" इस ईर्ष्या-द्वेष-हीन जीवनका स्मरण कर कोई भी व्यक्ति अपने मनको पवित्र कर सकता है।"

अपने उक्त सारे गुणोंके फलस्वरूप, शरत्के प्रतिनिधि नारी-पात्रोंकी प्रभविष्णुता मृणालको भी उत्तराधिकारमें मिली है। प्रथम भेंटके समय अचला तो इसे किसी प्रकार छोड़ना ही नहीं चाहती। उसके अनुसार 'मृणाल जीजी' दूसरोंको वशमें करनेवाला कुछ जादू जानती हैं। वृद्ध केदारबाबू दक्ष एवं निपुण मृणालको 'अद्भुत और अपूर्व' कहकर संबोधित करते हैं। उसकी जीवन-चर्चासे वे इतने प्रभावित होते हैं कि स्वयं ब्रह्मसमाजी होने पर भी वे संध्या-पूजा करनेकी सोचते हैं। उसीके व्यक्तित्वके प्रभावसे वे अचला, सुरेश, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, जो कोई जहाँ भी हो, सबको क्षमा कर देते

हैं। पर इतना सब होते हुए भी मृणाल कभी अपनी प्रशंसा नहीं सुनना चाहती।

'गृहदाह' के कथानकमें राक्षसी अथवा वीणापाणिका स्थानीय महत्त्व है। वह आचार-शील एवं पति-गर्विता रमणी है। अचलासे वह कहती है, "हम सब सेवाके काममें दासी हैं तो क्या सभी काममें दासी हैं? हुकम देनेके समय तो हम ही लोग मालकिन हैं।" अपने गुरु-जनोंकी सेवा और मर्यादाका उसे पूरा ध्यान रहता है। वह बड़ी चतुरतासे अचलाके मनोभावोंको समझ लेती है। इस पथ-भ्रष्ट रमणीकी वह हृदयसे हिताकांक्षिणी है।

उपन्यासके अन्य नारी-पात्र पार्श्व-चरित्र-मात्र हैं। स्नेहमय सुरेशकी बुआजी और हरियाकी माँ का यत्र-तत्र उल्लेख भर है। वस्तुतः इतने बड़े कथानकमें भी अकेले अचलाकी चारित्रिक संवेदना अंकित करनेमें उपन्यास-कारको कठिनाईका अनुभव हुआ होगा। इस रहस्यमयी रमणीके गहन व्यक्तित्वके कारण ही, मृणालको छोड़कर, 'गृहदाह' में किसी अन्य नारी पात्रका चरित्र अधिक न उभर सका, और ऐसा होना नितान्त स्वाभाविक ही नहीं वरन् आवश्यक भी है, अन्यथा कई चरित्रोंमें उलझकर उपन्यासके मूल चरित्रकी संवेदना कुछ फीकी पड़ जाती।

ब्राह्मणकी बेटी

[वामुनेर मेये]

●

वामुनेर मेये' शरत्के रचना-कालके उत्तरार्द्धमें प्रणीत एक लघु उपन्यास है। अपने संक्षिप्त कलेवरमें इसका कथानक अत्यंत शक्तिशाली है। यह लेखककी उन रचनाओंके अंतर्गत आता है, जिसमें उसने व्यक्तिगत जीवनके घात-प्रतिघातों, मानसिक संघर्षों तथा रागात्मक गहराइयोंको कुछ दूर रखकर समाजके जघन्य, कुत्सित और वीभत्स अंगोंकी अत्यंत यथार्थवादी परीक्षा की है। समाजके सड़े-गले ढाँचेको लेखकने इस प्रकारके कथानकोंमें बड़ी ईमानदारीके साथ उभारा है। 'पल्ली समाज'में शरत् बाबूने गाँवोंकी कलह तथा ईर्ष्या-द्वेषका अंकन किया था; पर 'वामुनेर मेये'को हम समाजके व्यभिचारोंका चित्रपट कह सकते हैं।

नारी-चरित्रके अध्ययनकी दृष्टिसे भी 'वामुनेर मेये'का कुछ कम महत्त्व नहीं है। स्त्रीका जीवन एक क्षणकी असावधानीसे, किंचित् दुर्बलतासे कितनी आसानीके साथ सदैवके लिए कलंकित हो जाता है, यही कदाचित् इस उपन्यासकी मुख्य संवेदना है। कालीतारा और ज्ञानदा अपनी कमजोरीके कारण ही समाजकी दृष्टिमें तिरस्कृत और पतित हो जाती हैं। उन्हें सहानुभूति, दया अथवा करुणा नहीं मिलती, वरन् मिलता है कोप और निष्कासन। 'वामुनेर मेये'के एक अध्ययनसे स्पष्ट हो जाता है कि नारीके चारित्रिक पतनमें उसकी व्यभिचार-बुद्धिकी अपेक्षा उस समाजके फ़ौलादी पंजेका अधिक हाथ है, जिसने उसे उसकी प्रकृतिके विरुद्ध जकड़ रखा है।

हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकरसे प्रकाशित 'ब्राह्मणकी बेटी'के प्राक्कथनमें श्री नाथूराम प्रेमी लिखते हैं, "युग-प्रवर्त्तक महात्मा गांधीने गुजराती-साहित्य-

सम्मेलनके गत अधिवेशनमें सभापतिकी हैसियतसे कहा था—'साहित्यके लिए जब आप क़लम उठाइए तो यही सोचकर उठाइए कि स्त्रियाँ माताएँ हैं। इस विचारसे जब आप लिखेंगे तो आपकी क़लमसे स्त्रीके बारेमें जो कुछ निकलेगा, वह उतना ही सुंदर और फलप्रद होगा, जितने कि सुहावने आकाशसे बरसनेवाले बादल, जो पृथ्वीरूप स्त्रीको उपजाऊ बनाते हैं।'

"मालूम होता है कि स्वनामधन्य शरत्बाबूने महात्माजीके इस अनुरोधको अक्षरशः माना है और उन्होंने अपनी रचनाओंमें स्त्री-पात्रोंको इसी प्रकारकी भावनाओंसे चित्रित किया है। उनके हृदयमें स्त्रियोंके प्रति बहुत ही अधिक आदर-भाव है। उनकी लिखी हुई सारी रचनाओंको आप पढ़ जाइए, उनमें न तो कहीं आपको स्त्रियोंके शरीर-सौंदर्यका वर्णन मिलेगा और न अन्य किसी तरहकी अश्लीलता। एकबार उन्होंने स्वयं 'वंगवाणी'में लिखा था, 'आलिंगन तो दूरकी बात है, चुम्बन भी मैं अपनी रचनाओंमें कहीं न लिख सका।' वास्तवमें शरच्चंद्र कुछ उस ढंगके साहित्यकारोंमें हैं, जिन्हें अंग्रेजीमें 'प्यूरिटन' कहते हैं। उनके अधिकांश नायक-नायिका सर्वदा ही यौन-मिलनसे दूर रहे हैं, उनका प्रेम बहुत ही संयत और बहुत ही त्यागमय चित्रित हुआ है। वे सचमुच ही स्त्रियोंमें मातृभावका ही विशेषरूपसे दर्शन करते हैं, और बाह्य सौंदर्यकी अपेक्षा उनके भीतरी सौंदर्यको ही महत्त्व देते हैं। इसीलिए शरत् बाबूकी क़लमसे जो कुछ निकला है, वह बहुत ही सुंदर और फलप्रद है।

"शरत् बाबू मातृ-जातिके प्रति समाजके अत्याचारोंको सहन नहीं कर सकते; परंतु, फिर भी, वे सुधारक नहीं हैं; वे सुधारकसे बहुत ऊँचे हैं। वे कलाकार हैं। सुधारक केवल मनुष्यकी बुद्धिको अपील करता है; परंतु कलाकार उसके अंतर्तव्य निगूढ़ प्रदेशोंतकको हिला देता है। सुधारकका लक्ष्य मस्तक है, जब कि कलाकारका हृदय।"

ऊपरके लंबे उद्धरणसे स्पष्ट हो जाता है कि बहुत कुछ 'प्यूरिटन' होने पर भी शरत्में रोमांसकी कमी नहीं है, और एक सुधारकके कर्त्तव्यका

निर्वाह करते हुए भी वे अपनी प्रकृत कलासे कहीं दूर नहीं हटे हैं। 'वामुनेर मेये' उनकी इस कलाकी सामाजिकताका अच्छा उदाहरण है।

'वामुनेर मेये'की कथा अत्यंत संक्षिप्त और सुलझी हुई है। निरीह और भोले-भाले डॉ० प्रियनाथकी पुत्री संध्या अपने बाल्य-सहचर अरुणके स्नेह-पाशमें बँधी है। पर उसे अपने वंशकी मर्यादाका बहुत अधिक ध्यान है। इसीलिए चाहते हुए भी वह नीची जातिके ब्राह्मण अरुणके साथ विवाह नहीं कर सकती। पुत्रीकी वयमें वृद्धिके साथ प्रियनाथकी पत्नी जगद्धात्रीकी चिंता बढ़ती जाती है। गाँवके जमींदार गोलोक चटर्जी संध्याके नानाकी उम्रके होते हुए भी उसके साथ विवाहका प्रस्ताव रखते हैं, जिसे वह अस्वीकृत कर देती है। अंततः ब्राह्मणकी बेटी संध्या कुलीनताकी वेदीपर बलि देनेके लिए प्रस्तुत हो जाती है। उसका विवाह एक ४५ वर्षके वरके साथ होना निश्चित होता है। पर यहाँ भी उसका दुर्भाग्य (अथवा सौभाग्य?) उसका पीछा नहीं छोड़ता। विवाह-मंडपमें उपस्थित होकर गोलोक चटर्जी एकाएक यह सिद्ध कर देते हैं कि संध्याके पिता डॉक्टर प्रियनाथ ब्राह्मण-पुत्र न होकर एक नाईकी संतान हैं। इस आकस्मिक दुर्घटनासे बचनेके लिए संध्या अरुणके घर जाकर प्रार्थना करती है कि वह वरके सूने आसनको ग्रहण करे। अरुण सहसा कुछ निश्चित नहीं कर पाता, और वह निराश घर लौट आती है। बादमें जब अरुण स्वयं संध्यासे विवाहका प्रस्ताव करता है तो वह अपने सरल-हृदय पिताके साथ वृन्दावन जानेके लिए प्रस्तुत है। बड़े संयम और शांतिके साथ वह कहती है, "उस दिन, मैं बड़ी उतावली हो गई थी अरुण भइया, पर आज मेरा भी मन स्थिर हो गया है। स्त्रियोंके लिए ब्याह करनेके सिवा दुनियामें और कोई काम है या नहीं, यही जाननेके लिए मैं बाबूजीके साथ जा रही हूँ।" ब्राह्मणकी बेटीके व्यक्तित्वमें इस निष्काम वृत्तिके आविर्भावके साथ-साथ उपन्यासका कथानक समाप्त हो जाता है।

'वामुनेर मेये'में कथाका प्रवाह और चरित्र-चित्रण एक-दूसरेके साथ संगुंफित होकर बड़ी कुशलताके साथ आगे बढ़ते हैं। दोनोंमें-से कोई भी

प्रधान अथवा गौण नहीं है। उपन्यास यदि एक ओर समाजके व्यभिचारोंका लेखा-जोखा है तो दूसरी ओर उसमें गोलोक चटर्जी, डॉक्टर प्रियनाथ, मृत्युंजय घटक, रासी ब्राह्मनी, संध्या और कालीताराके चरित्र भी बड़ी सजीवताके साथ अंकित किये गये हैं।

उपन्यासके नारी पात्रोंमें संध्या, रासमणि, जगद्धात्री, कालीतारा और ज्ञानदा प्रमुख हैं। इनके चित्रोंका निर्माण बहुत ही सूक्ष्म रेखाओंमें बहुत ही सावधानीसे हुआ है। उनकी व्यंजनात्मकता पाठकके निकट अविस्मरणीय है। संध्या उपन्यासकी नायिका है। उसके व्यक्तित्वकी विशिष्टता इस बातमें है कि वह एक साधारण युवतीके समान वासनाके आवेगसे प्रशासित नहीं होती, वरन् उसमें स्थिरता और संयमका ही आधिक्य है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि वह वंशके मिथ्या गौरवमें जकड़ी हुई है। प्रेमके सामान्य मानवीय धरातलपर वह नहीं आ पाती। इसके अतिरिक्त वह अपनी माँकी इतनी आज्ञाकारिणी है कि उनकी इच्छाके विरुद्ध वह अपने हृदयके रागात्मक आंदोलनको सशक्त होकर उभरने नहीं देती। फिर पिताके प्रति भी उसका कुछ उत्तरदायित्व है। वह भलीभाँति जानती है कि उसके निरीह बाबूजीकी देखभाल उसके बिना कोई नहीं कर सकता। इसलिए भी वह अरुणके प्रति अपने प्रणयको परिणयमें परिवर्त्तित नहीं कर पाती। पर इन सबके ऊपर, उसके हृदयमें कुछ ऐसी निष्कामता, ऐसी शांति है, जिसके कारण उसके व्यक्तित्वमें मांसका विद्रोह प्रबल नहीं हो सका है।

संध्याकी पितृभक्ति सचमुच ही असाधारण है। यौवनके आवेगमय क्षणोंमें भी वह अपने संन्यासी-सदृश पिताका ध्यान निरंतर रखती है। 'संध्याका पिता प्रियनाथ डॉक्टर एक अद्‌भुत पात्र है—बहुत ही सरल, भोला-भाला और स्वप्नसंचालित।' जगद्धात्री अपने पतिसे इसी कारण बहुत रुष्ट रहती है कि वह कभी घरमें नहीं बैठते और घरका धन परोपकार-में व्यय किये डालते हैं। ऐसी अवस्थामें संध्याका अपने पिताके प्रति सशक्त प्रेम इस निरीह प्राणीके लिए रक्षाके कवचका काम करता है।

अपने बाबूजीके विषयमें कोई अपमानजनक बात वह किसीके मुँहसे नहीं सुन सकती। इसके लिए वह रासी ब्राह्मनी और गोलोक चटर्जीको भी तीखी बातें कहनेमें नहीं डरती। उपन्यासकारके शब्दोंमें, "अपने इस निरीह पिताको दुनियाके सब तरहके आघातों, उपद्रवों और उपहास-परिहासोंसे बचानेके लिए मानो वह अपने दस हाथोंको बढ़ाकर ओटमें कर लेना चाहती है।" पिताके सुख-संतोषके लिए वह झूठ बोलनेमें भी नहीं हिचकिचाती। जगद्धात्रीके अनुसार, "पर उनके लिए तो तू अपने प्राण दिये देती है.....तू अच्छी तरह जानती है कि उनकी दवासे कुछ भी नहीं होता; फिर भी, तू जान देने बैठी है; और किसीकी दवा न खायेगी—कहीं उन्हें शर्मिन्दा न होना पड़े।" इस प्रकार संध्या वस्तुतः 'बाप सुहागिन' है। वृन्दावन जाते समय वह उनसे कहती है, "पर मैं तो तुम्हें अकेला नहीं रहने दूँगी बाबूजी, मैं तुम्हारे साथ चलूँगी।" और अंतमें वह सब कुछ छोड़-छाड़कर, प्रेमकी सहज भावनासे भी ऊपर उठकर, निरीह पिताके साथ वृन्दावनकी यात्राके लिए चल देती है। उसका सारा माया-मोह उन्हींपर केन्द्रित हो जाता है।

संध्याका व्यक्तित्व अत्यंत निर्मल होनेके कारण उसमें आत्माभिमान और स्पष्टवादिता जैसे गुणोंका बड़ा स्वाभाविक मिश्रण हुआ है। रासमणि जैसी कलह-पटु स्त्रीको वह अपनी माँकी 'मानी हुई मौसी' कहकर, उसका तिरस्कार करती है। यहाँतक कि गाँवके ज़मींदार गोलोक चटर्जीको भी मुँहतोड़ उत्तर देनेमें वह नहीं डरती। कठोर शब्दोंमें उनसे वह कहती है, "पसंद क्यों न आओगे बाबा? बाँस और रस्सीके रथपर सवार होकर इधर ही से तो निकलोगे, मैं माला गूँथके तैयार खड़ी रहूँगी तब!" (इस एक वाक्यके तीखेपनका बदला लेनेके लिए ही तो गोलोक चटर्जीने बादमें विवाह-मंडपसे संध्याके पतिको बिना ब्याह किये ही उठवा लिया था।) और अपने आत्माभिमानके कारण ही वह अपने मुँहमाँगे वर अरुण-द्वारा रखा हुआ विवाह-प्रस्ताव अस्वीकृत कर देती है।

संध्याके चरित्रका विश्लेषण करते समय एक बातका ध्यान हमें विशेष-रूपसे रखना पड़ेगा, और वह यह कि अपने व्यक्तित्वमें तीव्र होते हुए भी

यह नवयुवती किरणमयी, अभया अथवा कमलके समान प्राचीन परंपराओं-का तिरस्कार नहीं करती। माँ-द्वारा बताई हुई धार्मिक रूढ़ियोंका वह चुप-चाप पालन करती है। इस संबंधमें वह उनकी पूर्णरूपसे आज्ञाकारिणी है। समाजमें प्रचलित मान्यताओंके अनुरूप ही उसके मनमें मिथ्या वंश-गौरव बसा हुआ है। अपने प्रणय-पात्र अरुणको प्राप्त करनेके लिए भी वह इन प्राचीन परिपाटियोंके बंधनसे मुक्त नहीं होना चाहती। प्रथम प्रेमकी निराशा उसे स्वीकार है, पर वंश-मर्यादाका वह उल्लंघन नहीं कर सकती। वह अरुणसे कहती है, "आभाससे, इशारेसे, तुम्हें कितनी बार जताया कि ऐसा हरगिज़ नहीं हो सकता। फिर भी, तुम्हारी भिक्षाकी जबर्दस्ती किसी भी तरह खतम नहीं होना चाहती थी। बाबूजी राज़ी हो सकते हैं, माँ भी भूल सकती हैं; पर, मैं तो नहीं भूल सकती कि मै कितने बड़े ब्राह्मणकी लड़की हूँ।" वंशके झूठे गौरवकी रक्षाके लिए अपने प्रेमका उत्सर्ग करने-वाली शरत्की यह नायिका अपने वर्गमें कदाचित् अकेली है।

व्यक्तित्वकी दृढ़तामें संध्या, किरणमयी अथवा अभयाके समान ही है। परदेश जानेके लिए उद्यत अरुणको जब जगद्धात्री अपने पास बुलाकर सम-झाना-बुझाना चाहती है तो बड़े कठोर शब्दोंमें संध्या कहती है, "नहीं, तुम इस मकानमें उन्हें हरगिज नहीं बुला सकतीं..........हमारे साथ उनका क्या संबंध है जो तुम कहने जाओगी ? इस मकानमें अगर तुमने उन्हें बुलाया माँ, तो मैं तुम्हारी ही क़सम खाकर कहती हूँ, उस तालाबमें जाकर डूब मरूँगी।" यह उसके भीतरी प्रणयका अभिमानके रूपमें प्रकट हुआ विस्फोट है। इसका प्रमुख कारण है उसकी स्थिर बुद्धि और आत्म-संयम। इसके अतिरिक्त इन पंक्तियोंसे यह भी स्पष्ट है कि कुल-मर्यादाकी वेदीपर अपने आपको उत्सर्ग करके भी वह अपने प्रेमीकी सम्मान-रक्षाके लिए कितनी व्यग्र है। उसे उसकी मर्यादा-रक्षाकी इतनी अधिक चिंता हुई कि उसने स्वयं अरुणके पास जाकर कह दिया, 'अब तुम मेरे घर न आना'। इन सबके साथ-साथ अपने माता-पिताकी हित-चिंता भी संध्याके उक्त वाक्यसे भली-भाँति प्रकट होती है। अस्तु, अनेक दुर्बलताओंके बावजूद संध्याके

व्यक्तित्वको दृढ़ और अटल कहकर अभिहित किया जा सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं। पर इस दृढ़ता और अटलताके क्षेत्रमें दयाका भी पूरा-पूरा साम्राज्य है। दूलेकी विधवा स्त्री और लड़कीको पहले वह अपने घरमें शरण देती है। पर बादमें लोगोंके आपत्ति करनेपर वह उन्हें अरुणके यहाँ रख देती है। वैसे भी वह निर्धन व्यक्तियोंको अपने पिताकी भाँति ही दवा बाँटती है, और उनकी आर्थिक सहायता भी करती है। पर जैसा कहा जा चुका है, समाजके विधि-विधानोंके सम्मुख उसकी दयाको भी झुकना पड़ता है। किसीको असंतुष्ट करके या किसीसे लड़-झगड़के वह अपनी दयाको कार्य-रूपमें नहीं परिणत करना चाहती।

'उपन्यासमें संध्या और अरुणका प्रेम बहुत ही सूक्ष्म रेखाओंके सहारे बहुत ही कुशलताके साथ चित्रित हुआ है।' वह बहुत ही गूढ़ और मर्मस्पर्शी है। संध्याके मुँहसे वह उसी समय प्रकट होता है, जब उसकी माता अरुणको बुला देनेके लिए अपने पतिसे आग्रह करती है। इस स्थलपर उसके प्रेममें आत्म-नियंत्रण दर्शनीय है। आगे भी जब अरुण स्नेह-विकल होकर पूछता है, "प्रायश्चित्त करनेसे क्या इसका कोई उपाय हो सकता है?" तब वह कहती है, "एक दिन जिस आत्माभिमानके कारण तुम स्वयं प्रायश्चित्त करनेके लिए राज़ी नहीं हुए थे, आज उसे ही विसर्जन कर दो, यह मैं कभी न कहूँगी। तुम कुछ भी करो, पर अब यहाँ मत रहो।" इस प्रेममें कितना संयम है, कितना आत्मोत्सर्ग है! और अंतमें तो उसका यह संयम और आत्म-दमन पराकाष्ठापर पहुँच जाता है, जब अरुण बहुत-कुछ सोच-विचारके साथ उसके साथ विवाह कर लेनेके प्रस्तावपर राज़ी हो जाता है। कुछ समय पहले यद्यपि संध्याने स्वयं ही यह प्रस्ताव किया था, फिर भी वह इस मुँहमाँगी मुरादसे मुँह फेरकर अपने पिताके साथ वृन्दावन चली जाती है।

संध्याके हृदयमें आरंभसे ही रागात्मक संघर्ष दिखाई देता है। एक ओर है जाति, धर्म और वंश-मर्यादाका भय, तथा दूसरी ओर है उसका अरुण-के प्रति नैसर्गिक प्रेम! लड़ने-झगड़नेकी प्रवृत्ति न होनेके कारण प्रारंभमें संध्याके प्रेमके ऊपर उसकी सामाजिक आस्थाओंकी विजय होती दिखाई

देती है। अरुणसे बात करनेके लिए माँके क्रुद्ध होनेपर वह अरुणसे कहती है, "अब तुम क्यों इस घरमें आते हो अरुण भइया ? क्या तुम हम लोगोंका सर्वनाश किये बिना न छोड़ोगे" ? यहाँ उसका प्रेम जाति और धर्मकी मर्य्यादाके सम्मुख दब जाता है; उसकी प्रवृत्तियाँ स्वतः ही इनके विरुद्ध नहीं उठतीं। पर बादमें जब उसे ज्ञात होता है कि वह ब्राह्मणकी बेटी नहीं है तो उसका दमित प्रेम पूरे वेगके साथ उभर उठता है। अरुणके पास जाकर वह कहती है, "अरुण भइया, मैं ब्याहके पाटेपरसे भाग आई हूँ, तुम्हें ले चलनेके लिए। आज मुझे न लज्जा रही है, न भय—मान-अपमानका भी ध्यान नहीं रहा; तुम्हारे सिवा आज दुनियामें मेरा कोई नहीं है, तुम चलो ....सिर्फ़ तुम मुझे प्यार करते हो—सिर्फ़ तुम्हीं मेरी हमेशाकी इज्ज़त बचा सकते हो; बचाओ !" यहाँ वंश-जातिकी मर्यादाके विरुद्ध संध्याका प्रेम विजित होता दिखाई देता है। किंतु यह नियतिका व्यंग है कि प्रेमकी इस प्रबल धारको उचित समयपर प्रश्रय न मिल सका। अरुण एकाएक संध्याके उक्त प्रस्तावको स्वीकृत नहीं कर पाता और इस प्रकार उसका प्रथम यौवनका प्रेम बिना पूर्ण रूपसे विकसित हुए ही समाप्त हो जाता है। अब उसके मनमें रागात्मक संघर्ष शेष नहीं रहता, वरन् उसके स्थान पर एक अपूर्व शांतिमय निष्काम वृत्तिका उदय होता है। उसका वृन्दावन जाना मानो प्रतीकरूपसे विभिन्न कोलाहलोंसे हटकर चिर शांतिकी खोजमें जाना सूचित करता है। वासनाओंके उन्नयनके साथ ही साथ उसका मन भी निर्मल हो गया है। मान्यता देनेपर भी समाजके जिन विधि-विधानोंने उसे नीचे दिखाया, वह उनसे एकदम ऊपर उठ जाती है। प्रियनाथसे वह कहती है, "चलो बाबूजी, हमलोग यहाँसे ज़रा जल्दी निकल चलें।"

गठन-कौशलकी दृष्टिसे 'वामुनेर मेये'में बुढ़िया रासमणिका चरित्र सबसे अधिक सफल कहा जा सकता है। उसका व्यक्तित्व जितना सजीव होकर उभरा है, उतना किसी औरका नहीं। इस कलहप्रिय वृद्धाका चरित्र नारी-समाजके उस वर्गके अंतर्गत आता है, जिस वर्गकी स्त्रियोंके वचन और कर्ममें अंतर है, जो बाह्य आडंबरों और थोथे विधि-विधानोंका पालन ही

धर्माचरण समझती हैं तथा जिनका मस्तिष्क विकृतियोंसे शासित होने पर भी दूसरोंकी बुराई देखनेमें कभी नहीं चूकता। इस 'रासी ब्राह्मनी'का मन स्वार्थपरता, षड्यंत्रपरायणता और प्रीतिहीन तथा अनुभूतिहीन धर्मनिष्ठाका स्थायी घर है। कहाँ तो वह झूठमूठ ही एक अछूत लड़कीसे छू जानेपर नातिनीको नहलाती है और 'धर्म धर्म'की पुकार मचा देती है और कहाँ ज्ञानदाको गर्भपात करनेकी प्रेरणा देनेमें और गोलोक-जैसे दुष्ट व्यक्तिको बदनामीसे बचानेके लिए निरीह प्रियनाथको भी ज्ञानदाके साथ अनुचित संबंध रखनेवाला कहनेमें नहीं हिचकिचाती। इस तरह जो धर्म केवल बाहरी आचार-विचारको ही सब कुछ समझना सिखाता है वही उसके चरित्रका प्रमुख अंग है।

अपने व्यक्तित्वके अनुकूल ही रासमणिकी वाणी अत्यंत कटु है। 'हरामज़ादी' जैसी गाली तो उसके नित्य-संभाषणका अंग है। कटु-वाणीके साथ-साथ कलह-कौशलमें भी वह अत्यंत निपुण है। अपने स्वरको अवसरानुकूल अनिर्वचनीय कौशल्यके साथ ऊँचे सप्तकसे एकदम खादके निखादपर उतार लेनेमें वह अपनी सानी नहीं रखती। प्रकृतिकी वह इतनी क्रोधी है—तामसी है कि जगद्धात्री-द्वारा अरुणके लिए यह कहे जानेपर, "बेचारेके माँ-बाप कोई नहीं हैं, देखनेसे दया आ जाती है", वह उच्च स्वरमें कहती है, "ऐसी दयाके मुँहपर तू आग न लगा दे!" अरुणसे तो वह इतनी अधिक क्रुद्ध है कि झाड़ू मारकर उस छोकरेका मुँह सीधा करनेके लिए वह सदैव प्रस्तुत है।

किसीकी भी हो और किसी भी कारणसे हो, दूसरेकी दुर्गतिके इतिहाससे रासमणिका क्रुद्ध हृदय भी प्रफुल्लित हो जाता है। परछिद्रान्वेषी होना उसके चरित्रका प्रमुख गुण है। गाँव-भरके सारे कुल-कलंकोंका लेखा-जोखा सदैव उसकी जिह्वापर रहता है, जिन्हें उद्धृत करनेमें वह कभी पीछे नहीं हटती। पर इतना होनेपर भी स्वयं पापको प्रश्रय देनेमें वह कुछ भी संकोचका अनुभव नहीं करती। ज्ञानदाको ग़लत रास्तेपर चलानेमें वह जीभरके प्रयत्न करती है; प्रियनाथके चरित्रपर मिथ्या आरोप लगाती

है, और यह सब वह करती है केवल गोलोक ऐसे नारकीय व्यक्तिके प्रति *सहानुभूति रखनेके कारण* ।

रासी बाह्मनीकी स्वार्थपरताका उल्लेख होना भी यहाँ आवश्यक है। एक लौकी मिलनेकी बात सुनकर वह सड़कपर घंटों खड़ी रह सकती है। गोलोक-द्वारा संध्यासे विवाह किये जानेके प्रस्तावको जगद्धात्रीको सुनाकर वह एक सोनेकी गोट बनवाना चाहती है। इस विवाहकी बात चलानेमें भी उसका बड़ा हाथ है। सच तो यह है कि अपनी या अपने किसी गोलोक ऐसे हितैषीकी स्वार्थसिद्धिके लिए वह कैसे ही गर्हित कार्य करनेमें नहीं हिचकिचा सकती।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वाणीकी कटु, बाहरी छूतछातमें विश्वास रखनेवाली पर मनकी अत्यंत मलीन, स्त्री-शिक्षाकी विरोधी, सदैव असत्‌को प्रश्रय देनेवाली रासी बाह्मनी उन कर्कश व्यक्तियोंका प्रतिनिधित्व करती है, जो समाजमें सदव प्रगति और प्रकाशका विरोध करके उसे पतनके गड्ढेमें ही रखना चाहते हैं जहाँ सामाजिक बुराइयोंके अनेक कीटाणु पलते हैं और प्रश्रय पाते हैं। रासमणिका चरित्र सहसा ही हमें 'रामेर सुमति'की बुढ़िया दिगंबरीका स्मरण दिला देता है; पर यह निश्चित है कि एक स्वस्थ समाजके निर्माणमें रासमणि जितना घातक हो सकती है, उतना दिगंबरी नहीं। दिगंबरीका प्रभाव-क्षेत्र बहुत सीमित है, पर रासमणिके कार्यकलाप पूरे समाजके वातावरणको विषाक्त कर सकते हैं।

संध्याकी माँ जगद्धात्रीका चरित्र बहुत साधारण-सा है। पतिकी अत्यधिक परोपकार-वृत्तिसे परेशान यह गृहिणी जाति-मर्यादा तथा कुलके बंधनोंमें बुरी तरह जकड़ी हुई है। एक ओर तो वह इतनी गिरी हुई भी नहीं कि अपनी युवती कन्याका विवाह वृद्ध गोलोकसे कर दे, दूसरी ओर उसमें इतना साहस भी नहीं कि वह रासी ब्राह्मनी-जैसे अवांछनीय व्यक्तियोंका तिरस्कार कर सके। उसमें दया है, मोह-माया भी है, पर समाजके भयसे वह उसे व्यक्त नहीं कर पाती। उसके मनमें छल-कपट नहीं है। अपनी सारी बातें वह दूसरोंको बता सकती है। परंतु कहीं-कहीं किसी अप्रिय

विषयको दबाकर वह एक साधारण कुशल गृहस्थिन होनेका भी परिचय देती है।

अपने पति प्रियनाथके अत्यधिक सरल व्यवहारके कारण वह उनसे बहुत असंतुष्ट है। अपनी अवशताके लिए वह बार-बार खीज उठती है। एक बार नहीं, अनेक बार वह अपने पतिके लिए इस प्रकार कहती है "संध्या, या तो वे कहीं चले जायँ, या फिर मैं ही कहीं चली जाऊँ।" वस्तुतः उसकी यह असहिष्णुता स्वभावज न होकर सकारण है। वैसे वह संध्याके प्रति बहुत स्नेहशील है, पर अपने पिताका पक्ष लेते देखकर वह उससे भी क्रुद्ध हो जाती है।

जगद्धात्रीके मनकी निर्मलता समाजके अनेक बंधनों और दबावोंके कारण उसके व्यक्तित्वमें उभर नहीं पाती। वह अरुणके प्रति मनमें बहुत ममता रखती है, पर छूतछातमें विश्वास रखनेके फलस्वरूप वह उसे अपने घरमें अधिक नहीं आने देती। उसके गाँव छोड़कर जानेके समाचारको सुनकर वह विकल हो जाती है। अपने पतिसे वह कहती है, "तुम एक बार उसे यहाँ बुला ला सकते हो? कहना, तुम्हारी चाचीने अभी तुरत बुलाया है, बहुत ज़रूरी काम है।" ऐसे स्थलोंपर हमें उसका सामान्य मानवीय हृदय अपने निर्मल रूपमें दिखाई देता है।

वंश-मर्यादाका जगद्धात्रीको बहुत अधिक ध्यान है। अपनी सास द्वारा समाजकी विरुद्ध आलोचना सुनकर वह कहती है, "तबकी बात तो मैं जानती नहीं माँ, पर अब न कोई इतने ब्याह ही करता है और न वैसे अत्याचार ही होते हैं। और, अगर मान भी लिया जाय कि कुछ लोग उस समय अन्याय करते थे, तो इससे क्या कोई वंशकी इज़्ज़त छोड़ देगा माँ? मेरे जीते जी तो ऐसा नहीं होनेका।" इस 'वंशकी इज़्ज़त'के पीछे ही, घर छोड़कर वृन्दावन जाते हुए अपने पति और पुत्रीको वह नहीं रोक सकी वस्तुतः बाह्य आचार-विचारमें आस्था रखनेवाली एक स्त्रीके लिए यह जानना वज्रपातके ही सदृश है कि उसका ब्राह्मण समझा जानेवाला पति

एक नाईकी संतान है। ऐसे अवसरपर जगद्धात्रीका नितांत मूक हो जाना कुछ अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

संध्याकी दादी कालीतारा हमारे समक्ष प्राचीन प्रथाओंसे पीड़ित, समाजकी अँधेरी परंपराओं और रूढ़ियोंके एक शिकारके रूपमें आती है। इस अवस्थामें उसे एक संन्यासिनीके रूपमें चित्रित करके उपन्यासकारने मानव-मनोविज्ञानका बड़ा सफल निर्वाह किया है। समाजके मिथ्याचारोंके विरुद्ध कालीताराका जो शांत विद्रोह है वह एकदम स्वाभाविक है। किसी नारीको यदि जीवन भर अपने पतिके दर्शन न हों, और कोई एक अपरिचित नीच जातिका व्यक्ति उसे अपनी स्त्री बताकर धोखेसे उसका सर्वस्व नष्ट कर दे तो इससे अधिक उसके लिए भाग्यकी विडंबना और क्या हो सकती है। निर्दोष होकर कालीताराको जो मन ही मन घुट कर वेदना सहनी पड़ी है, वह अपरिसीम है। इसीके फलस्वरूप उसका दृष्टिकोण अत्यंत सहानुभूतिमय है। वह संध्या और अरुणके विवाहके पक्षमें है, क्योंकि उसके अनुसार अरुणकी जाति भगवान्के वरसे अमर हो चुकी है। वह मिथ्या वंशाभिमानकी समर्थक नहीं है। जगद्धात्रीसे वह कहती है, "यह जो कुलकी इज्ज़त है, यह कितना बड़ा पाप है, कितनी बड़ी धोखेकी टट्टी है, यह अगर तुम्हें मालूम हो जाता तो अपनी लड़कीको तुम इस तरह बलि न चढ़ा सकतीं। जाति और कुल यदि सत्य है, तो क्या दो आदमियोंके सारे जीवनका सुख-दुःख ही झूठ है बेटी?" उक्त उद्धरणसे कालीताराके जीवनकी सारी अनुभूति और विचार-प्रियतापर प्रकाश पड़ता है। उसका प्रत्येक कथन युक्ति-युक्त तथा मननपूर्ण है। संध्याकी माँको समझाती हुई वह आगे कहती है, "झूठको इज्जत देकर जितना ऊँचा बनाये रखोगी, उतनी ही ग्लानि, उतनी ही कीचड़, उतना ही अनाचार इकट्ठा होता रहेगा। और हो भी यही रहा है।" उसका यह निष्कर्ष जितना ही युक्ति-संगत है उतना ही मानवीय (humane) भी! कालीताराको ही कदाचित् अपना वक्ता बनाते हुए उपन्यासकार अंततः कहता है, "मनुष्य-मनुष्यमें यह जो भेद-भावकी चहार-दीवारी है, यह मनुष्यने ही अपने हाथसे

बनाई है, यह भगवान्‌का नियम हरगिज़ नहीं है। उनके प्रकट मिलनके सिंहद्वारपर मनुष्य जितने ही काँटोंपर काँटे इकट्ठा करता जाता है, गुप्त गह्वरमें उसके अत्याचारोंके घेरेमें उतने ही अधिक छिद्र होते रहते हैं। तब उनमें-से होकर समाजमें पाप और गंदगी ही छिपे-छिपे घुसती रहती है।"

इस प्रकार कालीताराकी विचार-शैली बहुत ही सुलझी हुई और संवेदन-शील है। उसका स्पष्ट मत है, "कोई बात बहुत दिनोंसे चली आ रही है, सिर्फ़ इसीसे वह अच्छी नहीं हो जाती।" कालीताराका यह कथन अनायास ही 'शेष प्रश्न'की कमलका स्मरण दिला देता है, जो कहती है, "वस्तु अतीत होती है कालके धर्मसे, पर उसे अच्छा होना पड़ता है अपने गुणोंके धर्मसे।" यहाँ समाजकी प्रचलित एवं प्रतिष्ठित मान्यताओंके विरुद्ध कलाकारका विद्रोह अत्यंत सुदृढ़ होते हुए भी उचित रूपसे संयमित है। वस्तुतः काली-तारा प्राचीना होनेपर भी प्रगतिशील है, और इसीलिए उसका चरित्र 'वामुनेर मेये'के घोर अंधकारमय वातावरणमें निर्मल दीप-ज्योतिके समान है, जो हमें दृष्टि-दान करती है।

उपन्यासमें ज्ञानदाका चरित्र एकदम औसत दर्जेका है। वह एक साधारण भारतीय महिलाके समान सरल, लज्जाशील एवं स्नेहमयी है। पर चारित्रिक दृढ़ताका अभाव उसके व्यक्तित्वकी सबसे बड़ी कमी है। वह धर्मभीरु है, पापसे डरती है, किंतु दृढ़ताके साथ उनका सामना नहीं कर पाती। गोलोककी वासनाका शिकार वह बड़ी आसानीसे बन जाती है। यह ठीक है कि उसके एक ओर प्राकृतिक कमज़ोरियाँ हैं और दूसरी ओर वैधव्यकी प्रभावशालिनी परिस्थितियाँ, पर इनसे ऊपर उठनेपर ही उसका चरित्र निखर सकता था। और फिर गोलोक ऐसे दुष्टात्मा व्यक्तिके सम्मुख बिक जानेके कारण उसका कलंक और भी गहरा हो जाता है। पर इतने पर भी, वह पाठककी सहानुभूतिकी पात्री रहती है, घृणाकी नहीं!

श्री नाथूराम प्रेमीके अनुसार, "इस उपन्यासमें जाति और कुलके अभिमानका खोखलापन ऐसी ख़ूबीसे प्रकट हुआ है कि देखते ही बनता है और तब हर्षचरित-टीकाका यह श्लोक बरबस याद आ जाता है—

'अनादाविह संसारे दुर्वारे मकरध्वजे।
कुले च कामिनीमूले का जाति-परिकल्पना ॥'

अर्थात् संसार अनादि है—अगणित पीढ़ियोंसे चला आ रहा है, काम-वासना दुर्निवार है—रोकी नहीं जा सकती, और फिर कुल स्त्रीमूलक हैं—वासना-दुर्बल स्त्रियाँ ही कुलीनता-अकुलीनताकी जड़ हैं; ऐसी दशामें जाति-कुलकी कल्पना ही क्या हो सकती है? कौन कह सकता है कि हमारे कुलमें अनादिकालसे किसी स्त्रीने व्यभिचार नहीं किया—हमारा कुल वैसा ही पवित्र बना हुआ है तथा हमारा कुल और जातिका अभिमान मिथ्या नहीं है?" 'बामुनेर मेये'का मूल संदेश कदाचित् यही है।

लेन देन

[देना-पाउना]

●

'लेनदेन' शरत् बाबूके रचनाकालके उत्तरार्द्धमें रचित एक अपेक्षाकृत बड़ा उपन्यास है, परंतु यह निःसंकोच रूपसे कहा जा सकता है कि आकारके अनुरूप इस उपन्यासमें रससृष्टि संभव नहीं हो सकी। लेखक बंगालके 'पल्ली-समाज'के चित्रणमें इतना व्यस्त रहा है कि उसे सहज मानवीय भावनाओंको स्पर्श करनेका बहुत कम अवकाश मिल सका। विभिन्न पात्र-पात्रियोंके मनमें एक, दूसरेके प्रति क्या प्रतिक्रिया होती है, इसका मनोवैज्ञानिक अंकन 'लेनदेन'में बहुत कम हुआ है। 'पल्ली समाज'के समान ही 'देना-पाउना'का वातावरण ग्रामीण कलह, ईर्ष्या, पारस्परिक षड्यंत्र और स्वार्थपरतासे बोझिल हो उठा है। मनकी निर्मल और निर्विकार वृत्तियोंका उसमें कोई स्थान नहीं। पर जिस प्रकार 'पल्ली समाज'की तामसिक एवं अंधकारमय कथा-भूमिपर रमा और रमेशका तरल रागात्मक संबंध कुछ क्षणोंके लिए हमारे मनको मोहाच्छादित कर लेता है, उस प्रकारसे 'देना-पाउना'के जीवानंद और षोड़शी हमारे हृदयमें कोमल भावनाओंका संचार नहीं करते। मोटे तौरपर उक्त दोनों उपन्यासोंके कथा-विधानमें यही प्रमुख अंतर है। एक और भी प्रकारका अंतर इन दोनों कथाओंमें है और वह यह कि 'पल्ली समाज'में रमेशका पुरुष रमाकी नारीकी अपेक्षा अधिक सशक्त है। परंतु 'देना-पाउना'में षोड़शीकी नारी जीवानंदके पुरुषकी अपेक्षा अधिक शक्तिमान् है।

'देना-पाउना'की मूल कथा संक्षेपमें इस प्रकार कही जा सकती है। षोड़शी—जिसका पूर्व नाम अलका है—चंडीगढ़की चंडी माताकी भैरवी

है। गाँवके अत्याचार-ग्रस्त व्यक्तियोंको सहायता देती हुई वह अत्यंत पवित्रताके साथ अपना जीवन-यापन करती है। एक दिन अचानक ही गाँवका व्यभिचारी, कामुक और अत्याचारी जमींदार जीवानंद चंडीगढ़ आता है। ऋणके रुपयोंके बहाने वह षोड़शीको अपने निर्जन निवास-स्थानमें बुलवा लेता है। क्रोधके आवेगमें भैरवी उसके पास जाती है और किसी प्रकार अपने नम्र व्यवहारसे सतीत्वकी रक्षा करती है। जीवानंदको देखते ही वह पहचान लेती है कि इसी व्यक्तिने कुछ रुपयोंके लोभमें उसकी माँको संतुष्ट करके उससे विवाह किया था, परंतु उसके बाद उसे आज ही अपने इस प्रथम पतिके दर्शन हुए। षोड़शीने यह भेद गुप्त रखा, यहाँ तक कि जीवानंदको भी नहीं बताया।

इसके उपरांत उपन्यासमें ग्रामीण कलह और ईर्ष्या-द्वेषके चित्र हैं। गाँववालोंकी षड़यंत्रपरायणतासे ऊबकर जीवानंदके संतोषके लिए षोड़शी चंडीगढ़ छोड़कर चल देती है। इसी बीच वह जीवानंदपर यह भी प्रकट कर देती है कि वस्तुतः वही उसका पति है। इस भेदके ज्ञात होनेपर जीवानंद उसे प्राप्त करना चाहता है। पर जितना ही वह उसके निकट आना चाहता है उतना ही वह उससे दूर भागती है। अंततः जब पीड़ा-द्वारा जीवानंदका हृदय पूर्णतः परिशुद्ध हो जाता है तो षोड़शी उसे अपने साथ ले जानेके लिए आती है। और इस प्रकार निष्काम भावनाओंकी छायाओंमें दो हृदयोंका सम्मिलन होता है। जीवानंद और षोड़शी चंडीगढ़ छोड़कर चल देते हैं।

इस लंबे उपन्यासके कथानकमें तीन प्रमुख नारी पात्रोंका अवतरण हुआ है—षोड़शी, हेम तथा हेमकी माँ। उपन्यासकी नायिका एवं प्रधान पात्री होनेके कारण षोड़शीके चरित्रका ही विश्लेषण हम सर्वप्रथम करेंगे। एककौड़ीके शब्दोंमें "न तो औरतकी-सी शक्ल है और न वैसा बर्ताव है। मानो हथियार बाँधे लड़ाई करनेको तैयार है। इसीसे तो लोग समझते हैं कि यही साक्षात् गढ़की चंडी है।" बहुत कुछ अतिशयोक्ति-पूर्ण होते हुए भी यह वर्णन षोड़शीके चरित्रकी मूल संवेदना प्रकट कर देता है। शरत्के अन्य

नारी-पात्रोंके समान वह अधिक भावुक नहीं है; उसमें पुरुषोचित दृढ़ता एवं कठोरता है। इसीलिए सब प्रकारके अन्यायोंका सामना वह स्थिरता-पूर्वक करती है। आकस्मिक आपदाओंमें यह साहसपूर्ण रमणी 'परिणाम-भयहीन पगली'की भाँति पहुँच जाती है।

षोड़शीके तपःपूत व्यक्तित्वका वर्णन करते हुए उपन्यासके प्रारंभमें ही शरत् बाबू लिखते हैं, "स्त्रीका एक प्रकारका रूप है जिसे पुरुष, यौवनके उस पार पहुँचे बिना, कभी देख नहीं सकता। वही अपूर्व नारी-रूप आज षोड़शीकी तैलहीन उलझी हुई लटोंमें, उपवाससे सूखी हुई उसकी कठोर देहमें, प्रकृतिको रोकनेके उसके रूखेपनमें—उसके अंग-अंगमें स्थित है।" यह इसी रूपका प्रभाव था कि नितांत अवश अवस्थामें पाकर भी जीवानंद सदृश अत्याचारी एवं दुश्शील व्यक्ति षोड़शीके तनका स्पर्श न कर सका; बादमें बिना जाने ही उसने उसके मनका स्पर्श कर लिया, यह दूसरी बात है। उसकी चारित्रिक दृढ़ताके मूलमें उसकी पति-भक्ति अवस्थित है। जब तक वह जीवानंदको पहचानती नहीं, वह अपने द्वितीय पतिकी क्षीण स्मृतिके ही सहारे अपने सतीत्वकी रक्षा करती है। उस समय वह जीवानंदके वशमें होती हुई भी उससे स्पष्ट शब्दोंमें कहती है, "आपका रुपया, आपका सुभीता, आपके ही पास रहे, मुझे जाने दीजिए..........पतिकी मुझे याद नहीं है सही, परंतु वे हैं तो! मैं आपसे सच कहती हूँ, आज तक मैंने कोई भी बुरा काम नहीं किया है। कृपया मुझे छोड़ दीजिए।" सचमुच उसके कठोर मनके भीतर प्रवेश कर पाना बहुत दुरूह है, क्योंकि अटल पति-भक्तिका कवच उसकी बाह्य आक्रमणोंसे सदैव रक्षा करता रहता है।

षोड़शीका मन यदि कठोर है, तो स्फटिक-सदृश निर्मल भी है, भले ही वह सबके लिए पारदर्शक न हो। जीवानंदके प्राणोंको अपने हाथमें पाकर भी वह उनका अंत नहीं कर देती। विश्वासका हनन करना उसकी प्रवृत्ति नहीं है। जीवानंदको, जब वह उसे पति-रूपमें पहचान भी न पाई थी, मर्फियाकी थोड़ी-सी ही मात्रा अधिक देनेमें वह उस अत्याचारीसे अपना प्रतिशोध ले सकती थी। परंतु उसने ऐसा नहीं किया। फिर जीवानंदको

पहचान लेनेपर उसने उन्हें मैजिस्ट्रेटके हाथोंसे बचाया—अपने पिताके विरुद्ध यह बयान देकर कि "मैं अपनी इच्छासे आई हूँ। किसीने मेरे शरीरको हाथसे छुआ तक नहीं।" यहाँ भी वह अपने पति जीवानंदसे, पूर्वकालमें उसके द्वारा तिरस्कृत होनेका बदला नहीं लेती। प्रथम यौवनकी भेंटको अस्वीकार करनेवाले व्यक्तिकी भलाईके लिए उसकी तपस्विनी स्त्री-द्वारा सामाजिक मान-मर्य्यादाका उल्लंघन करना, इस बातका स्पष्ट परिचायक है कि शरत्‌की नायिकाएँ प्रायः अप्रत्याशित कार्य करके मानव-मनोविज्ञानकी जटिलताका परिचय देती हैं। पति-द्वारा निर्दोष होनेपर भी त्याग दिया जाना नारीके लिए सबसे महान् दुःखकी बात है। पर ऐसे भी पतिकी परि-चर्याके लिए षोड़शी सारे सामाजिक मानोंसे ऊपर उठकर अनायास कटिबद्ध हो जाती है। षोड़शीका विवाह जीवानंदके उपरांत एक दूसरे व्यक्तिसे हो चुका है, और फिर वह चंडीकी भैरवी भी है। ये दोनों ही बातें ऐसी हैं जो उसे जीवानंदका स्पर्श तक करनेको वर्जित करती हैं। पर इतनेपर भी षोड़शी इन दोनों विधानोंका निषेध करके अपने दुःशील पतिकी परिचर्या नितांत निष्काम भावसे करती है।

जैसा हमने पहले कहा है, षोड़शी किसी भी प्रकारके अन्यायका तीखा प्रतिवाद करती है। जनार्दनरायसे, जो जैसे धनी हैं, वैसे ही भयंकर हैं, एक किसानसे बेगार लेनेके मामलेमें षोड़शीका झगड़ा हो गया था। यह बात राय महाशयको कभी नहीं भूलती और षोड़शी भी उनसे कुछ डरते हुए भी उनका स्पष्ट तिरस्कार करती है। उनके बुला भेजनेपर वह गाँवके मुखियोंकी पंचायतमें नहीं जाती। यहाँतक कि वह अत्याचारी जीवानंदको भी उसके बीमार होनेके कारण, जेल भिजवाना नहीं चाहती। इसके लिए वह फ़कीर साहब जैसे श्रद्धेय व्यक्तिका भी प्रस्ताव अस्वीकृत कर देती है। षोड़शीके बारेमें निर्मलका यह मत काफ़ी सच है कि 'यह जैसी गंभीर है वैसी ही शिक्षिता है और वैसी ही निडर है।' परंतु जहाँ षोड़शी अपने ग्रामवासियोंके ऊपर होनेवाले विभिन्न अत्याचारोंका घोर विरोध करती है, वहीं वह अपने ऊपर होनेवाले अत्याचारको मौन होकर सहती

है। इस संबंधमें उसका मत है, "बदनामी अगर झूठी ही हो तो सहूँगी क्यों नहीं ? हेम, संसारमें झूठी बातोंकी कमी नहीं है, परंतु उसका प्रतिवाद करनेमें जो झूठे कार्य किये जाते हैं, उन्हींका बोझ सहना कठिन है।" दूसरोंको दुखित देखकर उसके मनका क्रोध उभर उठता है, पर अपने लिए नहीं। हेम षोड़शीकी तुलना उस तलवारसे करती है, जिसकी मियान धूल चढ़ जानेसे मलिन हो गई है, परंतु असली चीज़में ज़रा भी मैल नहीं बैठा है। 'वह जैसी सीधी है, वैसी ही कठिन है और वैसी ही असली भी है।'

यहाँ एक बातका ध्यान रखना आवश्यक है। यद्यपि षोड़शी अपने ऊपर किये जानेवाले अत्याचारोंका प्रतिवाद नहीं करती, पर वह उन अत्याचारियोंके सम्मुख झुकती भी नहीं, जिससे कि वह इन दुष्कर्मोंके लिए और प्रोत्साहित न हो उठें। नारी होकर वह यह दिखा देना चाहती है कि वह किसी भी प्रकार पुरुषसे दुर्बल नहीं है। यहाँ उसका चरित्र शरत्की परंपरागत नायिकाओंसे भिन्न हो जाता है। वस्तुतः षोड़शीका व्यक्तित्व किरण और कमलके वर्गके अंतर्गत आता है, जो कोरी गलदश्रु भावुकताका तिरस्कार करती हैं। उनके चारोंओर एक कठोरताका कवच है जिसमें प्रवेश पा सकना किसी उपेन्द्र, अजित अथवा जीवानंदके लिए ही संभव है। किरण, अभया, षोड़शी और कमल नारीके सशक्त वर्गका प्रतिनिधित्व करती हैं। ऐसा जान पड़ता है कि इनमें-से पहली तीन नायिकाओंके व्यक्तित्वसे श्रेष्ठतम परमाणुओंको लेकर लेखकने अंतिम नायिकाका सृजन किया है। अपने अदम्य साहसका परिचय देती हुई षोड़शी निर्मलसे कहती है, "मैं अबला स्त्री, निरुपाय हूँ सही, परंतु मेरा भैरवीका अधिकार तनिक भी शिथिल नहीं हुआ है। वे मर्द हैं, उनमें बल है, परन्तु उस बलको जब तक वे सोलहों आने प्रमाणित न कर लेंगे, तबतक मेरे हाथसे कुछ भी पानेका उन्हें अधिकार नहीं है—मिट्टीका एक ढेला तक नहीं। निर्मल बाबू, मैं स्त्री हूँ, परंतु उसीको जिन लोगोंने संसारमें सबसे बड़ा अपराध मान रखा है उन्होंने भूलकी है। इस भूलका उन्हें संशोधन करना पड़ेगा।" यहाँ षोड़शीका व्यक्तित्व पुरुषसे दबा नहीं, वरन् वह उसे एक चुनौती

देता जान पड़ता है। इसीलिए वह माँ अधिक है, प्रिया कम! उसके गाँवके सारे व्यक्ति उसे दयामयी माँ ही कहते हैं। और वह भी सदैव उनकी दुःख-गाथाओंको सुननेके लिए प्रस्तुत रहती है। उपन्यासकारके शब्दोंमें, 'षोड़शीके संबंधमें गाँवके मुखियोंका मनोभाव कुछ भी क्यों न हो, ये दीन दरिद्र लोग जैसे उसकी भक्ति करते हैं वैसे ही उसको चाहते भी हैं।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि षोड़शीके चरित्रका विशिष्ट तत्त्व उसके मनकी असाधारण दृढ़ता है। जीवानंदसे वह कठोर शब्दोंमें कहती है, "झगड़ा करनेमें मुझे घृणा मालूम होती है। उसके लिए अभी मौक़ा भी नहीं है—यह बात अपने अनुचरोंको समझा दीजिएगा।" और इधर सागरको वह सबके सामने ही आदेश देती है, "ज़मीदारके लोग कल यहाँ बलवा करना चाहते हैं, परंतु मैं यह नहीं चाहती। मेरी इच्छा नहीं है कि इस उत्सवके समय यहाँ किसी तरहका खून-खराबा हो; परंतु ज़रूरत पड़ी तो सब कुछ करना होगा। तुमलोग इन आदमियोंको पहचान लो, इनमें-से कोई भी कल मंदिरके आस-पास न आने पावे! एकाएक मारपीट नहीं करना, सिर्फ़ गरदनियाँ देकर निकाल देना।" सर्वसाधारणके बीच गाँवके मुखियोंके विरुद्ध इन शब्दोंको बोलनेवाली नारी कितनी सशक्त है, इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं। वस्तुतः षोड़शी यदि गुलाबकी तरह कोमल है तो चट्टानकी तरह दृढ़ भी है। देवीकी भक्तिमें समय व्यतीत करनेवाली यह नारी प्राण लेनेकी भी बात कर सकती है। पर "इस कठिन आवरणके नीचे रहस्यमयी कौतुकप्रिय नारी-प्रकृति दबी पड़ी है", इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उसके व्रत और उपवासकी हज़ारों तरहकी कठोर साधनासे भी उसकी हँसीका झरना अभी नहीं सूखा है, मानो राखके भीतर भी आगकी तरह वह जीवित है। उसकी दृढ़ता एवं शांत तथा संयमित कठोरताको व्यक्त करनेके लिए केवल प्रफुल्लताका एक वाक्य ही पर्याप्त है—"बापरे! औरत तो है ही नहीं, मर्दका दादा है।" इसके आगे इस संबंधमें कुछ और कहना अनावश्यक ही है।

षोड़शी चंडी माताकी भैरवी है, और अपने इस कार्यको वह अत्यंत

मनोयोगपूर्वक करती है। अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंमें भी देवी-पूजनको वह नहीं भूलती। जीवानंदके यहाँ वंदिनी रहनेपर 'सारी दुश्चिंताओंके भीतर और एक प्रकारकी चिंताकी धारा षोड़शीके अंतःकरणमें लगातार बह रही थी, वह है उसकी चंडी माता, जिनकी पूजा वह बचपनसे करती आई है।' उसकी गेरुआ रंगकी धोती, उसके सुन्दर सुगठित खुले सिरके रूखे केश, उसकी उपवास-कठिन यौवन-सन्नद्ध देहकी सब प्रकारके बाहुल्यसे वर्जित विचित्र सुषमा, सबके ऊपर उसके नत-नेत्रोंकी अपरिदृष्ट वेदनाका अनुरक्त इतिहास—उसके कठोर सौंदर्यके ये सारे उपकरण मानो उसे चंडी-पूजनसे ही प्राप्त हुए हैं। देवीकी पूजाके लिए सारे आवश्यकीय संयमका वह निर्वाह करती है। षोड़शीके रूपमें वह अपनेको एक साधारण नारी-मात्र समझती है, पर चंडीगढ़की भैरवीके रूपमें, वह जानती है, 'कि इतनी बड़ी सम्मानित और गरीयसी नारी इस प्रदेशमें और कोई नहीं है।' इसीलिए अपना सम्मान नष्ट करने पर भी वह भैरवीका सम्मान यथाशक्य नष्ट नहीं होने देती। यहाँ तक कि देवीके पूजनके समय वह अपने प्रति कही हुई कठोर-से-कठोर बातोंको नहीं सुनती।

चंडीकी भैरवी जैसे सम्मानित पदपर प्रतिष्ठित होनेपर भी षोड़शीको पदलोलुपता छू तक नहीं गई है। जैसा कहा जा चुका है, भैरवी वह इसलिए है क्योंकि उसके हृदयमें देवीके प्रति नैसर्गिक भक्ति है, इसलिए नहीं कि उसे उस उच्च पदकी लालसा है। जीवानंदसे स्पष्ट एवं स्वाभाविक स्वरमें वह कहती है, "मैं इस निर्णयके लिए झगड़ा नहीं करना चाहती कि वास्तवमें अभिभावक कौन है; आप लोग अगर ऐसा समझें कि मेरे चले जानेसे मंदिरकी भलाई होगी, तो मैं चली जाऊँगी..........एक दिन बिना कुछ समझे-बूझे ही मैं भैरवी हुई थी और आज बिदा लेते समय भी मैं इससे अधिक कुछ न सोचूँगी।" और अंततः वह भैरवीके सारे उत्तरदायित्व एवं कर्त्तव्यसे मुक्त होकर अत्यंत शांति-पूर्वक गाँव छोड़कर चल देती है।

यह एक विलक्षण तथ्य है कि षोड़शीका चरित्र जितना ही कठोर है, उतना ही उसमें परोपकार बुद्धिका बाहुल्य है। विरोधी दलके सदस्य होने

पर भी भटके हुए निर्मलको अँधेरी रातमें वह हाथ पकड़कर घर तक पहुँचा आती है। हेमके प्रार्थना करनेपर भी वह ऐसा कोई काम करनेको तैयार नहीं, जिसके कारण उसके और उसके पितामें मनोमालिन्य हो। उसे अपनी ग़रीब प्रजाका इतना अधिक ध्यान रहता है कि गाँव छोड़कर जाते समय वह जीवानंदसे यह प्रार्थना करती है कि वे इन दीन-दुःखियोंका पूरा ध्यान रखें। अपने भैरवीके कार्य-कालमें वह मंदिरमें आये हुए रोगग्रस्त या किसी भी अन्य अभावसे पीड़ित व्यक्तियोंकी पूरी सहायता करती है। जब वे एकदम स्वस्थ हो जाते हैं तभी वह उन्हें वहाँसे जानेकी आज्ञा देती है। और जब उसे चंडीगढ़की ग़रीब प्रजाकी सेवासे विरत होना पड़ता है तो वह कुष्ठाश्रमकी दासी बनकर जाती है। इसके उपरांत जब उसे एक बार फिर गाँव आना पड़ता है तो वह भी हेमके पिता जनार्दनरायके उपकारके लिए ही, जिन्होंने सदैव उसे अपमानित करनेकी चेष्टा की थी।

षोड़शीके मनमें अपनी मृत माँके लिए तो श्रद्धा है ही, अपने कुटिल पिताके लिए भी कम ममत्व नहीं है। उसके पिता तारादास जब उससे रुष्ट होकर सारे घरपर अधिकार कर लेते हैं, तो वह प्रत्युत्तरमें कुछ भी नहीं कहती, चुपचाप अपना सामान लेकर चली जाती है। और इसके बाद भी उसे यह पश्चात्ताप रहता है कि उसके कारण उसके पिताको व्यर्थ कष्ट उठाना पड़ा। आगे भी पिताके सुखकी चिन्ता उसे सदैव रहती है, यद्यपि तारादास अपनी पुत्रीको नीचा दिखानेमें कुछ भी कमी नहीं रखते।

षोड़शीके चरित्रकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसके पास व्यावहारिक बुद्धिका अभाव नहीं है, जो शरत्‌की अधिकांश भावुक नारियोंके पास प्रायः नहीं होती। अपढ़ ग्रामीण व्यक्तियोंको किसी कार्य-विशेषके लिए कैसे संगठित किया जाय, यह वह भलीभाँति जानती है। इसीलिए उसके एक इशारेपर चंडीगढ़की सारी प्रजा चलती है। ज़मींदार-द्वारा गाँवकी ज़मीनपर अनुचित रूपसे अधिकार किये जानेपर वह एक सभाका आयोजन करती है, और उन निरुपाय एवं निरीह व्यक्तियोंमें साहसका संचार करती हुई कहती है, "अगर यह बात सत्य है विपिन, तो अपने उन

पाँच-पाँच जवान बेटोंसे कहना कि यह पुश्तैनी जायदाद उनकी बूढ़ी माँसे तिलभर भी कम नहीं है। ये दोनों ही समान रूपसे उनका पालन करती आई हैं।" षोड़शीके इन शब्दोंमें जो सभा-चातुर्य एवं वाक्पटुता झलकती है, वह सहसा अतुलनीय है।

षोड़शी और जीवानंदका पारस्परिक संबंध एक विचित्र प्रकारका है। षोड़शी जीवानंदकी स्त्री है, परंतु त्यागी हुई। बादमें मिलनेपर जब वे एक, दूसरेको पहचानते हैं तो उनकी रागात्मिका वृत्तियाँ परस्पर सम्मिलनके लिए छटपटाती हैं। पर चाहते हुए भी वे एक-दूसरेके निकट नहीं आ-पाते क्योंकि उनकी विचार-धाराएँ एवं मान्यताएँ नितांत भिन्न हैं। उपन्यासके अंततक यह संघर्ष चलता रहता है, पर अंततोगत्वा सारे सशक्त मनो-विकारोंके ऊपर प्रेमकी विजय होती है, और षोड़शी जीवानंदको अपने साथ लिवा ले जाती है। षोड़शीको देखकर जीवानंदकी रूखी आँखें सजल हो उठती हैं। 'इस प्रकार आत्मसमर्पण करके जिसने उसका सारा हृदय जीत लिया है, उसकी ओर देखते ही अकस्मात् उसके पैरोंके नीचेकी धरतीतक काँप उठती है।'

षोड़शीने जबसे जीवानंदको पहचाना है, तबसे वह उसका विरोध करती हुई भी उसके हित-अहितका सदैव ध्यान रखती है। प्रारंभमें वह उसे जेल जानेसे रोकती है। फिर जब सागर उसे जीवानंदके प्राणांत करनेका प्रस्ताव बताकर चला जाता है तो उसके क्लेशका पार नहीं रहता। उसके अन्य 'सब क्लेश गोष्पदके तुल्य हैं और जहाँ आज सरदार उसे डालकर अदृश्य हो गया है वह दशा समुद्रके समान है।' गाँवके सारे षड़यंत्रोंके बीच भी षोड़शी जीवानंदकी सुविधाका ध्यान रखती है, इसमें कोई संदेह नहीं। वैयक्तिक बातोंके लिए वह जीवानंदसे झगड़ा नहीं करती। यहाँ तक कि उसके सम्मुख वह अपने असतीत्वका कलंक भी ओढ़ लेती है।

जीवानंदके सम्मुख षोड़शीके दुर्बल पड़नेका मुख्य कारण उसका पूर्व-संबंध ही है। उपन्यासकारके शब्दोंमें 'जीवानंदके मुँहसे यही 'अलका' नाम षोड़शीके लिए सबसे बड़ी दुर्बलता है। उसे मालूम न होता था कि

तीन अक्षरोंका यह छोटा-सा नाम उसके कहाँ जाकर चोट पहुँचाता है।' परंतु अपने पारस्परिक संबंधोंमें षोड़शी जीवानंदके सम्मुख भले ही झुक जाय, गाँवके झगड़ोंको लेकर वह अपने मतपर सदैव अटल रहती है। ऐसे समय जीवानंदको अप्रसन्न होकर कहना ही पड़ता है, "तुम कुछ नहीं कर सकतीं, तुम पत्थर हो।" इन गाँवकी समस्याओंको लेकर ही जीवानंद षोड़शीको अपना सबसे बड़ा दुश्मन मानता है। वस्तुतः पति-पत्नीके बीच-की यह दूरी, जो हमें शरत्‌के उपन्यास 'पंडितजी'में भी मिलती है—अवश्य ही दूसरे कारणोंसे, आज हमारे लिए आश्चर्यजनक है; पर तत्कालीन बंगालमें यह साधारण बात थी।

षोड़शीके चरित्रमें शरत्‌की परंपरागत नायिकाओंकी एक विशेषता प्रमुख रूपसे मिलती है, और वह है प्रभविष्णुता। पर यह सच है कि इतने गुणोंका समाहार होनेके कारण ही उपन्यासकारने षोड़शीका व्यक्तित्व हमारे सम्मुख इस रूपमें रक्खा है। उसकी प्रभविष्णुता अस्वाभाविक नहीं है। निर्मलके शब्दोंमें, "आप साधारण स्त्री हैं भी तो नहीं! इसके सिवा सब बातोंमें चुप रहनेकी आपकी ज़िद भी अपूर्व ही है। वास्तवमें आपकी सभी बातें अनोखी हैं......आपकी भक्ति किये बिना रहा नहीं जाता।" एकदम ऐसी ही भावना षोड़शीकी विरोधिनी राय-गृहिणी भी व्यक्त करती हैं। उनके अनुसार वह 'पढ़ने-लिखनेमें सरस्वती है। ऐसा शास्त्र नहीं जिसे न जानती हो' अथवा 'आपत्ति-विपत्तिमें ग़रीबोंके लिए ऐसा माँ-बाप गाँवभरमें दूसरा नहीं है। जब जिस कामके लिए बुलाओ, हँसती हुई हाज़िर है; नाहीं करना तो जानती ही नहीं।' इसके अतिरिक्त उनका स्पष्ट मत है कि 'षोड़शी कभी किसीको धोखा नहीं देती और न झूठ ही बोलती है।' वस्तुतः राय गृहिणीके हृदयमें षोड़शीके लिए अत्यंत कोमल कोना सुरक्षित है। वह उनकी श्रद्धाकी पात्री है। जीवानंद ऐसा व्यक्ति उसके चरित्रकी दृढ़तासे प्रभावित होकर कहता है, "तुम तो असती नहीं हो।" और तो और उसके कट्टर विरोधी जनार्दनरायको भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि 'षोड़शी और कुछ भी करे, देवीकी संपत्ति वह नहीं चुरायेगी—

एक पैसा भी न लेगी।' षोड़शीके लिए कहे गये उक्त सारे वाक्य उसके व्यक्तित्वकी प्रभविष्णुता एवं अजेय निष्ठापर भलीभाँति प्रकाश डालते हैं।

षोड़शी—तरह-तरहके कृच्छ्र तप करनेसे जिसका शरीर सूख गया है, जिसका रूप और यौवन कठिन तथा कांति-हीन हो गया है—ऐसी विदुषी संन्यासिनी षोड़शी अपनी दृढ़ता, पुरुषोचित आत्मनिर्भरता एवं वाक्पटुता-में कदाचित् 'शेष प्रश्न'की कमलका पूर्व रूप है। उसकी सरल विनोद-प्रियताको देखकर 'गृहदाह'की मृणालका स्मरण हो आता है। निर्मल बाबूसे वह अनायास ही कहती है, "मैं इतनी भोली नहीं हूँ—मेरे सामने धोखा नहीं चलता।" षोड़शीकी यही उक्ति मानो उसके चरित्रका मूल सूत्र है। शरत्के नारी-पात्रोंके अध्येताओंके लिए यह उसकी तरफ़से चेतावनी है।

'देना पाउना'की दूसरी प्रमुख पात्री हेम है। एक धनिककी पुत्री एवं बैरिस्टरकी पत्नी होनेपर भी उसके व्यक्तित्वमें बनाव-श्रृंगारका विशेष आग्रह नहीं है। ठीक इसीके अनुरूप उसका मन भी है—अत्यंत निर्मल एवं शांत। किसी भी प्रकारके उत्तेजनापूर्ण वातावरणमें वह संयत रह सकती है। षोड़शीके अपराधोंकी एक लंबी सूची प्रस्तुत होनेपर भी वह उन्हें अपरीक्षित होनेके कारण अप्रमाणिक मानती है। सत्यके लिए उसके मनमें इतना आग्रह है कि जनार्दन रायको वह उनके सम्मुख ही मिथ्या भाषणके लिए तिरस्कृत करती है, और अन्ततः वह सब स्वजनोंके विरुद्ध होकर उनकी अनिच्छा एवं क्रोधका ध्यान न करके अपने पुत्रकी मंगल-कामनाके लिए देवीका पूजन षोड़शीसे ही करवाती है, क्योंकि वह जानती है कि भैरवी निर्दोष है।

हेमका चरित्र एक साधारण भारतीय नारीकी भाँति अंकित किया गया है। जिस प्रकार वह ग़लतफ़हमियोंका शिकार होती है उसी प्रकार उसके मनमें पश्चात्तापकी भावना भी जगती है। अपनी भूलोंको स्वीकार करनेमें उसे कोई लज्जा नहीं। इसके साथ-ही-साथ उसकी बुद्धि भी पर्याप्त रूपसे विकसित है। अँधेरी रातमें उसके पतिका हाथ पकड़कर उन्हें घर-तक कौन पहुँचा गया है, यह समझनेमें उसे देर नहीं लगती।

षोड़शीके लिए हेमके मनमें विशेष रूपसे ममता है। चंडीगढ़में वह जबतक रहती है, तब तक उसे अपनी इस सखीकी रक्षाका ध्यान रहता है। गाँवके बाहर जानेपर भी वह उसकी चिंता रखती है। षोड़शीको विपत्तिमें छोड़कर वह नहीं जाना चाहती, और जब वह जाती भी है तो यह आग्रह करके—"इतनी बात आज कह दो बहिन कि अगर कभी अपने आदमीकी ज़रूरत पड़े तो इस प्रवासी छोटी बहिनको याद करोगी।"

हेमकी माँ पूरे कथानकमें पार्श्व-चरित्र मात्र हैं। उनका व्यक्तित्व औसत दर्जेका होते हुए भी कोमल है। अपनी लड़की-दामादके लिए वह प्राणतक देनके लिए तैयार है। घरकी शांति-सुरक्षाके लिए भी वह सदैव व्याकुल रहती हैं। अकारण किसीकी निंदा करना उन्हें अच्छा नहीं लगता। षोड़शीकी भलाई न चाहनेपर भी वे उसकी बुराई नहीं सुन सकतीं। षोड़शी-के लिए वह निर्मलसे कहती हैं, "नहीं बेटा, झूठ क्यों कहूँ, उसके चेहरेकी याद आते ही मुझे न मालूम क्यों रुलाई आती है। न मालूम ये लोग मिलकर क्यों उसके पीछे पड़े हैं।"

'देना पाउना'के नारी-समाजकी उक्त व्याख्या करनेके उपरांत हम संक्षेपमें कह सकते हैं कि शरत् बाबू अपने इस उपन्यासमें चरित्रांकनका वह मर्मस्पर्शी विधान नहीं दिखा सके जो उनकी अन्य कृतियोंमें द्रष्टव्य है। षोड़शीका चरित्र, अवश्य ही, मर्मस्पर्शी न होते हुए भी स्मरणीय है। अन्य परंपरागत नायिकाओंसे भिन्न, उसका व्यक्तित्व संभवतः शरत्के नारी-चरित्रोंमें सबसे सशक्त और कठोर है। अपनी इस भिन्नताके कारण ही उपन्यासकारके विस्तृत नारी-समाजमें उसका स्थान सुनिर्दिष्ट एवं महत्त्व-पूर्ण है।

पथके दावेदार

[पथेर दावी]

●

संपूर्ण शरत्-साहित्यमें 'पथेर दावी' ('पथके दावेदार') का अपना विशिष्ट स्थान है। इसके महत्त्वका प्रमुख कारण है कि प्रायः यही एक शरत् बाबूका ऐसा उपन्यास है, जिसमें उन्होंने मानव-जीवनके रसमय भावावेगोंके साथ राजनीतिक क्रांतिका बड़ी कुशलतासे संगंफन किया है। कथाकी पृष्ठभूमि निश्चित रूपसे राजनीतिक है। प्रत्येक स्थलपर कुछ न-कुछ राजनीतिक चर्चा पाठकको इसमें मिलेगी। पर इस पृष्ठभूमिपर उपन्यासकारने जो विभिन्न पात्र-पात्रियोंके रागात्मक मनोभावोंका अंकन किया है, वह एक साथ ही हमारे मनकी उदात्त वृत्तियोंको आकृष्ट कर लेता है। क्रांति—राजनीतिक सत्ताको आमूल परिवर्त्तित करनेके दृढ़ निश्चय—का एक बोझिल वातावरण लिये हुए भी उपन्यास स्नेह और प्रेम-के परागसे सुगंधित है। 'पथके दावेदार' के लगभग सभी पात्र-पात्री—यहाँतक कि वज्र सदृश कठोर सव्यसाची भी—एक ओर भारतवर्षको स्वाधीन करानेकी प्रतिज्ञाका आचरण करते हैं, और दूसरी ओर अपनी सहज मानव-सुलभ रागात्मिका वृत्तियोंको अभिव्यक्ति देते हैं। क्रांति और शांतिकी इस अभिसंधिमें कथाकी रसमयता अतुलनीय है। अपने राज-नीतिक विचारोंके कारण यह पुस्तक एक बार ज़ब्त कर ली गई थी, परन्तु अपनी मर्मस्पर्शी शक्तिके कारण इस उपन्यासने भारतवर्षके प्रायः सभी शिक्षित सहृदयोंके मनमें घर कर लिया है।

'पथेर दावी' की कथा बहुत संक्षपमें इस प्रकार है—एम० एस-सी० में उत्तीर्ण होनेके पश्चात् अपनी वृद्ध और अत्यन्त निष्ठावान माँसे किसी

प्रकार आज्ञा लेकर जीविकोपार्जनके लिए अपूर्व रंगून पहुँचता है। माँके समान ही अपूर्व भी परम धार्मिक एवं आचरणशील है। बर्मा पहुँचकर सारे आचरणोंका पालन करते हुए वह किसी प्रकार अपना जीवन-निर्वाह प्रारंभ करता है, परन्तु उसका नौकर तिवारी ऊपरके कमरेमें रहनेवाली क्रिश्चियन लड़की भारती जोसेफसे झगड़ा कर बैठता है। अपूर्वको भी इस झगड़ेमें साझीदार होना पड़ता है। पर यह नियतिका व्यंग्य है कि अपूर्व और भारतीका संबंध, जो आपसमें झगड़ेसे प्रारंभ होता है, धीरे-धीरे समय व्यतीत होनेपर दृढ़ मैत्रीका रूप धारण कर लेता है।

भारती एक ऐसी गुप्त समितिकी मंत्री बन जाती है, जिसकी स्थापना प्रसिद्ध क्रांतिकारी सव्यसाचीने की है, और जिसकी सभानेत्री उसकी प्रेयसी सुमित्रा है। इस समितिका उद्देश्य है भारतवर्षमें स्वाधीनता लाना। भारती अपूर्वको भी इस समितिका सदस्य बना लेती है। पर अपूर्व बहुत डरपोक है और अपनी नौकरीको बचानेके लिए इस गुप्त समितिका सारा भेद खोल देता है। इस अपराधका दंड देनेके लिए अधिकार-समितिकी बैठक होती है, जिसमें सर्वसम्मतिसे अपूर्वको मृत्युदंड दिया जाता है। पर सव्यसाची, यह सोचकर कि अपूर्वकी सारी कमज़ोरियोंके बावजूद भारती उससे प्यार करती है, समितिके अन्य सदस्योंके रुष्ट हो जानेपर भी अपूर्वको बचा लेता है। बर्माकी ज़िंदगीसे ऊबकर अपूर्व घर वापस चला जाता है।

इधर 'अधिकार-समिति' का संगठन शिथिल होने लगता है। सुमित्रा भारती और सव्यसाचीके स्नेह-संबंधको ग़लत समझकर जावा जानेके लिए प्रस्तुत होती है। भारती समितिकी कार्यप्रणालीसे मतभेद प्रकट करती है। नवतारा पहले ही अपनी गृहस्थी बसाकर चल चुकी है। इसके अतिरिक्त समितिकी अन्य पूर्वी शाखाओंमें भी उपद्रव प्रारंभ हो जाते हैं। सव्यसाची इन सबको दबानेके लिए सिंगापुर जानेको तैयार होते हैं। इसी बीच अपूर्व भी रंगून आ जाता है। बेहाला-उस्ताद शशि, अपूर्व, भारती और सुमित्रासे घोर तूफानी रातमें ही बिदा लेकर सव्यसाची चल देते हैं।

सहसा एक गहरी साँस लेकर शशि बोल उठा—'बुरे दिनोंके साथी हे मित्र, तुम्हें नमस्कार !'

भारती उसी तरह पाषाण-प्रतिमाकी तरह अँधेरेमें खड़ी रही। शशिकी बात न तो उसे सुनाई ही दी और न वह यही जान सकी कि ठीक उसीकी तरह एक दूसरी नारीकी भी आँखोंमें आँसूकी धार बह रही है।"

'पथेर दावी' के इस बड़े सजल कथानकमें पाँच नारी पात्रोंका चरित्रांकन हुआ है—भारती, सुमित्रा, नवतारा, अपूर्वकी माँ और भारतीकी महरी। इन पाँच नारी-पात्रोंमें-से भारती और सुमित्राके चरित्र प्रमुख हैं। नवतारा और अपूर्वकी माँ पार्श्व-चरित्र-मात्र हैं। भारतीकी महरीका यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है। उपन्यासकी प्रमुख संवेदना है भारतीका व्यक्तित्व, और उसीको अंकित करनेमें शरत् बाबूने सर्वाधिक कुशलता दिखाई है। 'पथेर दावी' जैसे भारतीकी ही कथा है—उसके विभिन्न रूपोंमें—अपूर्वकी प्रेयसी, सव्यसाचीकी बहिन, सुमित्राकी सहायिका और अंततः 'अधिकार-समिति' की संयोजिकाके रूपमें भारती ही सदैव हमारी आँखोंके सम्मुख रहती है।

भारती सबसे पहले हमें एक नम्र, लज्जाशील और सुशील युवतीके रूपमें अपने पिताके दुर्व्यवहारके लिए अपूर्वसे क्षमा माँगती हुई दिखाई देती है। उसकी यही मूर्त्ति पाठकके हृदयमें जैसे बस जाती है, और वह भी विभिन्न एवं बदलती हुई परिस्थितियोंमें अपने इन चारित्रिक गुणोंको सदैव सुरक्षित रखती है। उपन्यासका प्रारंभिक अंश भारती और अपूर्वके विभिन्न पारस्परिक संबंधोंको ही चित्रित करता है। वस्तुतः इन दोनों प्रेमियोंके बीच संक्रांति काल दो अवसरोंपर उपस्थित होता है। पहली बार भारतीके हृदयमें अपूर्व और अपने पिताको लेकर द्वन्द्व खड़ा होता है, और दूसरी बार अपूर्व तथा 'अधिकार-समिति' एवं सव्यसाचीके प्रति अपने उत्तर-दायित्वको लेकर। दोनों बार अंततः उसकी अंतश्चेतनामें अवस्थित उसका अपूर्वके प्रति प्रेम ही विजयी होता है, परन्तु इस संघर्षमयी परि-स्थितियोंमें भी भारती अपना कर्त्तव्य बड़ी कुशलतापूर्वक निभाती है।

वह पिताका साथ देते हुए भी अपूर्वको कष्ट नहीं देना चाहती। उसके विरुद्ध झूठी गवाही देनेके कारण उसे जो रुपया दंड-स्वरूप देना पड़ा था, उसे वह गुप्त रूपसे उसके कमरेमें डाल देती है। इस प्रकार उसे दोनों ही ओरसे कष्ट उठाना पड़ता है—पिताका साथ देनेके लिए मिथ्या भाषणके फलस्वरूप उत्पन्न हुआ मानसिक कष्ट, और अपूर्वको गुप्त रूपसे रुपये देने-का आर्थिक कष्ट ! यहाँ स्मरणीय है कि भारतीकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं है।

अपूर्वके लिए भारतीकी आत्मीयता एक स्थायी निधि है। अपने आपको पुलिसके ख़तरेमें डालकर भी वह अपूर्वके सूने कमरेकी रक्षा करती है। उस समय उसके मनमें भयकी स्थिति नहीं रहती। इसके बाद तो अपूर्वका सामान जिस ढंगसे भारती सजाती है, वह एक स्वजन-द्वारा ही संभव है। यहाँ शरत् जन्म-जन्मान्तरके प्रेमको अत्यंत दृढ़तापूर्वक मान्यता देते दिखाई देते हैं। अपूर्वकी प्रत्येक कठिनाईको भारती सुलझाती हुई चलती है—एक स्थिरबुद्धि गृहिणीकी भाँति। 'इस लड़कीकी प्रखर बुद्धि और सब तरफ़ अद्‌भुत तीक्ष्ण दृष्टि रखनेकी शक्ति' वस्तुतः इतनी सहज, सरल और आकर्षक है कि उपन्यासके इस स्थलपर आकर बहुतसे सहृदय नवयुवक पाठक यदि अपूर्वकी इस स्थितिसे ईर्ष्या करने लगें तो आश्चर्यकी कोई बात नहीं।

भारतीके चरित्रकी सबसे बड़ी विशेषता है उसकी अहेतुक दया। मोह-ममता अपने अत्यधिक निखरे हुए स्वरूपमें उसके मनमें उसी प्रकार सहज और स्वाभाविक हैं, जिस प्रकार रक्त और मांस उसके शरीरमें सहज हैं। चेचक निकलनेपर तिवारीकी परिचर्या भारती जिस तरह करती है, उस तरह केवल एक आत्मीय ही कर सकता है। फिर तिवारीसे उसका कोई विशेष संबंध भी नहीं। एक निपट अनजान पड़ोसीके नौकरकी भयंकर और संक्रामक रोगमें इस प्रकार सेवा-शुश्रूषा केवल वही कर सकते हैं, जिनके मनमें सभी भूतप्राणियोंके लिए दयाका भाव वर्त्तमान हो। भारतीके व्यक्तित्वका यह पहलू हमें अनायास ही तथागतकी अहिंसा, जीव-

मैत्री और करुणाकी महिमाका स्मरण दिला देता है। अपूर्वके लिए उसने जो कुछ किया, उसके संबंधमें तो यह भी कहा जा सकता है कि जिस पुरुषने उसके प्रथम यौवनकी मादकतामें हिस्सा बँटाया, उसके लिए वह जो कुछ भी करे, थोड़ा है। परन्तु भीषण रोगग्रस्त तिवारी और रंगूनके तमाम निम्नजातीय कुली-मज़दूरोंकी उसने जो सहायता की, वह निष्काम भावसे प्रेरित होकर ही। फिर सबसे बड़ी बात यह है कि अपने इन पुण्य-कृत्योंको भी वह निज स्वार्थ-प्रेरित ही मानती है। यहाँ हमें उसके चरित्रकी उच्चाशयता स्पष्ट रूपसे दिखाई देती है। अपूर्वसे वह कहती है, (इस गंदी बस्तीमें) 'हम सब अपनी ही गरजसे आते हैं अपूर्व बाबू, इस बातका अनुभव करना ही हमारी अधिकार-समितिकी सबसे बड़ी साधना है।'

वस्तुतः भारती उन सब चीज़ोंसे घृणा करती है, जिन्हें हम जीवनकी कुरूपताएँ कहते हैं। किसी भी प्रकारकी नृशंसता, निर्दयता उसे सह्य नहीं। जीवनमें जो कुछ भी अश्लील है, असत् है, उसे वह अपने निकट नहीं आने देना चाहती। उसके इस चारित्रिक गुणका मूल्य तब और बढ़ जाता है, जब हम देखते हैं कि वह गलदश्रु भावुकतासे दूर हटकर व्यावहारिक दृष्टिकोण भी अपनाती है। एक ओर वह पतित और शराबी कुली-मजदूरोंको यह कहकर संगठित करती है—'यह सब तुम लोग क्यों बर्दाश्त करते हो? एक बार साथ खड़े होकर कहो, यह अत्याचार अब नहीं सहेंगे। फिर देखें, कैसे तुम्हारे बदनपर हाथ उठाते हैं। सिर्फ़ एक बार—एक बार अपनी सच्ची ताक़तको देखना सीख जाओ, और तुम लोगोंसे हमें कुछ नहीं चाहिए।' परन्तु दूसरी ओर वह इस बातका भी ध्यान रखती है कि कहीं प्रतिशोधके आवेशमें ये नीच जातिके अशिक्षित लोग कोई सामूहिक हानि न कर बैठें। एक मिस्त्रीके मुँहसे यह सुनकर कि वह एकमात्र पुरज़ा ढीला करके सारा कारख़ाना तहस-नहस कर सकता है, भारती डरकर कहती है—'नहीं-नहीं, दुलाल, ऐसा करनेकी ज़रूरत नहीं। ऐसा मत करना। इससे तुम्हीं लोगोंका नुकसान है! शायद बहुत-से आदमी मारे जायँ—शायद—नहीं नहीं, ऐसी बात सपनेमें भी न सोचना। इससे

बढ़कर और पाप नहीं।' इन शब्दोंके पीछे भारतीके हृदयके जो संस्कार हैं, वे नितांत स्पष्ट हैं। वह स्वयं सदैव सत्यके मार्गपर चलती है और सबको उसी मार्गपर चलनेकी सलाह देती है। भारतीकी जिस परोपकार-बुद्धिकी ओर हमने अभी संकेत किया, उसका व्यावहारिक रूप हमें तब दिखाई देता है, जब हम रंगूनकी उक्त निम्न श्रेणीके व्यक्तियोंकी दुर्दशाका अनुमान लगा लेते हैं। जिन व्यक्तियोंको भलाईकी सबसे अधिक आवश्यकता है, वे कृतघ्न होते हुए भी, भारतीसे भलाईकी आशा रख सकते हैं, इस बातको जानकर अपूर्वको भले ही कुछ विस्मय हुआ हो, परन्तु भारतीके मानसिक संस्थानको समझनेवाले पाठकके लिए यह कुछ भी विस्मयकी वस्तु नहीं।

जैसा हम पहले कह चुके हैं, निर्दयता या नृशंसताके किसी भी कार्यक्रमसे भारती सहमत नहीं। यहाँ उसके हृदयपर परम वैष्णव शरत्की मान्यताओंका कितना गहरा प्रभाव है, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं। यह कोमल मन उसे उपन्यासकारकी परंपरागत नायिकाओंसे विरासतके रूपमें मिला है। अपनी इस कोमलताकी रक्षाके लिए, वह 'अधिकार-समिति' छोड़ने तकको प्रस्तुत हो जाती है; क्योंकि उसके सदस्य 'बड़े भयंकर और निर्दयी हैं।' यहाँतक कि अपने सबसे अधिक श्रद्धेय—सव्य-साचीसे भी वह निर्भीकतापूर्वक मतभेद प्रकट करती है। डॉक्टर कहते हैं—'तुम्हारी तरफ़ देखनेसे ही मालूम होता है कि इन सब कामोंके लिए तुम नहीं हो, तुम्हें इस काममें खींच लाना अच्छा नहीं हुआ।' इसके उत्तरमें भारतीका सजल और स्निग्ध आग्रह है—'इसमें तुम भी मत रहो भैया।' आगे चलकर एक लंबे कथोपकथनमें वह सव्यसाचीसे आग्रह करती है—'भगवान्‌के इतने बड़े सत्यपर पहुँचनेके लिए इस निष्ठुर मार्गके सिवा और कोई मार्ग खुला ही नहीं है, यह मैं किसी तरह भी नहीं सोच सकती.....निष्ठुरताके इस बार-बार चले हुए मार्गसे तुम अब मत चलो। वह द्वार शायद आज भी बंद होगा, लोगोंके लिए उसे तुम खोल दो, जिससे हम लोग इस संसारमें सभीसे प्रेम करते हुए उस मार्गका अनुसरण करके चलते रहें।' इन सबल

शब्दोंके पीछे भारतीके मनकी अहिंसा-वृत्ति स्पष्ट बोल रही है। ज़िंदगीमें जो कुछ भी हत्याके रक्तसे सना हुआ है, वह सब उसके लिए त्याज्य है, घृण्य है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि भारती भीरु है अथवा अपने आपको ख़तरेमें नहीं डालना चाहती। वस्तुतः उसका मानसिक संस्थान ही ऐसा है, जिसमें असत्‌के लिए कोई स्थान नहीं। उसका यह दृढ़ विश्वास है कि अंततोगत्वा हिंसाकी कभी विजय नहीं होती। अपनी इस आस्थाको बड़ी शक्तिके साथ वह इस प्रकार व्यक्त करती है—'भैया, तुम्हारा चुना हुआ यह ख़ून-ख़राबीका रास्ता किसी भी तरह ठीक नहीं। अतीतकी चाहे जितनी नजीरें तुम दिखाओ, मानस-जीवनमें यह विधान हरगिज़ सत्य नहीं हो सकता कि जो अतीत है, जो बीत चुका है, हमेशा सिर्फ़ वहीं छाती ठोककर अनागतको नियंत्रित करेगा। तुम्हारा मार्ग ठीक नहीं है यह, फिर भी तुम्हारी इस सब कुछ विसर्जन कर देनेवाली देशकी सेवाको ही मैं सिर-माथे लेती हूँ।' यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि ऐसे स्थलोंपर, भारतीके सम्मुख डॉक्टर जैसे शक्तिशाली व्यक्तित्वको भी दबना पड़ता है, और वह केवल उसकी दृढ़ निष्ठा एवं निष्काम स्नेहके कारण।

भारती सुमित्राके लिए मनमें असीम श्रद्धा रखती है। मगर जिस दिनसे उसने सुमित्राको विकराल रूपमें देखा, उसी दिनसे उसकी भक्ति भयमें परिणत हो गई है। अंततोगत्वा अधिकार-समितिकी संहारक प्रवृत्ति देखकर वह उससे भी अपना संबंध तोड़ लेती है। अत्यन्त व्यग्र होकर वह डॉक्टरसे कहती है—'माफ़ करो भैया, तुम्हारे इस ख़ून-ख़राबीके कामें मैं अब नहीं रहनेकी। तुम्हारी गुप्त समितिका काम अब मुझसे नहीं हो सकता।' भारतीकी इस कोमल चित्तवृत्तिके साथ-साथ मानवताके प्रति उसकी असीम श्रद्धा घनिष्ठ भावसे निबद्ध है। वह मनुष्यको सबसे महान् मानती है; उससे ऊपर कुछ भी नहीं। इसीलिए डॉक्टर आदमीको जब जानवर कहकर संबोधित करते हैं, तो वह इसका तीव्र विरोध करती है। उसका कहना है—'कारख़ानोंके मज़दूर-मिस्त्रियोंकी हालत तो मैं अपनी आँखोंसे देख आई हूँ। उनका पाप, उनकी कुशिक्षा, उनकी पशु-जैसी अवस्था—

इनमेंसे किसीका भी रंच-मात्र प्रतिकार अगर ज़िन्दगी भरमें कर सकी, तो उससे बढ़कर सार्थकता और क्या हो सकती है !' मानवताके भविष्यमें अत्यधिक आशावादी होते हुए वह आगे कहती है—'आदमीकी सारी-की-सारी खोज अभी ख़त्म नहीं हो गई है। एकके मंगलके लिए दूसरेका अमंगल करना ही होगा, इसे मैं किसी भी तरह चरम सत्य नहीं मान सकती—तुम्हारे कहनेपर भी नहीं।'

भारतीका हृदय अत्यन्त कोमल, उदार एवं मानवताका प्रेमी है। उसके हृदयमें राष्ट्रियता घर कर गई है, परन्तु उसकी इस राष्ट्रियताके बावजूद उसके मनमें किसी जाति या मतके प्रति विद्वेषकी भावना नहीं है। राष्ट्रियताके ऊपर भी मानवताका आदर्श उसके लिए अधिक ग्राह्य है। इसीलिए सारी जातिके विरुद्ध किसीका भी विद्वेष उसे अत्यन्त व्यथित कर देता है। जब सव्यसाची सारी अँगरेज़ जातिकी अत्यन्त कटु शब्दोंमें निंदा करने लगते हैं, तो भारतीके लिए यह असह्य हो उठता है। उसके विशाल हृदयमें इस प्रकारकी संकीर्णताओं और संकुचित वृत्तियोंके लिए कोई स्थान नहीं। उसके निकट 'देश' से भी बढ़कर 'मनुष्य' है, और उसीके शब्दोंमें 'मनुष्यके साथ मनुष्य क्या किसी भी तरह मित्रता नहीं कर सकता ?' एक ओर वह अँगरेज़ शोषकोंको भारतसे निकालना चाहती है, पर दूसरी ओर वह इस विदेशी जाति-द्वारा किये गये उपकारोंको भुला भी नहीं देती। इस प्रकार भारतीका निरपेक्ष एवं निष्पक्ष विचारक-रूप सचमुच ही महिमा-मय हो उठता है। सव्यसाचीके सम्मुख उसे चेतावनी-सी देती हुई वह कहती है—'हृदयमें इतना विद्वेष भरकर तुम अँगरेज़ोंका नुकसान शायद कर भी सको, पर उससे भारतवासियोंका कल्याण नहीं होगा, यह निश्चय समझ लेना।' भारतीके इस प्रकारके मानसिक संस्थानमें किसी भी असत् प्रवृत्तिका एकाएक प्रवेश नहीं हो सकता, यह हमें स्पष्ट दिखाई देता है। 'अधिकार-समिति' के षड्यंत्रकी भापमें उसका दम घुटने लगता है, यह वह स्वयं बताती है। सेक्रेटरी होते हुए भी उसकी कार्य-पद्धतिपर उसे ज़रा भी श्रद्धा नहीं। वह स्पष्ट कहती है—'यह एक दिनके लिए भी मैंने कभी नहीं

सोचा था कि तुम्हारी अधिकार-समितिका मार्ग इतना बड़ा पापका मार्ग है....। मैं निश्चय जानती हूँ, तुम्हारे इस दयाहीन, निष्ठुर, ध्वंसके मार्गसे कल्याण हरगिज़ नहीं हो सकता। मेरा जो स्नेहका मार्ग है, मेरा जो करुणाका मार्ग है, मेरा जो धर्म-विश्वासका मार्ग है—वही मार्ग मेरे लिए श्रेय है, वही मार्ग मेरे लिए सत्य है।' इन शब्दोंमें, ऐसा जान पड़ता है, मानो भारतीका सारा व्यक्तित्व उतर आया हो। प्रतिहिंसामें उसका विश्वास नहीं, हिंसामें उसकी आस्था नहीं! 'धर्म और शांतिका मंत्र' ही उसके निकट ग्राह्य है और उसकी प्रतिष्ठाकी उसे आशा भी है।

उक्त विश्लेषणसे स्पष्ट है कि भारतीका निष्कलुष व्यक्तित्व जीवन-के महान् आदर्शोंसे प्रेरित है। वह उन सभी वस्तुओंको चाहती है, जो अपनी प्रकृतिमें शुभ हैं। नैतिकताकी दृष्टिसे, क्रिश्चियन होते हुए भी वह परम वैष्णव है। यहाँ तक कि वह अपने अग्रज-सदृश सव्यसाचीके साथ भी रातमें अकेले रहते हुए संकोचका अनुभव करती है। शशि और नवतारा-के विवाहका वह विरोध करती है, क्योंकि वह उसके संस्कारोंके विपरीत है। इस प्रकार वह नर-नारीके पारस्परिक संबंधको एक पवित्रता देना चाहती है, मुक्त भोगका रूप नहीं। भारतीय संस्कारों और संस्कृतिकी वह हामी है। उसका नैतिक धरातल बहुत ऊँचा है। सव्यसाचीसे वह कहती है—'नर-नारीका प्रेम क्या तुम्हारे समान सभीके लिए मज़ाक़का विषय है भैया, जो ताशकी हार-जीतके समान इसकी हार-जीतमें भी अट्टहास करनेके सिवा तुम्हें और कुछ नहीं सूझता?' वस्तुतः वह ऐसे सभी स्थलोंपर सव्यसाचीका विरोध करती है, जहाँ उसके मानव-जीवनके महान् आदर्शोंके विरुद्ध कोई बात कही जाती है। डॉक्टर द्वारा सत्यासत्य-की दी गई परिभाषा उसके निकट ग्राह्य नहीं। समस्त अँगरेज़ जातिके प्रति विद्वेष, सारी प्राचीन संस्कृतिका विरोध—ये कुछ ऐसी बातें हैं, जहाँ वह अपने श्रद्धेय 'भैया' से अलग अपना स्वतंत्र मत रखती है। प्राचीनताके पक्षमें वह कहती है—'कोई एक संस्कार या रीति-नीति सिर्फ़ प्राचीन

होनेके कारण ही क्या निष्फल, वृथा और त्याज्य हो जाती है ? तो मनुष्य बिना किसी संशयके दृढ़ताके साथ खड़ा काहे पर रहेगा, भैया ?'

भारतीका व्यक्तित्व अपने-आपमें अत्यन्त कोमल-सजल होते हुए भी पर्याप्त रूपसे बुद्धिवादी है। उसकी तर्कशैली अत्यन्त प्रखर एवं सुलझी हुई है। अपने विचारोंको वह एक निखरे हुए रूपमें श्रोताके सम्मुख रखती है और उसकी अभिव्यक्ति-प्रणाली इतनी मार्मिक है कि विरोधी पक्षको उसकी बातें बहुत ध्यानसे सुननी पड़ती हैं। तर्कोंमें वह हठधर्मी कहीं नहीं होती; उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति उसके गहन चिंतनकी सूचक है। उसके इन्हीं गुणोंके कारण पारस्परिक विवादमें सव्यसाचीको भारतीसे स्थान-स्थानपर दबना पड़ता है। अपूर्वको अधिकार-समितिका उद्देश्य समझाते हुए वह कहती है—'हम सभी राहगीर हैं, पथिक हैं। मनुष्यको मनुष्यता-की राहपर चलनेके सब तरहके दावे या अधिकार मानते हुए हम समस्त बाधा-विघ्नोंको रौंदते हुए चलेंगे। हमारे बाद जो लोग आयेंगे, वे बिना किसी उपद्रवके चल सकें, उनकी अबाध गतिको कोई रोक न सके, यही हम लोगोंका प्रण है। आयँगे आप हमारे दलमें ?' भारतीके इन वाक्योंमें वह शक्ति है, जो बड़े-बड़े नेताओंके लंबे और ऊबानेवाले भाषणोंमें नहीं होती। यही नहीं, उसके सारे कथोपकथनोंके पीछे कोई एक ऐसी आस्था बोलती है, जिसके कारण उसके श्रोताओंको उसके सम्मुख झुकना पड़ता है। पतिके कर्त्तव्योंके संबंधमें वह अपूर्वसे कहती है—'आपकी निष्ठुरताके बदले जितना ही वह अपना कर्त्तव्य पालन करेगी, उतने ही आप उसकी दृष्टिमें छोटे होते जायँगे। और, स्त्रीकी दृष्टिमें अश्रद्धेय और हीन होनेसे बढ़कर दुर्भाग्य संसारमें और है ही नहीं, अपूर्व बाबू।' भारतीकी विश्ले-षण-प्रियता और बौद्धिकताके और भी बहुतसे उदाहरण उपन्यासमें स्थान-स्थानपर मिल सकते हैं। वस्तुतः उसका प्रत्येक कथन उसकी मानसिक प्रौढ़ताका परिचायक है।

भारतीके व्यक्तित्वकी एक प्रमुख विशेषता है, उसकी सर्वतोमुखी सहिष्णुता। वह इस बातका निरंतर ध्यान रखती है कि कहीं उसके किसी

कार्यसे कोई रुष्ट या असंतुष्ट न हो जाय । तिवारीकी अत्यन्त स्नेह-भाजन होनेपर भी 'वह न तो उसके रसोईघरमें जाती थी और न कोई चीज़ ही छूती थी।' सबको प्रसन्न देखना ही उसका जीवनमें एकमात्र उद्देश्य जान पड़ता है । इसीलिए दूसरोंकी सुविधाके लिए वह सदैव चिंतित रहती है । अपूर्वकी तो छोटी-से-छोटी बातका उसे ध्यान है । जीवनके अनेक छोटे-बड़े कष्टोंके प्रति सहिष्णु होकर भारतीने जो आदर्श गृहिणीत्व प्राप्त किया है, उसका अंदाज़ हमें तभी लग सकता है, जब हम उसकी माता-पिताकी मृत्युके उपरांत असहाय अवस्थाकी मनोयोगपूर्वक कल्पना करें । उपन्यासकारने उसके इस जीवनपर विशेष प्रकाश नहीं डाला है, पाठकोंकी बोधगम्यतापर छोड़ दिया है । परन्तु उसकी सहनशीलताका आभास हमें उसके व्यक्तित्व-के प्रायः सभी रूपोंमें मिलता है ।

अधिकतर लोग दूसरोंकी विचारधाराके प्रति अनुदार होते हैं; किंतु भारती इस क्षेत्रमें भी उदार एवं सहिष्णु है । वह सबके मतोंका आदर करती है, भले ही वह उनका विरोध करती हो । प्राचीनतम परंपराओंसे लेकर नवीनतम आचारोंका वह अध्ययन करती है । और बड़ी ही सहृदयता-पूर्वक वह उनपर अपना मत देती है । सव्यसाची-द्वारा देशके राजनीतिज्ञों-पर लगाये गये आक्षेपोंका वह दृढ़तापूर्वक उत्तर देती है । यही नहीं, वह बड़े स्पष्ट शब्दोंमें यह भी कह देती है—'मत और मार्ग अलग होनेसे किसी-पर व्यंग्य कसना शोभा नहीं देता ।'

भारतीके चरित्रके उपर्युक्त विश्लेषणसे स्पष्ट है कि नारी-जीवनकी अत्यन्त उदात्त भावनाओंका समाहार उसके व्यक्तित्वमें हुआ है । तीखी-से-तीखी बौद्धिकता एवं सरल-से-सरल मनोवेग दोनों ही उसके जीवनमें समान रूपसे सहज हैं । पर इसे चाहे नियतिका व्यंग्य कहिये या प्रणयकी अद्भुत शक्ति कि इतने महिमामय व्यक्तित्वका स्नेह अपूर्व जैसे सरल एवं निरीह (या मुग्ध ?) प्राणीपर केन्द्रित हुआ, किंतु इन दोनों हृदयोंके मिलनका प्रमुख कारण संभवतः दोनोंकी निश्छलता है ।

भारती अपूर्वको उसकी सारी अच्छाइयों तथा बुराइयोंके साथ प्यार करती है। कथाके प्रारंभमें शरत् बाबूने भारतीका अपूर्वके प्रति जो विचित्र एवं अस्थिर आचरण दिखाया है, वह मनोविज्ञानके गूढ़ तत्त्वोंपर आधारित है। कहीं अपूर्वके सम्मुख भारती अपना आत्माभिमान प्रदर्शित करती है और कहीं आत्मसमर्पण, परन्तु उसके कहीं-कहीं विरोधी लगनेवाले व्यवहारोंमें भी आत्मीयता सर्वत्र समान रूपसे दिखाई देती है। अपूर्वके छोटे-से-छोटे कार्योंको वह स्वयं करती है या किसीसे करवा देती है, और इसीलिए प्रारंभमें ही वह अपूर्वके विश्वासको अपना लेती है। अपूर्व मानो उसके नियंत्रणको चुपचाप स्वीकार कर लेता है, और भारती एक प्रकारसे उसकी स्थानीय रक्षक बन जाती है। कहीं-कहीं तो अपूर्वको स्पष्ट रूपसे भान होता है कि उसके लिए इतना सब कुछ माँ के सिवा और कोई नहीं करता। मगर जब कभी भारती खीझ उठती है तो अपूर्वको कहना पड़ता है कि उसको तो समझना ही मुश्किल है, परन्तु इन सब बातोंके बावजूद यह 'कड़ी लड़की' भारती अपूर्वसे प्रेम करने लगी है, इस तथ्यको वह स्वयं जानती है। इसीलिए वह अपूर्वके सम्मुख विशेष संकोचका आचरण नहीं करती, यद्यपि अग्रज-सदृश सव्यसाचीके साथ अकेले रात्रि व्यतीत करनेमें उसे आपत्ति होती है।

धीरे-धीरे भारती अपूर्वकी सारी ज़िम्मेदारी अपने सिर ले लेती है। और इसे चाहे पूर्व संस्कारोंका स्नेह कहिये या साहचर्यजनित मोह, जिसके कारण 'आपद-विपद्‌में उसके लिए इतनी बड़ी निःसंशय, निर्भर जगह इस प्रदेशमें और कहीं नहीं है', इस सत्यको स्वतःसिद्धकी भाँति अपूर्वके हृदयने हमेशाके लिए स्वीकार कर लिया है, यद्यपि भारती स्वयं इस स्नेह-संबंधको विधाता-द्वारा दिया हुआ मानती है। अपूर्वसे वह कहती है—'भगवान् ही बोझ लाद दें, तो शिकायत किसके विरुद्ध की जाय, बताइये ?...बुला लाये डॉक्टर बाबू, और अब झंझट उठाना पड़ रहा है मुझे। मुझे तो डर है कि ज़िन्दगी भर मुझको ही आपका बोझा न ढोना पड़े ?' इतना ही नहीं, भारतीका दृढ़ विश्वास है कि ईसाईकी लड़की होने-

पर भी अपूर्वको कभी-न-कभी उसके हाथका बनाया हुआ खाना खाना पड़ेगा। वह अपने अंतरतमकी इच्छाको व्यक्त करती है—"स्वभाव तो मेरा जायगा नहीं अपूर्व बाबू, कोई काम तो चाहिए ही। लेकिन आप जैसे अनाड़ीके ऊपर अगर सरदारी पा जाऊँ, तो और सब काम छोड़-छाड़ दूँ।"

केवल एक स्थानपर भारती और अपूर्वके प्रेममें व्याघात पड़ता है। वह तब जब अपूर्व सव्यसाची और अधिकार-समितिकी बुराई करता है और कुछ समय बाद अधिकार-समितिके गुप्त भेदोंको उद्घाटित कर देता है। इस समय भारतीके सम्मुख दो रास्ते हैं: या तो वह अपने प्रेमके सम्मुख देशसेवा एवं कर्त्तव्यके सिद्धांतोंकी बलि दे, या वह अपने इन उच्च आदर्शोंके लिए अपने प्रथम यौवनके रागात्मक उभारको असमय ही नष्ट कर दे, परन्तु वह इन दोनोंके बीचसे एक ऐसा मध्यम मार्ग चुनती है, जो इन दोनों-से अधिक कठिन एवं अधिक महान् है। वह अपने प्रेमकी भी रक्षा करना चाहती है, एवं अपने सिद्धांतोंकी भी। और इन दोनोंके लिए वह अपने प्रिय मिलन-जन्य सुखका त्याग करनेको प्रस्तुत हो जाती है। अपूर्वसे वह कहती है—'आपकी बात ही सच है, अधिकार-समितिमें आपके लिए स्थान नहीं होगा। भविष्यमें फिर कभी किसी भी बहाने मेरे पास आनेकी कोशिश न कीजिएगा।' इस समय कितने बड़े आत्मोत्सर्गका पर्व भारतीके सम्मुख आ उपस्थित हुआ है, इसे सहृदय जन भली भाँति जान सकते हैं।

अधिकार-समितिके प्रति अपूर्वका द्रोह देखकर भारतीका मन ग्लानि-से भर उठता है। उसे इस बातका क्षोभ होता है कि क्यों वह एक ऐसे दुर्बल व्यक्तिको अपना हृदय दे बैठी। प्रेमीके सम्मुख मानसिक दौर्बल्यकी यह कदाचित् तीव्रतम स्थिति होती है। पर भारतीको हम इस स्थितिमें भी अत्यन्त दृढ़ एवं स्थिर पाते हैं।

सारी अच्छाइयों-बुराइयोंके बावजूद भारती अपूर्वको प्यार करती है। नर-नारीके प्रेमकी महत्ताको वह भलीभाँति जानती है। इसीलिए जहाँ वह एक ओर अपने अपरिहार्य, दुर्दमनीय प्रेमके लिए पश्चात्ताप करती है—यह कहकर कि "मैं किस अभागेके चरणोंमें अपना सर्वस्व विसर्जन

किये बैठी हूँ", तथा अपूर्वको 'क्षुद्र, लोभी, संकीर्ण-हृदय तथा डरपोक' जैसे विशेषणोंके साथ संयुक्त करती है, वहीं उसे अपने इस प्रणय-व्यवहारसे संतोष भी है। सव्यसाचीके सम्मुख प्रथम बार अत्यन्त स्पष्ट शब्दोंमें इस प्रेम-संबंधका प्रकाशन करते हुए वह कहती है—'अपूर्व बाबू भी तो मुझसे प्रेम नहीं कर सके, मगर मैं तो कर सकी हूँ......भैया, इस विश्वविधानके प्रभु अगर कोई हों, तो उन्हें नारी-हृदयके इतने बड़े प्रेमका ऋण चुकानेके लिए अपूर्व बाबूको उसके हाथ सौंपना ही पड़ेगा।' पर यहाँ ध्यान देनेकी बात यह है कि भारतीके इस प्रेमकी पृष्ठभूमिमें ऐंद्रिकताका लेश भी नहीं है। वासनासे यह प्रेम उत्पन्न नहीं हुआ है। यदि भारती अपूर्वको पा सकती, तो उसका जीवन धन्य हो जाता; किंतु यदि उनकी स्त्री होकर वह घर-गृहस्थी नहीं कर पाती, तो इसका मतलब यह नहीं कि उसका जीवन व्यर्थ हो गया। इस प्रकार भारतीका यह प्रणय मात्र परिणय-का साधन नहीं है, वरन् वह स्वयं अपने-आपमें साध्य है। उसे किसी अन्य सार्थकताकी अपेक्षा नहीं। जैसा कि भारती स्वयं एक स्थानपर कहती है, उसकी आंतरिक इच्छा केवल अपूर्वको अपनी आँखोंके सामने रखनेकी है। जहाँ उसकी इस व्यवस्थामें अपूर्व कुछ व्याघात उत्पन्न करना चाहता है, वहीं वह उसे ज़हर खानेकी धमकी देती है।

भारतीके मनमें सव्यसाचीके प्रति अटूट श्रद्धा है। परिचय देकर वह उन्हें छोटा नहीं करना चाहती। वह सव्यसाचीको अग्रज-सदृश सम्मान देती है, और सव्यसाची भी उसे 'बहना' जैसे दुलारसे भरे हुए संबोधनका पात्र बनाते हैं। बहिनके समान ही वह सदैव उनकी रक्षाके लिए चिंतित रहती है—प्राण देकर भी उन्हें बचा लेना चाहती है।

भारती और सव्यसाचीकी घनिष्टताको देखकर सुमित्राके मनमें शंका उत्पन्न होती है, परन्तु जब वह इन दोनोंके निर्मल स्नेहका स्वरूप देखती है, तो उसे अपने विचारोंके लिए पश्चात्ताप होता है। जब सव्यसाची सिंगापुर जानेके लिए प्रस्तुत हो जाते हैं, तो भारतीके मनमें शोकका सागर

उमड़ पड़ता है, वह सहसा रोने लगती है। भारती और सव्यसाचीका यह स्नेह-संबंध सचमुच ही स्पृहणीय है। इन दोनों महिमामय व्यक्तित्वोंके बीच भाई-बहिनका यह रिश्ता ज़िंदगीकी वीरानगीमें सघन कुंजके समान है। व्यर्थके ढोंगोंके विरुद्ध परन्तु आचरणशील; चट्टानसे भी अधिक दृढ़, किंतु गुलाबसे अधिक कोमल; रागके सागरमें आकंठ डूबी हुई, किंतु फिर भी निष्काम—ऐसी है 'पथेर दावी' की भारती, जिसका चरित्र बहुत ही उज्ज्वल है। कष्ट-सहिष्णुता एवं धैर्य-शालीनता एवं सरलताकी प्रतिमूर्त्ति भारती शरत्‌के नारी-समाजमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

भारतीके उपरांत दूसरा प्रमुख नारी-चरित्र 'पथेर दावी' में सुमित्राका है। इस विदुषी रमणीका चरित्र उपन्यासमें अपेक्षाकृत कम अंकित हुआ है, पर है अत्यन्त प्रभावोत्पादक। उसका रूप आश्चर्यजनक है, कहीं भी कोई कमी नहीं। अपूर्व उसे देखते ही ताड़ जाता है कि नारीके द्वारा अगर किसी समितिका संचालन हो सकता है, तो वह यही होनी चाहिए। ऐसा जान पड़ता है, मानो शासन करनेके लिए ही उसका जन्म हुआ हो। उसके मुखसे निकला हुआ प्रथम वाक्य इस प्रकार है—'मनोहर बाबू, आप कोई कच्चे वकील नहीं हैं। आपका तर्क अगर असंबद्ध हुआ, तो मैं मीमांसा नहीं कर सकूँगी।' अनुपम रूप-वर्णनकी पृष्ठिभूमिमें ये शब्द पाठकके मन-पर गहराईके साथ चोट करते हैं। वह समझ जाता है कि इस बार नारीका जो रूप उसके सम्मुख आ रहा है, वह साधारण नहीं है। उपन्यासकारके शब्दोंमें—'उसके स्वल्प भाषणसे, उसके प्रखर सौन्दर्यके प्रत्येक पदक्षेपसे, उसके संयत गंभीर वार्त्तालापसे, उसके अचंचल आचरणकी गंभीरतासे, इस दलमें रहते हुए भी उसके दूरत्वको सब भीतर-ही-भीतर अनुभव करते थे।'

सुमित्राके व्यक्तित्वका एक पहलू उपन्यासमें अपेक्षाकृत अधिक उभर-कर आया है और वह है उसकी निष्ठुरता। उसका इतिहास भारतीको बताते हुए डॉक्टर कहते हैं—'संसारमें ऐसा कोई काम नहीं, जो वह न कर सकती हो। इक्कीस सालके तमाम संस्कारोंको जो एक दिनमें धो-पोंछकर

१४

साफ़ कर सकती है, उससे मैं डरता हूँ। लेकिन है बड़ी निष्ठुर।' जिस व्यक्तिको डॉक्टर 'निष्ठुर' कह सकते हैं, उसकी निष्ठुरता सिद्ध करनेके लिए किसी अन्य प्रमाणकी आवश्यकता नहीं। सचमुच सुमित्राके अक्षत रूपने उसे सबकी पहुँचसे दूर—निष्ठुर और निर्मम बना रखा है। आगे चलकर सुमित्राके व्यक्तितत्वका वर्णन करते हुए उपन्यासकार कहता है— 'सुमित्राको मित्रके रूपमें समझ लेनेका दुःसाहस किसी भी स्त्रीके लिए सहज नहीं—भारती भी उससे प्रेम नहीं कर सकी, परन्तु यह मानकर कि सब विषयोंमें वह असाधारण श्रेष्ठ है, उसने उसे अपने हृदयकी भक्ति अर्पित की थी; मगर उस दिन अपूर्वका चाहे जितना बड़ा अपराध क्यों न हो, नारी होकर इतनी आसानीसे उसकी हत्या करनेका आदेश देनेसे उसकी भक्ति असीम भयमें परिणत हो गई थी—बलिका पशु जैसे खून-सने खड्‌गके सामने डर जाता है, उसी तरह।' भारतीके ही समान 'पथेर दावी'के अनेक पाठकोंकी प्रतिक्रिया सुमित्राके संबंधमें इसी प्रकारकी हुई होगी, ऐसा सोचना नितांत स्वाभाविक है।

सुमित्राकी कर्त्तव्यपरायणता एवं निर्ममतापर विचार करते हुए भारती सोचती है, 'जिनके लिए अपने जीवनका मूल्य नहीं, राजद्वारमें कानूनन जिनके प्राण ज़ब्त हो चुके हैं, वे इसपर कैसे निर्भर करते ?' उसके जन्म, उसकी शिक्षा, उसके कैशोर और यौवनका विचित्र इतिहास, उसकी अनासक्तिकी अनतिवर्तनीय दृढ़ संसक्ति, उसका कर्त्तव्य-ज्ञान, उसका पाषाण हृदय—इन सबमें भारतीको मानो एक तरहकी संगति दिखाई देने लगती है। उसे मालूम होता है, स्नेह और करुणाके नाम सुमित्रासे कुछ चाहने और भीख माँगनेके समान मज़ाक़ दुनियामें और कुछ नहीं।

निष्ठुरताके अतिरिक्त सुमित्राके व्यक्तित्वमें सर्वत्र एक गहरी रहस्य-मयताकी छाप है, जिसमेंसे कहीं-कहीं उसका डॉक्टरके प्रति मौन प्रणय अवश्य झलक जाता है। उपन्यासकारके शब्दोंमें—'ज़्यादा बातचीत करनेकी उसकी प्रकृति ही नहीं। एक स्वाभाविक और शांत गांभीर्यके साथ वह हमेशा सबसे व्यवधान रखकर चलती है।' यह कहनेकी आवश्य-

कता नहीं कि उसका यह व्यवधान रखकर चलना ही उसे इतना रहस्यमय बनाता है। किसीसे अधिक आँख मिलाकर बात करना उसे पसंद नहीं। वादविवादोंके बीच वह प्रायः नीचेको निगाह किये, मूर्त्तिकी तरह स्थिर बैठी रहती है।

सुमित्राकी विचारधारा एकदम सुलझी हुई एवं स्पष्ट है। वह जो कुछ कहती है, वह सब काफ़ी सोच-समझकर। देश-सेवा उसके निकट जीवनका सबसे बड़ा आदर्श है। अपनी मित्रकी पत्नी नवताराको 'अधिकार-समिति' से वापस ले जानेके लिए आये हुए मनोहर बाबूसे वह कहती है—'स्त्री पतिके साथ नहीं रहना चाहती, देशकी सेवा करना चाहती है : इसमें अन्यायकी तो कोई बात नहीं दिखाई देती !' आगे चलकर वह अपूर्वसे भी अत्यन्त स्पष्ट शब्दोंमें कहती है—'देशसे बढ़कर मेरे लिए और कुछ भी नहीं है।'

किरणमयी और अभयाके समान सुमित्रा भी मूलतः विद्रोहिणी है। नारीके ऊपर पुरुषके एकछत्र अधिकारका वह तीव्र विरोध करती है। सुमित्रा प्रेमकी स्वाभाविक गतिको अधिक श्रेयस्कर मानती है। नर-नारी-के मनका अनुराग अपने प्राकृतिक रूपमें बहे, यही उसकी धारणा है। अपूर्वसे वह कहती है—'समाज और वंशके नामपर व्यक्तियोंको अबतक बलि किया जाता रहा है, पर फल उसका अच्छा नहीं हुआ। आज वह नहीं चल सकता। प्रेमकी सबसे बड़ी आवश्यकता उत्तर-पुरुषके लिए न होती, तो ऐसे ज़बरदस्त स्नेहकी व्यवस्था उसके अंदर टिक ही नहीं सकती थी। विवाहित जीवनके इस व्यर्थ मोहकी मायासे नारीको अलग होना ही पड़ेगा। उसे समझना ही होगा कि इसमें उसके लिए लज्जाकी बात है, गौरवकी नहीं।'

स्पष्ट है कि सुमित्राका चरित्र जहाँ एक ओर 'चरित्रहीन' की किरण-मयी और 'श्रीकांत' की अभयाका अधिक व्यवस्थित, संयमित और विकसित तथा प्रौढ़ रूप है, वहीं वह आगे आनेवाली 'शेष प्रश्न' की कमलका पूर्व-रूप भी है। सुमित्राके कई वाक्य तो प्रायः ज्यों-के-त्यों उठाकर लेखकने

कमलके मुखमें रख दिये हैं। इस प्रकारके दो वाक्य यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—"किसी बातको बहुत दिनोंसे बहुत-से आदमी कहते चले आये हों, तो इतने ही से वह सच्ची नहीं हो जाती" और "जिस समाजमें केवल 'पुत्रार्थे' ही भार्या ग्रहण करनेकी विधि है, नारी होनेके कारण उस विधिको तो मैं श्रद्धाकी दृष्टिसे नहीं देख सकती।" ठीक यही भावनाएँ शब्दोंके कुछ हेर-फेरके साथ 'शेष प्रश्न' की कमलने भी व्यक्त की हैं।

यहाँ स्मरणीय है कि उच्चकोटिकी विचारक एवं तार्किक होते हुए भी सुमित्रा वादविवादके बीच कभी उत्तेजित नहीं होती। तीखी-से-तीखी बातोंको भी वह अत्यन्त शांतिपूर्वक सुनती है। मनोहरके बीभत्स व्यंग्य-से उसके चेहरेपर चांचल्य नहीं दिखाई देता। वह केवल इतना ही कहती है—'मनोहर बाबू, हमारी समितिमें संयत भावसे बात करनेका नियम है।' उसकी सतत वर्त्तमान रहनेवाली शालीनतासे स्पष्ट जान पड़ता है कि वह इन साधारण जनोंसे इतनी ऊँची है कि वहाँतक उनकी अवमानना नहीं पहुँच सकती।

सुमित्राके विद्रोहकी पृष्ठभूमिमें हमें दो बातें दिखाई देती हैं। एक तो उसका गत जीवन इतना अव्यवस्थित रहा है कि अब वह शांतिके बारेमें कदाचित् ठीक तरहसे सोच ही नहीं सकती। उसका प्रथम यौवन जिस लज्जा और दुराचरणकी छायामें बीता है, उसकी यादने उसके मनमें जैसे विद्रोह भर दिया हो। दूसरा कारण कदाचित् उसका असमर्पित यौवन है। सुमित्राके शरीरसे फूट-फूटकर निकलनेवाला रूप अपने-आपमें सार्थक नहीं है। उसके यौवनकी अंजलि अभीतक अस्वीकृत ही है। सव्य-साचीने उसके समर्पणको ग्रहण नहीं किया; प्रणयकी इस निराशाने भी उसके मनको विद्रोही बनाया है। अब तो वह समाजकी व्यवस्थामें आमूल परिवर्त्तन चाहती है। अपूर्वके आक्षेपोंका उत्तर देते हुए वह कहती है—'अशांति और विद्रोहके मानी तो अकल्याण नहीं है, अपूर्व बाबू! जो रोगी है, कमज़ोर है, जिसके झुर्रियाँ पड़ रही हैं, वही तो अपनेको उत्कंठित सावधानीके साथ बचाता रहता है कि किसी तरफ़से उसे धक्का न लग

जाय। रात-दिन क्षण-क्षण इसी डरसे वह सूखकर काँटा होता जाता है, ज़रासे हिलने-डुलनेमें ही उसकी चुटकियोंमें जान आ जाती है। और अगर समाजकी ऐसी ही हालत हो गई हो, तो हो जाने दीजिये, इस पार कि उस पार।' इन पंक्तियोंमें वह अत्यन्त प्रबल, परन्तु संयमित ढंगसे अपनी क्रांतिप्रियताको व्यक्त कर देती है।

'अधिकार-समिति' के प्रति सुमित्रा अपने सारे कर्त्तव्योंको बड़े मनोयोगसे पूरा करती है। अस्वस्थ होनेपर भी वह समितिके तत्त्वावधानमें होनेवाली बृहत् सभाका संचालन करती है। वस्तुतः यह 'कर्त्तव्य कठोर अशेष-बुद्धि-शालिनी अधिकार-समितिकी भयशून्य तेजस्विनी सभानेत्री' अपनी रागात्मक वृत्तियोंको दो स्थानोंपर अभिव्यक्ति दे सकी है। इन दो साझीदारोंमें एक संस्था है—अधिकार-समिति, जो उसकी देशप्रियतासे संबद्ध है, एवं दूसरा व्यक्ति है—सव्यसाची। इन दोके अतिरिक्त कदाचित् किसी भी तीसरी वस्तुको सुमित्रा अपना नहीं सकी। उसके अंतरके कोमलतम भाग केवल इन्हीं दोके लिए सुरक्षित रह गये।

हाड़-मांसके बने व्यक्तियोंमें सुमित्रा केवल सव्यसाचीसे प्रेम कर सकी है। यह दूसरी बात है कि उसे अपने प्रेमका पूर्ण प्रतिदान न मिला हो। अपने मुक़दमेसे छुटकारा पाकर भी सुमित्राने डॉक्टरको छुटकारा नहीं दिया था। इसके बाद वह विभिन्न और बदलती हुई परिस्थितियोंमें भी डॉक्टरके प्रभावसे मुक्त न हो सकी। कई बार अधिकार-समितिके नियमोंको लेकर उसका सव्यसाचीसे मतभेद हुआ, पर इसके बावजूद उसके अंतरतमका प्रणय पूर्ववत् रहा। भारती और सव्यसाचीकी घनिष्टताने भी उसके प्रेममें ईर्ष्याका भाव भरा था, परन्तु इससे उसकी मौलिक वृत्तियोंमें कोई अन्तर नहीं आया। सव्यसाचीकी हितचिंता उसके लिए सबसे ऊपर रही।

परन्तु इतनेपर भी सुमित्राकी रागात्मिका वृत्ति अपूर्व रही है। डॉक्टरको देश-सेवाके कर्मठ जीवनसे इतना अवकाश ही न मिला कि वे सुमित्रासे कभी प्रेमकी दो बातें करके उसके मनको सांत्वना दे सकें। फिर भी यह कठोर

रमणी सव्यसाचीसे अपने बारेमें कुछ सुननेके लिए सदैव उत्सुक रहती है । और, पूरे कथा-भागमें जहाँ-कहीं सव्यसाचीने सुमित्राके संबंधमें कुछ भी अपनावकी ओर इंगित किया है, वहीं मानो उसका सारा नारी-जीवन धन्य हो उठा है, परन्तु ऐसे स्थल तो एक-आध ही हैं। भारतीसे सुमित्रा कहती है—'यही इनका यथार्थ स्वरूप है। दया नहीं, ममता नहीं, धर्म नहीं—इस पाषाण मूर्तिको मैं पहचानती हूँ भारती !' इन पंक्तियोंमें उस कठोर रमणीका उपेक्षित प्रेम बोल रहा है, जो जाने या अनजाने अपनेसे भी कठोर पुरुषको अपना हृदय दे चुकी है। अंततोगत्वा सव्यसाची विघ्न-बाधाओंसे भरे सिंगापुरकी ओर चल देते हैं, और सुमित्रा उपायहीन वेदनासे भरा हुआ हृदय लेकर रह जाती है। वह डॉक्टरको जानेसे रोकती है; पर उसके सारे प्रयत्न निष्फल जाते हैं। वह शोकके मारे पागल-सी हो जाती है और उस पानी तथा तूफ़ानके मौसममें उसकी वर्षोंसे संचित अश्रु-राशि झर-झर झरने लगती है। उस माया-ममताहीन हृदयसे उसे अपने लिए कुछ भी नहीं मिला। डॉक्टरसे वह श्रद्धा और प्रशंसा अवश्य पा सकी, परन्तु प्रेमकी भूखी रमणीका इससे क्या संबंध ! अपूर्वसे कभी डॉक्टरने कहा था—'परन्तु सुमित्रापर विश्वास कीजियेगा। विश्वास करनेकी इतनी बड़ी ऊँची जगह आपको और कहीं न मिलेगी, अपूर्व बाबू !' काश, इस तथ्यको जाननेके साथ, स्वयं डॉक्टर ऐसा कर भी सकते !

सुमित्राका चरित्र असाधारण है। सव्यसाचीका कहना है—'ऐसी स्त्री आप संसारमें घूम आनेपर भी कहीं न पायेंगे।' इस कथनमें अतिशयोक्तिका कुछ अंश होनेपर भी बहुत बड़ा सत्य है। सुमित्राका चरित्र एक ऐसी रमणीका है, जिसकी मानसिक ग्रंथियाँ उसकी बिलकुल अपनी हैं।

सुमित्राका व्यक्तित्व सामान्य मानवीय आदर्शोंके आधारपर बहुत उज्ज्वल प्रतीत नहीं होता। भारतीके चरित्रके विरोधी होनेके कारण भी ऐसा संभव है। उसका चरित्र उपन्यासकी कथावस्तुको प्रभावित करते हुए भी अधिक अंकित नहीं हुआ है। कदाचित् इसी कारण उसका व्यक्तित्व इतना रहस्यमय तथा प्रभावोत्पादक हो गया है।

भारती और सुमित्राके प्रधान चरित्रोंके अतिरिक्त उपन्यासमें दो पार्श्व-चरित्र हैं—नवतारा और अपूर्वकी माँ। नवताराका चरित्र बहुत ही अधूरा अंकित हुआ है। उपन्यासके प्रारंभिक परिच्छेदोंसे हमें केवल इतना ही ज्ञात हो पाता है कि देश-सेवाकी भावनासे प्रेरित होकर, अपने दुराचारी पतिको छोड़कर नवतारा 'अधिकार-समिति' की सदस्या बन गई है। उसकी प्रशंसा करते हुए सुमित्रा बताती है—'नवताराके हृदय है, जीवन है, साहस है—और जो सबसे बढ़कर है, वह धर्मज्ञान भी है... जिसे आप सतीत्व कहते हैं, उसे क़ायम रखना उनके लिए सहज होगा या नहीं, सो वे ही जानें।' परंतु अपने पैरोंपर खड़ी होनेवाली, अपना दायित्व स्वयं लेनेवाली इस नारीके बारेमें सुमित्राके उपर्युक्त कथनका पूर्वार्द्ध तो आगे चलकर असत्य ठहरता है और उत्तरार्द्धकी शंका सच जान पड़ती है। इसके बाद बहुत दूरतक नवताराके बारेमें कुछ भी नहीं सुनाई पड़ता। फिर एकाएक ज्ञात होता है कि वह भोले-भाले कवि शशिको विवाहका झूठा आश्वासन देकर, उसकी बहुत-सी संपत्ति लेकर, किसी अन्य व्यक्तिके साथ भाग गई है। वस्तुतः नवताराके चरित्रपर उपन्यासकारने शायद जान-बूझकर विशेष प्रकाश नहीं डाला है। वह पाठकके लिए एक पहेली-सी बन जाती है। जो भी हो, उसका चरित्र बहुत औसत दर्जेका—शायद उससे भी कुछ नीचा है।

अपूर्वकी माँ प्राचीन परंपराओंमें आस्था रखनेवाली एवं सभी रूढ़ियों-का आचरण करनेवाली वृद्धा हैं, परन्तु वे अपने कठोर आचरणोंसे दूसरों-को कष्ट नहीं देना चाहतीं। 'वे सिर्फ़ अपने ही आचार-विचारका, बिना किसी आडंबरके, चुपचाप पालन किया करती हैं।' जो उनके मार्गपर नहीं चलता, उसकी वे बुराई भी नहीं करतीं। अधिकांश प्राचीनाओंके समान असहिष्णु एवं कलहप्रिय वे नहीं हैं। उनकी बातको माननेवाला केवल अपूर्व है। अपने इस पुत्रपर माँको गर्व भी है। करुणामयी बाहरी दृष्टिसे यद्यपि पुराने ज़मानेकी हैं, फिर भी वे अत्यन्त बुद्धिमती हैं। प्रत्येक परिस्थितिको भली प्रकार समझकर ही वे कार्य करती हैं। इसीलिए

अपने प्राणाधिक प्रिय पुत्र अपूर्वको, आवश्यकता समझकर वे विदेश भी भेज देती हैं। उनके संस्मरण भारतीको बताता हुआ अपूर्व कहता है-—'घर में दो बहुएँ हैं, फिर भी माँको अपने हाथसे बनाकर खाना पड़ता है। पर ऐसी माँ है कि कभी किसी पर ज़ोर-जबरदस्ती नहीं करतीं, किसीसे इसके लिए शिकायत भी नहीं करतीं। कहती हैं, मैं भी तो अपने आचार-विचारको छोड़कर अपने पतिकी रायमें अपनी राय नहीं मिला सकी, अब ये लोग भी मेरी रायमें राय नहीं मिलातीं, तो इसमें शिकायत करना क्या ठीक है ? मेरी बुद्धि और मेरे संस्कारोंको मानकर ही बहुओंको चलना होगा, इसके क्या मानी हैं ?' दो विभिन्न संस्कृतियोंके संधि-स्थलमें एक वृद्धाकी इतनी शांति और सहिष्णुता सचमुच सराहनीय है। और, तभी भारती-जैसी विदुषी इस अनजानी महिलाके प्रति स्वतः अपनी श्रद्धा अर्पित करती है।

अपूर्वको करुणामयीके स्नेहका अधिकांश प्राप्त है। बहुत दिनोंतक उसका समाचार प्राप्त न होनेपर वे अपने सारे आचार-विचारोंको भुलाकर विदेशके लिए चल देती हैं। और अपने पुत्रकी इस खोजमें ही उनका शरीरान्त हो जाता है।

भारतीकी महरीका उपन्यासमें यत्र-तत्र उल्लेख भी है। उसका जितना भी वर्णन हमें प्राप्त है, उसके अनुसार हम केवल यही कह सकते हैं कि वह पर्याप्त स्नेहशील है। दूसरेके दुख-दर्दमें वह सहायक होती है। अपने समुदायके स्वभावानुकूल ही वह वाचाल अधिक है। एक ही बातको विभिन्न प्रकारसे धारावाहिक रूपमें कहना उसका विशेष कौशल है।

नवविधान

'नव–विधान' शरत् बाबूके रचना-कालके उत्तरार्द्धमें प्रणीत एक लघु उपन्यास है। कथा-गठनकी दृष्टिसे यह लघु उपन्यास लेखककी श्रेष्ठ कृतियोंमें गिना जा सकता है। यहाँ बहुत छोटे-से 'कैनवैस' में शरत् बाबूने आधुनिक सतही जीवन-चर्याका सूक्ष्म विश्लेषण किया है, और बड़ी कुशलतासे तज्जन्य बुराइयोंपर प्रकाश डाला है। यही नहीं, रचनात्मक दृष्टिकोणसे इस प्रकारकी बुराइयोंको दूर करनेके लिए एक समानांतर, परन्तु श्रेष्ठतर व्यवस्थाको भी लेखकने हमारे सामने रक्खा है। आजके जटिल सामाजिक जीवनमें इस 'नौवलेट' का सामयिक महत्त्व है। प्राचीन परिपाटीको यथासुविधा अपने अनुकूल बनाकर चलना अधिक अच्छा और व्यावहारिक है, अपेक्षाकृत उस परिपाटीका आमूल उच्छेदनकर विदेशी परंपराओंका सहारा लेनेके—यही कदाचित् 'नव-विधान' की कथावस्तुका मूल सूत्र है।

'नव-विधान' की मूल कथा संक्षेपमें इस प्रकार कही जा सकती है—शैलेश्वर अपने मित्र दिग्गज पंडितके कहनेपर अपना तीसरा विवाह न करके अपनी प्रथम परित्यक्ता पत्नी उषाको अपने पास कलकत्ते बुला लेते हैं। उषाका त्याग शैलेश्वरके स्वर्गवासी पिता इसलिए कर चुके थे, क्योंकि वह ग्रामीणा थी, एवं आधुनिक रहन-सहनसे अनभिज्ञ थी। इस बार उषाने पतिगृह-में आकर वहाँकी सारी उखड़ी व्यवस्था ठीक की, फिज़ूल खर्चको बंद किया और शैलेश्वरको सुख देनेका प्रत्येक यत्न किया, परन्तु ऐसा बहुत दिनोंतक न चल सका, क्योंकि शैलेश्वरकी बहिन विभा, जो एक बैरिस्टरकी पत्नी और पाश्चात्य जीवन-चर्याकी अनुगामिनी थी, अपने भाईके घरमें भारतीय

परंपराओंका पुनःस्थापन न सह सकी। कुछ विभाकी असहिष्णुतासे और कुछ स्वामीकी उदासीनतासे, उषा वापस अपने भाईके घर चली गई।

उषाके घर छोड़नेके बाद शैलेशका मन उखड़ा-उखड़ा रहने लगा, क्योंकि ऊपरसे क्रोध करते हुए भी वे उषाको मन-ही-मन प्यार करने लगे थे। अंततः वे अपने एकमात्र पुत्र सोमेनको लेकर इलाहाबाद चले गये, और वहाँ धार्मिक रूढ़ियोंको अपनाकर जीवन व्यतीत करने लगे। वापस कलकत्ते आनेपर वे अपने गुरु और गुरुभाइयोंको भी साथ लेते आये। अब वे सारे कर्त्तव्योंसे उदासीन रहकर कोरी पूजामें व्यस्त रहने लगे। विभा और उसके पति भी उन्हें वैसा करनेसे रोक न सके, परन्तु तब स्नेहकी अदृश्य शक्तिने अपना कार्य किया, और उषाने वापस कलकत्ते आकर उखड़ी हुई गृहस्थीको एकबार फिरसे व्यवस्था दी। इस प्रकार पारिवारिक सौहार्दके उद्‌भवके साथ-साथ उपन्यासका अंत हो जाता है।

वस्तुतः 'नव-विधान' की कथा उषाके जीवनकी संवेदनासे ही अनुप्राणित है। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपसे वह सदैव उपन्यासके घटना-क्रमको प्रभावित करती रहती है। वैसे उपन्यासमें कुल तीन नारी पात्र हैं—उषा, विभा और उमा। इनमें-से भी उषा और विभा तो प्रमुख पात्र हैं, एवं उमा पार्श्व-चरित्र है। सबसे पहले हम उषाके चरित्रका विश्लेषण करेंगे।

उषा जबतक सशरीर कथानकमें आकर उपस्थित नहीं हो जाती, तब तक हमें उसके बारेमें विचित्र बातें सुनाई पड़ती हैं। स्वयं शैलेश्वर उसे 'पगली' कहते हैं, और उसके हितचिंतक दिग्गज पंडितको डराते हैं कि 'अगर वह सचमुच ही आ गई तो फिर चाय पीनेकी आशा न रखना। वह गंगाजल और गोबर डालकर लीपनेके साथ ही तुम लोगोंको भी झाड़ूकी झड़पसे साफ़ करके छोड़ेगी।' और बेचारा शैलेश्वर भी क्या करे? उसे भी सदैव इसी प्रकारके समाचार मिलते रहते थे कि उसकी धर्मपत्नी भाइयोंके परिवारमें जप-तप, पूजा-पाठ, गंगाजल और गोबरके फेरमें रहकर जीवन बिता रही है; उसकी 'शुचिबाई'के पागलपनकी सीमा तक पहुँच जानेसे भाइयोंके नाकमें दम है, इत्यादि। यहाँ तक कि शैलेश्वरका ममेरा भाई

भूतनाथ उषाको कलकत्ते लिवा लानेके प्रस्तावपर कहता है, "नहर काटकर घरमें मगर तो नहीं ला रहे हो ?" परन्तु जब उषा सचमुच हमारे सम्मुख आ जाती है तो हमें उसके प्रथम दर्शनमें ही ज्ञात हो जाता है कि न तो वह पगली है, और न नदीके मगरके साथ ही उसका कुछ सादृश्य है। उसके बारेमें सुनी-सुनाई सारी बातें निर्मूल और भ्रामक सिद्ध होती हैं।

वस्तुतः उषा अपनी प्रकृतिमें मूलतः गृहिणी है। आजकलकी अधिकांश पत्नियोंकी भाँति वह घरमें अकेली ही नहीं रहना चाहती है। सबके साथ मिल-जुलकर जीवन व्यतीत करनेकी वह अभ्यस्त है। रूखी प्रकृतिकी विभासे वह कहती है, "मायकेमें भावजोंके लड़के-बाले मेरे ही हाथके पाले-पोसे हैं। कोई एक आदमी पास न रहनेसे मेरी ज़िंदगी भार हो जाती है ननदजी !" घर-गृहस्थीके सारे आय-व्ययको अपनी आवश्यकतानुकूल बना लेना वह अच्छी तरह जानती है। यही नहीं नित्य प्रतिके सारे खर्चका ब्यौरे-वार हिसाब भी वह रखती है। अनावश्यक व्ययको रोकनेमें वह बहुत चतुर है। घरके ऋणका अधिकांश चुकानेपर भी वह पतिके एक महीनेके वेतनमें पूरा काम चला लेती है, जब कि उसके आनेके पहले एक महीनेका वेतन केवल पंद्रह दिन ही चल पाता था। घरका 'बजट' बनानेमें उसकी बुद्धिमत्ता देखते ही बनती है। ऋणके भारसे दबे एवं घबराये हुए शैलेश्वरको आश्वासन देती हुई वह कहती है, "गिरस्तीका खर्च चलानेके लिए क़र्जा हो गया तो क्या उसे अदा न करना होगा ? मगर चिंताकी बात क्या है ? इतनी मामूली रक़म चुकाते मुझे कै दिन लगेंगे ?" यहाँ हमें स्पष्ट दिखाई देता है कि उषाके चरित्रमें बुद्धिमत्ताके साथ-साथ आत्मविश्वासकी भी कोई कमी नहीं। अपनी योजनापर उसे सदैव विश्वास रहता है, और इसीलिए किसी भी कार्यमें असफलताजन्य निराशा उससे दूर रहती है।

उषाके मितव्ययी होनेका सबसे बड़ा प्रमाण-पत्र स्वयं शैलेश्वर देते है। क्षेत्रमोहनको अपनी सारी आर्थिक समस्या बताते हुए वे कहते हैं, "मैं तो जी गया भाई साहब ! किसीसे रुपया उधार लेने न जाना पड़ेगा अब ! जो तनख्वाह पाता हूँ वही मेरे लिए काफ़ी है—यह गिरिस्तीकी अर्थ-समस्या

सुलझानेका सहज 'गुर' तुम्हारी सलहजका जाना हुआ था। उसीने अपव्ययकी जड़ उखाड़ फेंकने और उसे उजाड़ डालनेके लिए अपने समर्थ होनेका समाचार मुझे सुनाया है।" दलदल और कीचड़में-से किसीकी बाँह पकड़कर बाहर सूखी भूमिपर आ पहुँचनेका जो आनन्द होता है, कुछ उसीप्रकारका आनन्द, कुछ उसी प्रकारकी राहतका अनुभव शैलेश्वरको इन शब्दोंके कहते समय हुआ होगा! उषाकी इस गार्हस्थिक कुशलतासे प्रभावित होकर क्षेत्रमोहन बाबू कहते हैं, "आपके समान गृहलक्ष्मीके हाथका किया सुघर काम देखकर मैं भी घर-गिरिस्तीका कुछ काम-काज सीख लेना चाहता हूँ......जी चाहता है कि अपनी छोटी बहनको आपके पास कुछ दिनोंके लिए छोड़ जाऊँ, जिसमें आपकी मंगलमयी निपुणता थोड़ी-सी भी वह अपने साथ ससुरालमें ले जा सके।" उषाका यह गृहलक्ष्मी रूप ही हमें सर्वत्र दिखाई देता है। पतिके फटे मोज़े ठीक करती हुई, खाना बनाती हुई, पतिको खाना खिलाती हुई, आगतोंका सत्कार करती हुई——सदैव वह भारतीय गृहिणीके आदर्शको हमारे सामने उपस्थित करती है। यहाँ तक कि शैलेशका घर छोड़कर वापस भाईके यहाँ जानेके समय तक उसका मोह इस घरके लिए पूर्ववत् बना रहता है।' 'आज सबेरे ही शैलेश्वरने सुना कि दीवारमें गंदे हाथ पोंछ देनेके लिए उषा अपने नये नौकरको फटकार रही है। मान लिया कि अभ्यास होनेके कारण उषासे अपने किसी काममें ग़लती नहीं होने पाती; लेकिन सर्वत्र सभी बातोंमें उसकी चौकस दृष्टि ऐसी बनी रहती है कि उसमें भी तनिक-सी शिथिलता शैलेश नहीं देख पाता!' इस प्रकार हम देखते हैं कि उषाके चरित्रकी मूल संवेदना उसकी गार्हस्थिकता है। सबसे पहले वह एक कुशल गृहिणी है, बादमें और कुछ! पाकशालासे लेकर अतिथि-गृह तकके अपने सारे कर्त्तव्योंको वह अत्यंत कुशलतापूर्वक निभाती है, त्रुटिके लिए कोई भी स्थान नहीं छोड़ती। घरमें आये हुए क्षेत्रमोहन बाबूसे वह बिना किसी लज्जा या झिझकके बात करती है, और इस प्रकार इस संदेहके लिए कोई स्थान नहीं छोड़ती कि वह दैनिक व्यवहारमें अपटु केवल

एक ग्रामीणा है। उसका प्रत्येक आचरण सभ्य नागरिक जीवनके अनुकूल है।

जहाँ तक उषाके धार्मिक जीवन एवं आचरणपरायणताका प्रश्न है, हम स्पष्ट रूपसे कह सकते हैं कि उसकी मान्यताओंमें साधारणतः प्रचलित अंधविश्वासों और रूढ़ियोंको बहुत कम स्थान मिला है। उसके आचार किसी दूसरेको कष्ट देनेके लिए नहीं हैं, यह बात तो निर्विवाद रूपसे सत्य है। जब अपने पतिगृहके लिए वह अपने आपको अनुपयुक्तपाती है, तो मात्र शैलेश्वरके सुखके लिए वह पूर्ववत् परित्यक्ताका जीवन व्यतीत करनेके लिए अपने भाईके घर चली जाती है। उसकी आचरणप्रियताका ही यह परिणाम है कि पतिसे दूर रहनेपर लोग उसे 'पगली' आदि कहते हुए भी उसके चरित्रपर कोई आक्षेप नहीं लगा सके। उसकी पवित्रता सर्वदा सर्वमान्य है, और जब हम इस बातपर विचार करते हैं कि दूसरोंको आश्चर्यान्वित करनेवाला रूप जिसके पास हो, वह नारी कैशोर्यसे लेकर अपने यौवन तक पतिसे वर्षों तक अलग रहनेपर भी अपने चरित्रकी सर्वथा रक्षा कर सकी, तो इसका बहुत कुछ श्रेय हमें उसकी धार्मिक साधनाको ही देना पड़ता है, अवश्य ही उसके व्यक्तित्वकी दृढ़ता भी उसके लिए इस क्षेत्रमें सहायक रही है।

उषाकी धार्मिक कट्टरतापर शैलेश्वरको इतना विश्वास है कि उसे गाँवसे बुलाते समय वह अपने मनमें यही सोचता है कि पहले तो वह यहाँ आनको तैयार न होगी, और यदि वह आई भी तो 'मलेच्छी कारखाने' को देखकर दो ही दिनमें भाग जायेगी। परन्तु जैसा हम देखते हैं, शैलेश्वरके यह दोनों अनुमान ही असत्य निकलते हैं। उषा बिना किसी हिचकके कलकत्ते चली आती है, और जब वापस जाती भी है तो 'मलेच्छी कारखाने' से घबरा कर नहीं, वरन् यह देखकर कि उसकी उपस्थितिसे उसके स्वामी कष्टमें हैं। और इस बातका ध्यान ही उषा-जैसी पतिपरायणा स्त्रीको स्वतः पतिसे दूर ले जाता है। वस्तुतः उषा किसी भी धार्मिक मर्यादाका आँख बंद करके पालन नहीं करती। उसकी आस्थाओंका संयोग उसकी बौद्धिकतासे बराबर रहा है। वैसे उसकी तेजस्विताके प्रभावसे स्वयं ही दूसरे लोग उसके कथनानुसार

चलने लगते हैं। विदेशी परंपराओंमें पला हुआ सोमेन अपने स्वजनोंको प्रणाम करना सीख जाता है। क्षेत्रमोहन यह समझ जाते हैं कि उसके कमरेमें जूते पहनकर जाना ठीक नहीं। यहाँ तक कि शैलेश्वर भी उसके मतानुयायी होने लगते हैं। और जैसा हम देख चुके हैं इसका प्रमुख कारण यह है कि उसके आचारोंमें कठमुल्लापन नहीं है। स्वयं न खाते हुए भी शैलेश्वरके लिए वह गोश्त बना देती है। भक्ति-पूजनमें पूरा विश्वास रखते हुए भी वह शैलेश्वरके गुरु-भाइयोंको घरसे भगा देती है, सोमेनके गलेकी तुलसीकी माला अपने हाथसे तोड़ डालती है, और उसकी चोटी कटवा देती है। उसके इस व्यवहारसे स्पष्ट जान पड़ता है कि जीवनमें धर्मको अत्यंत उच्च स्थान देती हुई भी वह मिथ्या धार्मिक ढोंगोंके एकदम विरुद्ध है।

ज़िंदगीके विभिन्न घात-प्रतिघातोंको उषाने बड़े संयम और धैर्यके साथ सहन करना सीखा है। शांतिकी एक निश्चित भावना उसके मुख-मंडलपर सदैव रहती है। व्यर्थ ही रूठी हुई विभाको मनानेके लिए वह शैलेश्वरको ज़बरन उसके घर भेजती है। अपनी ओरसे तो उसने कभी कोई ऐसी बात नहीं कही, जिससे कि लोग उससे असंतुष्ट हो जायें। विभा जब कुछ कड़वी बातें उषाको सुनाकर कहती है तो अस्फुट स्वरमें वह केवल इतना ही कह पाती है, "लेकिन ऐसा ख्याल तो कभी मेरे मनमें पैदा ही नहीं हुआ ननदजी।" यहाँ स्मरणीय है कि उषाके कलकत्ते आनेके दिनसे ही विभा अकारण उसके प्रति कटु है। और यह उषाकी सहनशीलता है कि इन कलह-संग्रामोंमें उसके मुँहसे एक भी कड़ी बात नहीं निकली। इसी प्रकार शैलेश्वरके आक्षेपोंका भी वह कभी उत्तर नहीं देती, प्रतिवाद नहीं करती। उपन्यासकारके शब्दोंमें, 'उषाकी आवाज़में कभी किसी कारण उत्तेजनाका भाव नहीं प्रकट हो पाता था। शांत भावसे बात कहनेका उसका स्वभाव है।' व्यावहारिक शांतिके साथ-साथ एक विनयका भाव भी सर्वदा उसके वार्तालापमें व्यक्त होता रहता है। कलकत्ता छोड़कर जानेका निश्चय स्वामीके आगे रखनेकी भूमिका-स्वरूप वह कहती है, "कल रात भर सोचते रह कर अंतको

मंने जो निश्चय किया है, उसे फिर डिगाने या अन्यथा करनेके लिए कोई आज्ञा न दो, यही तुमसे मेरी प्रार्थना है।" और फिर जब शैलेश्वर उसके लौटनेकी बात पूछता है, तो भी उन्हीं सौजन्यपूर्ण स्वरोंमें उत्तर देती है, 'मुझे क्षमा करो, लौटना अब मेरे लिए संभव न ोगा। मैंने बहुत कुछ सोच-विचारकर देखा, यहाँ मेरा रहना हो नहीं सकता। यही मेरा निश्चय है।" इतना प्रतिकूल तथ्य व्यक्त करनेपर भी उसके मनमें कोई गाँठ नहीं, उसके स्वरमें कोई विरुद्धताका भाव नहीं। सब प्रकारकी विषम परिस्थितियोंमें भी उसके मनकी शान्ति और उसकी वाणीका संयम कभी उससे विलग नहीं होते। व्यर्थके प्रश्न और व्यर्थके कौतूहल उसकी प्रकृतिके विपरीत हैं। उसका प्राय: मौन रहना जहाँ एक ओर उसकी सहन-शीलताका सूचक है, वहीं उसके मानसिक संयमका भी परिचय देता है।

शरत्‌की अधिकांश नायिकाओंकी भांति उषा मात्र भावुक ही नहीं है। उसके व्यक्तित्वकी बौद्धिक प्रवृत्तियां पर्याप्त रूपसे विकसित हैं। परिस्थितियोंको देखकर उन्हें समझ लेना उसके चरित्रका प्रधान गुण है। क्षेत्रमोहन उषाकी तुलना ऐसे जहाज़ चलानेवाले कप्तानसे करते हैं जो 'पानीको देखते ही जान लेता है कि कितना गहरा है।' जब शैलेश्वरके एकमात्र पुत्र सोमेनको शिक्षा आदिके लिए उसकी बुआ विभाके घर भेजनेका प्रस्ताव उषाके सामने आता है तो वह बिना किसी तर्क-वितर्कके उत्तर देती है,"लड़केके भलेके लिए अगर इसका प्रयोजन जान पड़े तो भेजना ही होगा।" वस्तुत: उषाकी वाक्पटुताके समक्ष प्रतिपक्षीको एकबार सिर झुकाना ही पड़ता है। शैलेश्वरके यह कहनेपर "शास्त्रमें लिखा है कि सूँघना भी आधे भोजनके बराबर होता है," उषा किंचित् हँसीकी रेखा झलकाकर कहती है, "यह कहना तुम्हारे लिए उचित नहीं। जिस शास्त्रको तुम मानते नहीं, उसका प्रमाण और दुहाई देना तुम्हें नहीं सोहता"। इसी प्रकार वह स्थान-स्थानपर क्षेत्र-मोहन तथा विभाको अपने अचूक परंतु शांत वाक्योंसे निरुत्तर कर देती है।

अपने चारित्रिक गुणोंके कारण उषाके व्यक्तित्वमें आत्मविश्वासका होना स्वाभाविक ही है। किसी भी प्रतिकूल अवसरपर वह अपने इस

संतुलनको नहीं खोती। प्रथम भेंटके अवसरपर हां क्रुद्ध विभासे वह कहती है, "यह सब मैं सँभालना जानती हूँ। तुम लोगोंको दुश्चिन्ता न करनी चाहिए"। इसी प्रकार आकंठ ऋणके सागरमें डूबे हुए शैलेश्वरको वह आश्वासन देती है, "मगर चिंताकी बात क्या है? इतनी मामूली रक़म चुकाते मुझको कै दिन लगेंगे"? सच तो यह है कि इसी आत्मविश्वासकी भावनाने उषाके चरित्रको इतना उज्ज्वल बना दिया है, और इसी आत्म-विश्वासके सहारे उसका आत्माभिमान भी सदैव रक्षित है। अपनी प्रकृतिमें पूर्ण अहिंसात्मक होती हुई भी उषा अनुचित बातोंको कभी स्वीकार नहीं करती। जब शैलेश्वर उसके सामने, सोमेनको शिक्षा-दीक्षाके लिए विभाके घर भेजनेका प्रस्ताव रखता है तो वह उसे स्वीकार करनेपर भी इस बात के लिए प्रस्तुत नहीं होती कि उसके पुत्रको पढ़ाने-लिखानेका व्यय किसी भी प्रकार विभाको करना पड़े। इसके अतिरिक्त जब वह यह देखती है कि उसके पतिके गृहमें उसकी व्यवस्था नहीं चल पाती तो कुछ तो शैलेश्वरको सुख देनेके लिए, और कुछ अपने आत्माभिमानको भी अक्षत रखनेके लिए, उषा अपने भाईके यहाँ चली जाती है।

आत्मविश्वास और आत्माभिमानसे संबद्ध चारित्रिक दृढ़ताका भी उषाके व्यक्तित्वमें पूर्ण निखार हुआ है। शैलेशका अपनी पत्नीके प्रति स्पष्ट मत है, "मैं दुर्बल प्रकृतिका आदमी हूँ, किंतु तुम्हारा मन उतना ही दृढ़ है"। वह भली-भाँति जानता है कि उषाके इरादे कभी टलते नहीं। एक बार यदि वह अपने भाईके घर जानेकी सोच लेती है, तो फिर उसका निश्चय अटल ही रहता है। यही नहीं, यह पति-गृह छोड़ कर जानेका कठोर प्रस्ताव स्वयं उसीकी ओरसे आता है। उसके इस 'कठिन कर्त्तव्य' पालनके लिए शैलेश व्यंग्यमें उसकी प्रशंसा भी करते हैं, और उषा थोड़ी ही दूरपर खड़ी हुई यह सब सुनती है। पर शैलेशके व्यंगों और क्षेत्रमोहनके आश्वासनोंकी कुछ भी परवा न करके उषा घर छोड़ कर चली जाती है। उसका वापस लौट आना कितना कठिन है, इस बातका अनुभव क्षेत्रमोहन बराबर करते रहते हैं। वस्तुतः जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें उषा हर क़दम बहुत सोच-समझकर

आगे बढ़ाती है, और एक बार किसी निष्कर्षपर पहुँचनेपर वह फिर उससे टलती नहीं। इसीलिए पाठक उपन्यासकारके इन शब्दोंसे बहुत हदतक सहमत हो जाता है कि 'लड़कपनसे कड़े आचार-विचारके शासनमें रहते-रहते उषाकी प्रकृति भी कड़ी हो गई है।'

जैसा हमने ऊपर देखा, उषाका व्यक्तित्व बहुत संतुलित, युक्ति-युक्त एवं न्यायप्रिय है। अपने आचरणसे वह किसीको भी संकटमें नहीं डालना चाहती। विभा-द्वारा सोमेनको अपने घर ले जानेके प्रस्तावपर बालककी परेशानीको देखकर वह चटपट कह देती है, "जानेके लिए मैं तुमको मना नहीं करती भैया; मैं तो यही कहती हूँ कि तुम्हारे चले जानेपर अकेले घरमें रहनेमें मुझे बड़ा कष्ट होगा।" और इसप्रकार वह निरीह सोमेनको विभाके क्रोधसे बचा लेती है। पति-द्वारा नौकरोंके वेतन न दिये जानेका वह तीव्र विरोध करती है। शैलेशसे वह कहती है, "यह तो तुम्हारी बड़ी ज़बर्दस्ती है जी! नौकर-चाकरोंकी तनख्वाह न देना और अटकाये रखकर घर न जाने देना कहाँका न्याय है।" यहाँ हम उषाका वह रूप देखते हैं जो सदैव औचित्यके साथ है, और जो सभी प्रकारके अन्यायोंकी भर्त्सना करता है। उसकी प्रकृति इतनी भली है कि किसीका अनिष्ट करनेकी बात उसके मनमें आ ही नहीं सकती। विभाके यह संदेह किये जानेपर कि उषाने शैलेश्वरके लिए जादू-टोना किया है, क्षेत्रमोहन अत्यंत दृढ़ स्वरमें कहते हैं, "उषा यह सब कभी न करेंगी।"

अपनी छोटी-सी गृहस्थीमें उषाका स्नेह और ममता सबके लिए समान है। शैलेश, सोमेन, क्षेत्रमोहन, विभा तथा उषा, सबकी वह हितचिंतक है। सोमेन तो अपनी इस विमाताको इतना अधिक प्यार करता है कि उसके बिना रह ही नहीं सकता। कारण स्पष्टतः यही है कि उषाके वात्सल्यका वह एकछत्र अधिकारी है। उषा उसके प्रत्येक छोटे-बड़े आरामका ध्यान रखती है, साथ ही खाना खिलाती है और रातको उसके निकट बैठ कर कहानी सुनाती है। स्वयं शैलेशका मत है कि 'माँ के रहनेपर भी इतना अधिक प्यार-दुलार शायद उस समय—कभी—इसको नहीं नसीब हुआ।'

और यही नहीं, स्वयं उसे भी गुप्त या प्रकट रूपसे उषाका जो अपार स्नेह प्राप्त हुआ, उसने उसके जीवनकी गति ही बदल दी। एक बार तो अवश्य ही उसे अपने गार्हस्थ-जीवनमें अपूर्व आनंद प्राप्त हुआ, और इसमें कोई संदेह नहीं कि उसके इस आनंदकी मात्रा दिन-प्रति-दिन बढ़ती ही जाती, यदि विभा बीचमें आकर इन दम्पतिको एक-दूसरेसे अलग न कर देती। एक स्थलपर उपन्यासकार कहता है, 'खानेके लिए इतना जबर्दस्त तक़ाज़ा 'ऐसा आत्मीयताव्यंजक अनुरोध और आग्रह, हृदयकी व्यग्रताके साथ सिरकी क़सम देना—शैलेशके लिए कल्पनासे परे, और आशातीत, अप्राप्य, अलौकिक, अपूर्व आनंद देनेवाला था।' इन शब्दोंमें शैलेशकी मनःस्थितिका जो चित्रण हुआ है वह उषाकी कोमल प्रकृति और उसके सरस व्यवहारका स्पष्ट सूचक है।

पूरे उपन्यासमें विभाको हम उषाके विरुद्ध देखते हैं। प्रारम्भसे ही अपनी ग्रामीण भाभीके प्रति मनमें पूर्वग्रहोंको संजोये रखनेसे ऐसा व्यवहार विभाके लिए नितांत स्वाभाविक है, और जब कि दोनोंकी प्रकृतियोंमें बहुत अंतर भी है। इसीलिए प्रथम भेंटमें ही विभा उषाके प्रति अत्यंत कड़ी और कड़वी हो उठती है, परंतु, शांत और संयमित मनकी उषा तभी कह देती है, "आज तुम रूठ कर ज़रा बैठी तक नहीं, लेकिन मैं तुमसे इतना कहे देती हूँ कि एक दिन तुम अपनी इच्छासे खुद आकर अपनी इसी भाभीके पास बैठोगी।" और उषाके तीसरे परिच्छेदमें कहे हुए ये शब्द हमें उपन्यासके अंतिम परिच्छेदमें तब अक्षरशः सत्य होते हुए दिखाई देते हैं, जब वापस कलकत्ते आई हुई उषाके पास जूते उतार कर विभा स्वयं जाती है, उसके पैर छूती है और स्वयं ही पहले बोलती है। कहना न होगा कि विभाके व्यवहारमें यह परिवर्तन स्नेहकी विलक्षण शक्ति-द्वारा ही संभव हुआ है।

उषाके चरित्रके संक्षिप्त विश्लेषणसे स्पष्ट हो जाता है कि उसका व्यक्तित्व अत्यंत उदार एवं महिमामय है। इसलिए यह नितांत स्वाभाविक ही है कि उसके व्यक्तित्वसे उसके संपर्कमें आनेवाले प्रभावित हों। वस्तुतः

अनेक गुणोंके समाहार रूपमें चित्रित करके शरत्ने अपनी नायिकाओंको प्राय: प्रभविष्णु बनाया है। उनके तेजके सम्मुख प्रतिपक्षियोंको अंततोगत्वा झुकना ही पड़ता है। 'नव-विधान'की नायिका उषा भी इस व्यापक नियमकी अपवाद नहीं है, यह सहज उसके वार्त्तालापसे ही प्रकट हो जाता है। तटस्थ व्यक्तिको भी अपनी ओर खींच लेनेकी शक्ति उसमें है। सारे ऊपरी क्रोध और अप्रसन्नताके बावजूद शैलेश यही प्रार्थना करता है कि 'मेरे अगर कभी कोई लड़की हो तो वह अपनी माताके समान ही हो। इस ढंगकी शिक्षा-दीक्षा वह पावे तो मैं भगवान्को धन्यवाद दूँगा'। और तो और, कुछ ही दिनोंके संपर्कसे विभा भी भावावेगके क्षणोंमें उषाको अत्यंत स्पृहणीय मानती है। उषाके वापस घर जानेकी बात सुनकर वह शैलेशसे कहती है, "भैयाजी, भला सच बतलाना, क्या तुम मुझे ही निमित्त करके (अर्थात् मेरे ही कहने-सुननेपर ध्यान देकर या मेरे ही कहनेसे) भाभीके संबंधमें यह व्यवस्था करने जा रहे हो? अगर यही बात हो तो मैं मना न करूंगी। किंतु यह अभी कहे देती हूँ कि एक दिन तुम दोनों ही रोओगे'। उद्धरणका अंतिम वाक्य विशेष रूपसे ध्यान देने योग्य है। इसके अतिरिक्त क्षेत्रमोहन तो उषाको इतना अधिक चाहने लगे हैं कि वे शैलेशके सम्मुख प्रस्ताव रखते हैं (भले ही मज़ाक़में) कि वे दोनों पत्नियोंकी अदला-बदली कर लें। और जैसा हम पहले ही कह चुके है कि शैलेश भी मन ही मन उषाको बहुत प्यार करते हैं। तीसरे विवाहकी बात वे इसलिए स्वीकार नहीं करते कि उषाके प्रति उनका मोह अभेद्य हो गया है। क्षेत्रमोहनका तो स्पष्ट मत है, "उषा-को तुम्हारे दादा सचमुच प्यार करने लगे थे। इतना प्यार कभी उन्होंने सोमेनकी माँको नहीं किया।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि उषाका चित्रण आजकी सतही जीवन-चर्या और उसके बाहरी बनाव-शृंगार-जन्य विषमताओं और कुरूपताओं के स्वस्थ एवं कुशल सुधारकके रूपमें किया गया है। अपनी मूल प्रकृतिमें एक सफल गृहिणी होनेके कारण वह पाश्चात्त्य रहन-सहनसे प्रभावित विशृंखलित पारिवारिक व्यवस्थाको एक नया और सशक्त विधान देती है,

जो एकदम भारतीय पंरपराओंके अनुकूल है। इस लघु उपन्यासके 'नव-विधान' नामकरणका यही रहस्य है।

कथामें दूसरा प्रमुख नारी-चरित्र विभाका है। अपनी प्रकृतिमें वह उषाके बहुत कुछ विपरीत है। वह अपने देशकी उन असंख्य नारियोंमेंसे एक है, जिन्होंने पाश्चात्त्य जीवनकी औपचारिकताको अपना तो लिया है, परंतु जो उनकी शिराओंमें बहते हुए रक्तसे मेल नहीं खाती। इसीलिए उनका व्यक्तित्व बहुत-कुछ अभारतीय-सा लगने लगता है, और पाश्चात्त्योंकी गणनामें तो वे आ ही नहीं सकतीं। फल यह होता है कि उनका व्यक्तित्व पूर्व और पश्चिमका एक अजब-सा मिश्रण बन जाता है, जिसमें दृढ़ताकी मात्रा बहुत कम रहती है।

विभाका व्यक्तित्व हमें प्रारंभसे ही कुछ रूखा और चिड़चिड़ा दिखाई देता है। इसका एक कारण उसके मनमें स्थित उषाके प्रति पूर्वग्रह भी हो सकता है, जिससे वह अपनेको 'तीखा-रूखा' बनाये रहती है। पर जो भी हो, यह निश्चित है कि साधारणतः उसका व्यहार बहुत सरस नहीं है। उपन्यास-कारके शब्दोंमें, "दूसरेको दोष लगाकर कठोर बातें कहना एक प्रकारसे विभाका स्वभाव ही हो गया था। अधिकांश स्थलोंमें शायद इससे अशिष्टता प्रकट होनेके सिवा और क्षति न हुआ करती थी।" यहाँ तक कि सोमेनको भी व्यंग बाणका निशाना बना देना उसके लिए कोई बड़ी बात नहीं। और जैसा कि उपर्युक्त उद्धरणसे स्पष्ट है, विभा ऐसा जान-बूझ कर नहीं करती, वरन् यह तो उसका स्वभाव ही हो गया है।

विभाका चरित्र एक ऐसी आधुनिकाके रूपमें अंकित किया गया है, जिसने विदेशी परंपराओंका बिना समझे-बुझे अंधानुकरण प्रारंभ कर दिया है। उषाके विरुद्ध बोलती हुई वह कहती है, "मगर अपने घरको एकदम किसी कूढ़मग्ज आचारी पंडितका घर बना डालनेसे तो काम न चलेगा, अपने समाज और उसके सभ्योंका ख़याल भी तो रखना पड़ेगा। उसके साथ सामाजिकता रखनी हो तो हमें कुसंस्कारपूर्ण पाखंड-विडंबनाका बहिष्कार, और नव्य दलकी परिमार्जित सुरुचिका व्यवहार स्वीकार करके

आधुनिक अनुभवों-द्वारा अनुमोदित आचार-विचारोंका प्रचार स्वीकार करना पड़ेगा।" उद्धरणका अंतिम वाक्य विभाके चरित्रपर अच्छा प्रकाश डालता है। इससे जान पड़ता है कि अपने इस 'नव्य दलकी सुरुचि'के लिए वह ऐसी तमाम प्राचीन परंपराओंको उखाड़ फेंकना चाहती है, जो उसके लिए कहीं अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सकती हैं। वस्तुतः ज़िंदगीको उसने बहुत ऊपरी निगाहसे देखा है, उसकी गहराई तक वह नहीं पहुँच सकी। इसीलिए उसका दृष्टिकोण इतना सतही है। असहिष्णुता तो उसमें इतनी है कि क्षेत्रमोहन-द्वारा उषाके प्रति प्रदर्शित श्रद्धाको देख कर उसके 'बदनमें आग लग जाती है'। और फिर वह हठवादी भी कम नहीं है। उपन्यास-कारके शब्दोंमें, "लोगोंके सामने विभा बहसमें किसी तरह हार नहीं मान सकती थी—यह उसकी आदतमें दाखिल था"।

इस सबके अतिरिक्त विभाकी सबसे बड़ी दुर्बलता यह है कि अपनी ऊपरी शान रखने के लिए वह आवश्यकतासे अधिक व्यय करती है, जिसके कारण क्षेत्र-मोहनको स्वीकार करना पड़ता है, "मैं तो कर्ज़के गढ़ेके भीतर गोते खा रहा हूँ, गले-गले तक गर्क हो गया हूँ। उससे उबरने का कोई उपाय नज़र नहीं आता।" इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि एक गृहिणीके लिए जिन गुणोंकी आवश्यकता होती है, वे विभाके चरित्रमें एकदम नहीं हैं। और तो और, जैसा कि स्वयं क्षेत्रमोहन एक स्थल पर कदाचित् कुछ अतिरंजनाके साथ व्यक्त करते हैं, विभा अपने स्वामीका भी सम्मान नहीं करती, उल्टे 'उन्हें निरंतर हीन प्रमाणित करनेकी चेष्टा' में संलग्न रहती है। और जब इस तथ्यको वह स्वयं सुनती है, तो वह इतनी हल्की-फुल्की प्रकृतिकी है कि रो देती है। इस हल्की-फुल्की प्रकृतिके कारण ही वह शैलेशके गुरुमंत्र आदि लेनेके बाद बुराईके डरसे समाजके सभ्य लोगोंको मुँह भी नहीं दिखा सकती।

उषाके प्रति तो विभा प्रारंभसे ही विरुद्ध है। सच तो यह है कि उषाको लेकर ही उसके व्यक्तित्वकी कुटलिता उभर उठी है। वह निरंतर यही प्रमाणित करना चाहती है कि इस 'गँवई—गाँवकी अपढ़ भावज'को फिर घर में लाकर शैलेशने भयंकर भूल की है। उसका स्पष्ट मत है कि "मैं तो ऐसी

भावजको एक दिनके लिए भी अपने भाईकी स्त्री न स्वीकार कर सकूँगी, इसके लिए भाई कितना ही नाराज़ क्यों न हो। इसीलिए उषाको उसके स्थानसे भ्रष्ट करनेकी दुरभिसंधि उसके मनमें सदैव बनी रहती है। और जब वह अपने इस कार्य में सफल हो जाती है, तभी उसे संतोष होता है। यही नहीं वह गर्वोक्ति भी करती है, "मैने एक बार देखते ही उन्हें पहचान लिया था। उनके साथ हम लोग किसी तरह निर्वाह नहीं कर सकते थे।" उषाके ऊपर तो वह परोक्ष रूपसे यह भी आरोप लगा देती है कि वह शैलेशके ऊपर कुछ जादू-टोना कर रही है। किन्तु उषा उसकी इन सारी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष बातोंका कुछ भी उत्तर नहीं देती। उत्तर देती है उसकी नम्रता और सुशीलता जिसके कारण विभाको अंततोगत्वा उसके पैर छूने पड़ते हैं, और उसकी महत्ता स्वीकार करनी पड़ती है। जैसा हम संकेत भी कर चुके हैं, अपने आपमें विभा इतनी दुष्ट नहीं है कि इस चारित्रिक परिवर्तनसे ऊपर उठ सके। शैलेशके ऊपर उषाने जादू-टोना किया था या नहीं, यह तो उषा ही जाने, विभाको किस प्रकार उसने वाणी और व्यवहारके वशीकरणसे अपने वशमें किया, यह हम सभी देख सकते हैं।

सोमेन और सोमेनकी माँके लिए विभाके मनमें बहुत कोमल स्थान सुरक्षित है, ऐसा जान पड़ता है। अपनी स्वर्गवासिनी भाभी और बापके कुलमें एकमात्र वंशधरका वह बहुत ध्यान रखती है। सोमेनके ऊपर 'विभाका एक प्रकारका स्नेह था। वह उसे सचमुच चाहती थी।' इस निरीह बालकको ब्रह्मचारीके वेषमें देखकर वह रो देती है। अत्यंत दुखी होकर वह क्षेत्रमोहन से कहती है, "लड़का क्या हमारी आँखोंके सामने, हमारे देखते-देखते यों ही सत्यानाश जायगा?" और फिर अपने सारे मान-अपमानको भुलाकर वह सोमेनके कुशल-समाचार लेनेके लिए शैलेशके घर चली जाती है।

शैलेशके लिए भी विभाके मनमें पर्याप्त स्नेह है। भाईको बुरा-भला कहा जाना उसे सह्य नहीं। इसके लिए वह कभी-कभी स्वामीसे भी झगड़ बैठती है। यहाँ यह स्मरणीय है कि क्षेत्रमोहनको भी विभा सारे लड़ाई-झगड़ोंके बावजूद हृदयसे प्यार करती है। उपन्यासकार इन दोनोंके संबंधको

समझाता हुआ कहता है, "उन दोनों स्वामी और स्त्रीके बीच सच्ची–दिली-प्रीति और स्नेहकी शायद कमी न थी; किन्तु बाहर देखनेमें, दुनियाके व्यवहारमें, इसी प्रकारके वाद-प्रतिवादकी टक्कर प्रायः प्रकट हो पड़ती थी।" सच तो यह है कि उषाको छोड़कर विभा अन्य सबसे संतुष्ट रहती है। उसके मनके असुरोंको जागृत करनेके लिए ही मानो उषाका आविर्भाव हुआ है (यद्यपि अंततोगत्वा उषाके लिए भी विभाके मनमें प्रीति उत्पन्न हो जाती है)।

इस स्थलपर उषा और विभाके चरित्रोंकी संक्षिप्त तुलना कुछ अप्रांसगिक न होगी। वस्तुतः ये दोनों चरित्र एक दूसरेके बहुत-कुछ विपरीत हैं। उषा जहाँ ज़िंदगीके हर पहलूको बहुत गहराईके साथ देखती है, वहाँ विभाका दृष्टिकोण प्रायः सतही है। उषाकी सूक्ष्म अंतर्दृष्टिका उसके व्यक्तित्वमें अभाव है। उषा शांत एवं शांतिप्रिय है, विभा कुछ झगड़ालू और चिड़चिड़ी है। एकमें व्यावहारिक संयमकी मात्रा पर्याप्त रूपसे है, दूसरीमें व्यावहारिक असंयमका प्राधान्य है। उषामें सहनशीलता और धैर्य है, इसके विपरीत विभा प्रायः असहिष्णु है। दूसरोंकी बात सुनना उसे पसंद ही नहीं। उषामें जहाँ बौद्धिकता है, वहाँ विभामें छिछली भावुकता। उषा प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृतिकी उपासक है, विभाके आचार-विचार पाश्चात्त्य परंपराओंसे प्रभावित हैं। उषा बहुत मितव्ययी है, पतिके ऋणके एक बड़े भागको वह चुका देती है, पर विभा अपव्ययी है, उसके कारण क्षेत्रमोहन आकंठ ऋणमें डूबे हुए हैं। इसके अतिरिक्त उषा पर्याप्त रूपसे चिंतनशील है, विभा मात्र हठवादी है। क्षेत्र बाबूके अनुसार तो 'उषाके पैरोंकी धूलकी बराबरी करनेकी भी योग्यता विभामें नहीं है।' वे सोचते हैं, "जो विश्वास अपनेको पीड़ित करने में पश्चात्पद नहीं होता, जिसकी श्रद्धाकी गहराई दुःख और त्यागके भीतर अपनी परीक्षा कर लेती है, वह विश्वास विभामें कहाँ है? उमामें कहाँ है? और वे तो अनेकों स्त्रियोंको जानते हैं, किन्तु ऐसी स्त्री कहाँ देख पड़ती है, जिससे उषाकी तुलना की जाय?" शैलेश भी उषाके साथ विभाकी और उन लोगोंके शिक्षित समाजकी और भी दो-चार

महिलाओंकी मनमें तुलना करके एक ठंडी साँस ही छोड़ पाता है। और यह सच भी है। उषाका चरित्र जहाँ बहुत-से उच्च गुणोंका समाहार है, वहाँ विभाका चरित्र बहुत-कुछ औसत दर्जेका है। इसी वैषम्यका ध्यान करके एवं उषाकी महत्ताको पहचान करके विभा कथानकके अंतमें अपनी इस ग्रामीण भाभीके पैर छूती है। यह नम्रताकी कटुतापर विजय है। इसीके साथ-साथ हम यह भी देखते हैं कि उषाके चतुर्दिक् गृहिणीत्वके सम्मुख विभाके निपट फूहड़पनको अंततोगत्वा किस प्रकार झुकना पड़ता है।

उपन्यासमें उमाका अंकन पार्श्व-चरित्रके रूपमें हुआ है। यत्र-तत्र कुछ उल्लेखोंके अतिरिक्त हम उसके बारेमें विशेष कुछ नहीं जान पाते। अनुमानके आधारपर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि क्षेत्र बाबूकी इस बहिनका व्यक्तित्व बहुत-कुछ अपने भाईके अनुरूप ही होना चाहिए। उमाके संबंधमें उनका विशेष आग्रह है, "शैलेशकी बहिन (विभा) और मेरी बहनमें बाहरी वेशभूषाका सादृश्य देखकर दोनोंके हृदय भी समान न समझ लीजिएगा।" उमाके व्यक्तित्वके अत्यधिक संक्षिप्त अंकनमें भी हमें एक स्थलपर उसकी अंतर्दृष्टि और चातुर्यके दर्शन हो जाते हैं। क्षेत्र बाबूके शैलेशसे यह आग्रह करनेपर कि बुढ़ापेके आनेके पहले उन्हें अपना घर बसा लेना चाहिए, उमा अत्यंत दृढ़ विश्वासके साथ कहती है, "इनके बुढ़ापे आनेमें, भैया, अभी बहुत देर है, और उसके बहुत पहले ही भाभीजी आकर हाजिर हो जायँगी।" और जैसा उपन्यासके अंतमें हम स्वयं देखते हैं, उमा की यह भविष्यवाणी एकदम सही निकलती है।

शेष प्रश्न

•

जैसा कि नामसे ही स्पष्ट है, 'शेष प्रश्न' शरत् बाबूकी अत्यंत सरल एवं सुबोध शैलीमें लिखा होनेपर भी उनका सबसे जटिल तथा दुरूह उपन्यास है। यह दुरूहता कथा-गत न होकर, उसके माध्यमसे अभिव्यक्त विचार-धारासे संबद्ध है। यौवन और प्रेमकी समस्या, तथा नारी और पुरुषके पारस्परिक संबंधकी समस्या,इस उपन्यासमें बड़ी ही कुशलतासे हमारे सम्मुख प्रस्तुत की गई है। नारी-चरित्रोंका 'शेष प्रश्न'में अंकन एक विशिष्टताके साथ हुआ है। इसके साथ ही इस उपन्यासकी जो सबसे बड़ी विशेषता है, वह यह है कि इसमें स्वयं उपन्यासकार आशु बाबूके रूपमें आकर हमारे सम्मुख उपस्थित हो गया है। इसी दृष्टिकोणसे शरत्के नारी संबंधी अनेक विचारोंको समझनेके लिए 'शेष प्रश्न'के आशु बाबू तथा कमलके संवाद अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं।

'शेष प्रश्न'की कथा मानवीय संवेदनाओंके घात-प्रतिघातसे परिपूर्ण है। संपूर्ण उपन्यासमें एक निश्चित बौद्धिक चेतना रहनेके फलस्वरूप उसके कथा-भागमें समाजके उच्च-शिक्षित एवं शिष्ट वर्गका ही चित्रण हुआ है। एकदम सुलझे हुए विचारोंके, विदेशी शिक्षासे संपन्न तथा अत्यंत हास्य-विनोद-प्रिय आशु बाबू अपने संपूर्ण धन-वैभवके साथ, अपनी एकमात्र अविवाहिता युवती पुत्री मनोरमाको साथ लेकर, जल-वायु परिवर्तनके हेतु आगरेमें आकर रहने लगते हैं। अपने मिलनसार स्वभावके कारण वहाँके सभ्य बंगाली-समाजसे उनका घनिष्ट परिचय हो जाता है। उनके प्रमुख मित्रोंमें हैं—अविनाश, हरेन्द्र तथा अक्षय जो स्थानीय कालेजोंमें अध्यापक हैं, शिवनाथ—भूतपूर्व अध्यापक तथा कुशल गायक, उसकी अपूर्व

सौंदर्य एवं प्रतिभाशालिनी स्त्री कमल, तथा अविनाशकी विधवा साली नीलिमा।

आशु बाबूके आगरे-प्रवासके कालमें उनकी पुत्री मनोरमाका होनेवाला वर अजितकुमार, जो विलायतसे इंजीनियरिंगकी डिग्री लेकर लौटा है, उनके पास आकर रहने लगता है। कुछ दिन तक सबका समय बड़ी अच्छी तरह व्यतीत होता है। फिर एकाएक ही उनके जीवनमें संघर्षोंका आगमन प्रारंभ हो जाता है। मनोरमा जो पहले शिवनाथको गुणी जानकर उसका बहुत आदर करती थी, अक्षय-द्वारा उसकी बुराइयोंको सुनकर उससे घृणा करने लग जाती है। इधर अजित, जो कमलके ऊपर श्रद्धा करने लगा था, उसका वंश-परिचय सुनकर लज्जासे गड़ जाता है। इसके उपरांत मानवीय मनोविकारोंके जो घात-प्रतिघात प्रारंभ होते हैं, उनका अंत उपन्यासकी समाप्तिपर इस प्रकार होता है—

(१) मनोरमा अपना विवाह शिवनाथके साथ कर लेती है।

(२) कमल अजितकी जीवन-संगिनी बन जाती है, और

(३) रूप-गुण-संपन्न नीलिमा वृद्ध तथा रुग्ण आशु बाबूसे प्रेम करने लगती है। और तब हमें आशु बाबूके उस कथनका स्मरण हो आता है, जिसे हम प्रस्तुत उपन्यासका मूल सूत्र (Key-note) कह सकते हैं, "दुनियामें अपना पराया कोई नहीं है कमल, स्रोतके खिचावसे कौन कब पास आ जाता है, और कौन बहकर दूर चला जाता है इसका कुछ भी हिसाब कोई नहीं जानता।" इस प्रकार हम 'शेष प्रश्न' के कथानककी तुलना कुछ अंशोंमें प्रतिष्ठित नाटककार शेक्सपियर के 'मिड समर नाइट्स ड्रीम'से कर सकते हैं, जिसमें ठीक इसी प्रकारसे प्रेमका विपर्यय होता है। परंतु इन दोनोंमें प्रमुख अंतर यह है कि जहाँ प्रेमके इस उलट-फेरको दिखानेके लिए शेक्सपियरको एक अतिप्राकृत माध्यम (Super-natural element) स्वीकार करना पड़ा है, वहीं शरत् बाबूने प्रणय-सूत्रोंकी अस्थिरताको मनो-विज्ञानके सिद्धांतोंके आधार पर मान्यता दी है। कहना न होगा कि यह

भारतीय साहित्यकारके लिए गौरवकी वस्तु है। और यह तो निश्चित है कि 'शेष प्रश्न'के साढ़े तीन सौ पृष्ठ पढ़ लेनेके बाद जीवनका प्रश्न-चिह्न और भी बड़ा हो जाता है। यही उपन्यासके नामकरणकी सार्थकता, तथा उपन्यासकारकी कलाकी सफलता है।

'शेष प्रश्न'में पाँच प्रमुख नारी-पात्र हैं—कमल, मनोरमा, नीलिमा, बेला और मालिनी। इनमें-से बेला और मालिनी तो प्रायः पार्श्व-चरित्र हैं। शेष तीनमें-से भी उपन्यासके अधिकांश कथा-भागपर कमल ही छाई रहती है। ऐसा जान पड़ता है कि कमलके चरित्रका उद्घाटन करनेके लिए ही मानो 'शेष प्रश्न'का सृजन हुआ हो। अस्तु, उपन्यासके सभी नारी-पात्रोंमें मूलगत अंतरके साथ ही साथ वे सभी प्रायः अपने पूर्वागतोंसे भी भिन्न हैं। केवल कमलके चरित्रको ही हम किरणमयी, अभया, षोड़शी तथा सुमित्राकी परंपरामें रख सकते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि इन सभी नायिकाओंके श्रेष्ठतम परमाणुओंको लेकर शरत् बाबूने कमलका सृजन किया है। 'शेष प्रश्न'में ही नहीं, वरन् संपूर्ण शरत्-साहित्यमें एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण नारी-पात्र होनेके कारण कमलके चरित्रका ही विश्लेषण हम सर्वप्रथम करेंगे।

किरणमयी तथा सुमित्रा आदिके समान ही, कमलका रूप देखनेवालेको विस्मयमें डाल देता है। शिवनाथका यह कथन कि उसने कमलसे विवाह सुंदरताके लिए किया है, अक्षरशः सत्य है। प्रथम दर्शनके समय कमलके सौंदर्यका वर्णन करते हुए उपन्यासकार कहता है, "अँगिया-साड़ी भींगकर भारी हो गई है, माथेकी निबिड़ कृष्ण केश-राशिसे जल-धारा गालोंके ऊपरसे झरती हुई बह रही है। पिता और कन्या दोनों ही इस नवागता रमणी के मुँहकी तरफ़ देखकर असीम विस्मयसे अवाक् हो रहे। आशु बाबू खुद कवि नहीं हैं, किंतु उनको पहले ही ऐसा जान पड़ा कि इस नारी-रूपकी ही शायद प्राचीन युगमें कवि लोग शिशिर-धौत कमलके साथ तुलना कर गये हैं और संसारमें इतनी बड़ी सच्ची तुलना भी शायद दूसरी नहीं है।" और तब आश्चर्य ही क्या है जो वृद्ध आशु बाबू कहते हैं, "लड़की है, मानो एकदम लक्ष्मीकी प्रतिमा। ऐसा रूप मैंने कभी नहीं देखा।" और तो

और, अनुपम सौंदर्यशाली ताजमहलके सामने भी लोग कमलको ही देखना अधिक पसंद करते हैं। 'जो जीवित आश्चर्य इस अपरिचित रमणीके सर्वाङ्ग-में व्याप्त होकर अकस्मात् मूर्त्तिमान् हो उठा है, उसके ही सामने उस निकटस्थ संगमरमरका अप्रकट आश्चर्य मानो एक क्षणमें धुंधला-सा हो गया है।' और यही कारण है कि कमलका व्यक्तित्व प्रत्येक स्थलपर अपना महत्त्व रखता है, क्योंकि सौंदर्यने उसे एक शक्ति दे दी है। केवल एक स्थानपर, जहाँ कमलका सौंदर्य फीका और निष्प्रभ पड़ जाता है, इस अशेष रूपवती युवतीको दबना पड़ा है। राजेन्द्र वह व्यक्ति है, जिसने कमलके सौंदर्यकी ओर आँख उठाकर देखा तक नहीं, और उसीके सम्मुख कमल पराजित हुई।

जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें निस्संकोच होकर रहना कमलके चरित्रकी एक प्रमुख विशेषता है। मनोरमासे प्रथम भेंटके समय ही वह अपनी आवश्यकता-की वस्तुएँ स्वयं माँग लेती है। आशु बाबू इस संबंधमें कहते हैं, "लज्जा-संकोचकी बात तो थी ही नहीं, मेरा स्वास्थ्य कैसा है, क्या खाता हूँ, कौन-सी चिकित्सा चल रही है, जगह अच्छी लग रही है या नहीं—प्रश्न करनेका क्या ही सहज स्वच्छंद भाव था। वरन् शिवनाथ तो संकुचित-से हो रहे, किंतु उसमें जड़ताका चिह्न तक भी मैंने नहीं देखा। न तो बातचीतमें, न आचरणमें।" सबके सम्मुख कमल शिवनाथसे भी उसी सहज और निस्संकोच भावसे बात करती है, जिस प्रकारसे अन्य व्यक्तियोंसे। उप-न्यासके प्रारंभिक अंशोंमें कमलका सरल और स्वच्छंद भाव अजितको चक्करमें डाल देता है। संध्याके समय अजितकी बगलमें बैठकर मोटरकी सैरमें उसे लज्जाका अनुभव नहीं होता। प्रथम भेंटके समय ही वह अजितसे आग्रह करती है कि वह उसे मिसेज़ शिवनाथ कहकर नहीं, वरन् मात्र कमल कहकर पुकारे। अपनी माँका लज्जा-जनक वृत्तांत तथा अपनी जन्म-कथा जिस स्पष्टता एवं सरलताके साथ वह अजितको बताती है, उससे उसके चरित्रकी निर्मलतापर ही प्रकाश पड़ता है। ऐसा जान पड़ता है मानो छिपाने लायक उसके पास कुछ है ही नहीं। अजितके समान ही वह हरेन्द्र-

को भी अपने साथ निर्जन घरमें ले जाना चाहती है। अधिक रात हो जाने पर वह उनके लिए बिस्तर बिछानेको भी तत्पर है। कमलके इन निस्संकोच आचरणोंके पीछे उसकी वह बुद्धि है जो किसी भी प्रकार यह माननेको प्रस्तुत नहीं कि निर्जन गृहमें अनात्मीय नर-नारीका केवल एक ही संबंध हो सकता है। इसीलिए वह एक परिचित अंग्रेज़की घर-गृहस्थी सँभालनेके लिए उसके घर भी जा सकती है। नीलिमाके मतानुसार, 'वह मानो ठीक नदीकी मछलीकी-सी है। पानीमें भींगने न भींगनेका प्रश्न ही नहीं उठता। खाने-पहिननेकी चिंता नहीं, शासन करनेवाला अभिभावक नहीं, आँखें लाल करनेवाला समाज नहीं—परम स्वतंत्र है।'

वस्तुतः कमलका जीवनके प्रति दृष्टिकोण अत्यंत ही समृद्ध है। उसके इस दर्शनमें विलासिता नहीं है, वरन् एक समन्वय है। इस तथ्यको समझ लेनेपर हम उसके बहुत-से ऐसे कार्योंमें संगति बैठा सकते हैं, जो ऊपरसे कुछ अटपटे लगते हैं। अपने दृष्टिकोणकी व्याख्या करती हुई कमल कहती है, "कोई कोई व्यक्ति ऐसे होते हैं जो वृद्ध मन लिये ही जन्म ग्रहण करते हैं। उसी वृद्धके शासनके नीचे उनका जीर्ण-शीर्ण विकृत यौवन सदैव लज्जासे माथा झुकाये रहता है। वृद्ध मन प्रसन्न होकर कहता है, अहा! यही तो अच्छा है। हल्ला नहीं, उन्माद नहीं, यही तो शांति है, यही तो मनुष्यके लिए परम तत्त्वकी बात है......मनकी वृद्धता मैं उसीको कहती हूँ, आशु बाबू, जो सामनेकी तरफ़ देख नहीं सकता, जिसका अवसन्न, जराग्रस्त मन भविष्यकी सभी आशाओंको छोड़कर केवल अतीतके अंदर ही जीवित रहना चाहता है। और मानो उसे कुछ करने या पानेकी इच्छा ही नहीं है,—वर्तमान उसके निकट लुप्त है, अनावश्यक है, और भविष्य निरर्थक है। अतीत ही उसका सर्वस्व है।" इसके विपरीत कमलकी विचारधारामें वर्त्तमानको सबसे अधिक महत्ता प्राप्त है। उसके जीवनकी पूँजी वर्त्तमान-पर ही आधारित है। अत्यंत स्पष्ट एवं सरल अभिव्यक्तिका सहारा लेती हुई वह अजितसे कहती है, "मैं मानती हूँ कि जब जितना पाऊँ उसको ही सत्य समझकर मान ले सकूँ। दुःखका दाह मेरे विगत सुखके शिशिर-

बिन्दुओंको सुखा न सके। वह चाहे जितना भी थोड़ा क्यों न हो, और परिणाम उसका संसारमें कितना ही तुच्छ क्यों न गिना जाय, तो भी मैं उसे अस्वीकार न करूँ। एक दिनका आनंद किसी दूसरे दिनके निरानंदके सामने लज्जा अनुभव न करे......इस जीवनमें सुख-दुःखमेंसे कोई भी सत्य नहीं है अजित बाबू, सत्य है केवल उसका चंचल क्षण। बुद्धि और हृदयसे उसको प्राप्त करना ही तो सच्ची प्राप्ति है।" उद्धरणके अंतिम दो वाक्य कमलके जीवन-दर्शनको समझनेके लिए विशेष रूपसे महत्त्वपूर्ण हैं। प्रकारांतरसे, कमलके इस भौतिक सुखवाद (Hedonism) की विवेचना हम अलगसे करेंगे।

कमलकी विचार-धारा प्राचीन भारतीय मनीषी भर्तृहरिसे बहुत-कुछ मिलती है, जिन्होंने स्वयं नीतिशतक, शृंगारशतक एवं वैराग्यशतकका सृजन किया। इन दोनों ही विचारकोंने जीवनको उसकी एकाग्रतामें देखने एवं स्वीकार करनेकी चेष्टा की है। परंतु इन दोनोंके व्यावहारिक जीवनका अंतर भी हम स्पष्टतः देख सकते हैं। भर्तृहरिने जीवनको तीन अलग-अलग कालोंमें विभाजित करके उसे समृद्धता प्रदान की है; कमलने जीवनको एक साथ, एक समयमें ही समृद्ध बना दिया है। उसकी साधना है, 'संसारका सम्पूर्ण ऐश्वर्य, समस्त सौंदर्य, समस्त प्राण लेकर जीवित रहना।' इस दृष्टिकोण से, भर्तृहरिकी अपेक्षा कमलने कहीं अधिक सफलताके साथ जीवनमें समन्वय खोजनेकी चेष्टा की है। उक्त-उद्धृत वाक्य तो मानो कमलके चरित्रका मूल सूत्र ही है।

कमलने जीवनके आनंदको उसके एक-एक क्षणसे संचित करनेकी चेष्टा की है। आयुकी व्यापकतासे अधिक वह क्षणके असीमत्वको महत्त्व देती है। उसका स्पष्ट मत है, "आयुकी दीर्घताको ही जो लोग सत्य समझकर जकड़ रखना चाहते हैं, मैं उन लोगोंमें-से नहीं हूँ....पौधेके फूल सूख जाएँगे इस ख्यालसे बहुत देर तक रहनेवाले नकली फूलोंका गुच्छा बनाकर जो लोग फूलदानोंमें सजाकर रखते हैं, उनके साथ मेरे मतका मेल नहीं खाता। किसी आनंदका भी स्थायित्व नहीं है। हैं केवल उसके क्षण-

स्थायी दिन।" किसी भी वस्तुका मूल्यांकन कमल उसके स्थायित्व अथवा उसकी दीर्घतासे नहीं करती। अजितसे वह कहती है, "मेरे आँगनके पास जो फूल खिलते हैं उनका जीवन बहुत कम है। उससे वह मसाला पीसनेका लोढ़ा अधिक टिकाऊ है, अधिक दीर्घस्थायी है। सत्यकी जाँच करनेका इससे सुंदर मापदंड आप लोग पावेंगे कहाँ? फूलको जो नहीं पहचानता उसके लिए वह पत्थरका लोढ़ा ही बड़ा सत्य है।" इससे स्पष्ट है कि कमल जीवनमें किसी भी प्रकारके पलायनको स्वीकार नहीं कर सकती। उसका यह आनंदवाद कर्मण्यताकी दृढ़ भित्ति पर आधारित है।

हम देखते हैं कि कमलका जीवन प्राय: अभावोंमें ही बीता है। आनंद-वादकी प्रबल समर्थिका होनेपर भी स्वयं उसका व्यक्तित्व भौतिक सुखोंसे दूर रहा है। यह एक विचित्र तथ्य है कि सिद्धांतत: तपस्याका विरोध करती हुई भी, उसने अपने आपको विभिन्न प्रकारकी साधनाओंमें निखारा है। उसके इस तप:पूत व्यक्तित्वको न तो संसारसे ही कोई शिकायत है और न नियतिसे ही। शिवनाथ जब उसकी ओरसे एकदम उदासीन हो जाते हैं, तब भी उनके प्रति उसका व्यवहार पूर्ववत् रहता है। यहाँ तक कि उनसे स्पष्ट छल एवं वंचना पानेपर भी वह उनके विरुद्ध नहीं होती। अजितके मतानुसार, "शिकायत करनेवाली स्त्री तो तुम हो भी नहीं!" और स्वयं कमल भी हरेन्द्रसे कहती है, "अब सोचती हूँ कि उनमें (शिवनाथमें) जो कहकर जानेका साहस नहीं था, वही तो मेरा सम्मान है। छिपाव-दुराव, छल-कपट और उनके सभी मिथ्याचारोंने मुझे मर्यादा ही दी है। पानेके दिन मुझे धोखा देकर ही वे पा गये थे, किंतु जानेके दिन मुझे सूद-ब्याज सब चुकता करके जाना पड़ा है। अब मुझे कोई शिकायत नहीं है।" इन शब्दोंके पीछे हमें एक ऐसी शक्तिका आभास मिलता है जो किसी भी प्रकारकी विरुद्धताओंके सम्मुख झुकती नहीं। आशु बाबूके समक्ष भी प्राय: इन्हीं शब्दोंको दुहराती हुई कमल कहती है, "जो नहीं है वह क्यों नहीं है, कहकर आँखोंके आँसू बहानेमें मुझे लज्जा मालूम होती है, जितना वे कर सके हैं, उससे अधिक वे क्यों नहीं कर सके इस बातको लेकर झगड़ा करनेमें मेरा

सिर झुक जाता है।" और भी, "मैं प्रतिदिन ही विचार करके देखती हूँ आशु बाबू। दुःख मैं नहीं पाती ऐसी बात मैं कहती नहीं हूँ, किंतु उसे ही मैंने नहीं मान लिया है। शिवनाथके पास जो कुछ भी देनेको था, वे दे चुके, मुझे जो कुछ मिलना था, वह मिल चुका—आनंदके वे छोटे-छोटे क्षण ही मेरे मनमें मणि-माणिक्यकी तरह संचित हैं।" इन उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि उसकी आत्माकी शक्ति कितनी अजेय और अडिग है, जो प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थितिमें अचल रहती है। कर्मका आनंद ही कमलके जीवनका सर्वस्व है, फलके प्रति उसकी कोई विशेष आस्था नहीं।

कमलके प्रेम एवं विवाह-संबंधी सिद्धांत विशेष रूपसे विचारणीय हैं, क्योंकि प्रचलित परंपराओंके वे एकदम विपरीत हैं। कदाचित् यह कहना भी असंगत न होगा कि अपने इन्हीं विचारोंके कारण उसका व्यक्तित्व इतना असाधारण तथा विशिष्ट है। वस्तुतः कमल प्रेमको विशुद्ध मनोविज्ञानके दृष्टिकोणसे देखना चाहती है। इस संबंधमें वह मिथ्या भावनाओंको कुछ भी महत्त्व नहीं देती। शाहजहाँका मुमताजके प्रति एकनिष्ठ पत्नी-प्रेम ही ताजमहलके निर्माणका कारण था, इस बहु-प्रचलित मतका खंडन करती हुई कमल कहती है, "सम्राट् मुमताजको जिस तरह प्यार करते थे उसी तरह अन्य औरतोंको प्यार करते थे। शायद कुछ अधिक हो सकता हो, किंतु एकनिष्ठ प्रेम उसको नहीं कहा जा सकता आशु बाबू। उनमें यह बात तो नहीं थी.....सम्राट् भावुक थे, कवि थे, अपनी शक्ति, सम्पत्ति और धैर्यसे इतनी बड़ी एक विशाल सौंदर्यकी वस्तु स्थापित कर गये हैं। मुमताज तो एक आकस्मिक उपलक्ष्य मात्र थीं। नहीं तो, ऐसा ही सुंदर सौध वे किसी भी घटनाको लेकर बनवा सकते थे। धर्मके उपलक्ष्यमें होता, तो कोई हानि नहीं थी, हज़ारों-लाखों मनुष्य वध करनेके दिग्विजयकी स्मृतिके उपलक्ष्यमें होता तो भी ठीक था। यह एकनिष्ठ प्रेमका दान नहीं है। यह बादशाहके अपने आनंदलोकका अक्षय दान है। इतना ही तो हम लोगोंके लिए यथेष्ट है।" ऐसा जान पड़ता है कि कमलके प्रेम एवं विवाह संबंधी विचारोंमें, मुक्त और किसी हदतक उच्छृंखल सौंदर्योपभोगकी

प्रधानता है। इस मुक्त एवं सहज स्थितिके अभावके कारण ही वह एकनिष्ठ प्रेमका खंडन करती है। अपने अत्यंत प्रबल तर्कोंका सहारा लेती हुई वह कहती है, "निष्ठाका कोई मूल्य ही नहीं है, यह बात मैं नहीं कहती किंतु जो मूल्य युग-युगसे लगातार लोग उसे देते आये हैं वह भी उसका, प्राप्य मूल्य नहीं है। एक दिन जिसको प्यार किया है, किसी दिन किसी कारणसे भी उसमें परिवर्त्तनका उपाय नहीं रहता, मनका यह अटल जड़ धर्म स्वस्थ भी नहीं है, सुन्दर भी नहीं है।" प्रेमकी परंपराओंके प्रति कमलका यह विद्रोह उसे अनायास ही शरत्‌के नायिका-समाजमें असाधारण रूपसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिला देता है। उसके निकट आदर्श प्रेम—या प्रेम वह है, जो अपने पात्रको किसी भी प्रकार बाँधना न चाहे।

आशु बाबू जैसे दृढ़ पत्नीव्रत व्यक्तिके सम्मुख भी कमल एकनिष्ठ प्रम तथा वैधव्यकी पवित्रताका तिरस्कार कर सकती है। उसके स्वच्छंद मनोराज्यमें किसी भी प्रकारके अस्वाभाविक एवं अप्राकृतिक व्यवधानोंकी स्थिति नहीं है। जो कुछ सहज है, जो कुछ मुक्त है, वही करणीय है, ऐसा कमलका मत है। वृद्ध आशु बाबूके पत्नी-प्रेमकी चर्चा करती हुई एक लंबे संवादमें कमल कहती है, "एक दिन आशु बाबूने अपनी स्त्रीको प्यार किया था, किंतु वे जीवित नहीं हैं। उनको देनेकी भी कोई चीज़ नहीं है, उनसे अब पानेकी भी कोई वस्तु नहीं है। उनको अब सुखी किया भी नहीं जा सकता, दुःख भी नहीं दिया जा सकता। वे अब नहीं हैं। प्रेमका पात्र निश्चिह्न हो गया है। एक दिन उनको जो प्यार किया था वह स्मृति ही केवल मनमें रह गयी है। मनुष्य नहीं है, है केवल स्मृति। दिन-रात मनमें उसीको ध्यान करते हुए, वर्त्तमानकी अपेक्षा अतीतको ही ध्रुव समझकर जीवन बितानेमें कौन-सा बड़ा भारी आदर्श है, यह बात तो सोच-विचार करनेपर भी मेरी समझमें नहीं आती।" और इस प्रकार इन कठोर तर्कोंसे वह आशु बाबूके इस स्मृति-सौधको गहरा धक्का पहुँचाती है। आगे वह और भी तीव्र स्वरमें कहती है, "एक बड़ा नाम दे देनेसे ही तो कोई वस्तु संसारमें सचमुच बड़ी नहीं हो जाती। बल्कि यह कहिये कि

इस तरह इस देशमें वैधव्य जीवन बितानेकी ही प्रथा है, कहिये कि एक मिथ्या-को सत्यका गौरव देकर लोग उनको (विधवाओंको) ठगते चले आ रहे हैं— इसे मैं अस्वीकार न करूँगी।"

प्रेमकी ही भाँति विवाहके संबंधमें भी कमलके अपने कुछ निश्चित मत हैं। एक प्रकारसे कमल विवाहकी संस्थाको मान्यता नहीं देती। यही नहीं, वह इस अनुष्ठानका विरोध भी करती है। आशु बाबू-के यह शंका प्रकट करनेपर कि यदि शिवनाथ उससे संबंध विच्छेद कर ले तो वह क्या करेगी, कमल कहती है, "वे करेंगे मुझे अस्वीकार और मैं जाऊँगी गला पकड़पर उनसे स्वीकार कराने? सत्य तो डूब जायेगा, और जिस अनुष्ठानको मैं मानती ही नहीं, उसीकी रस्सीसे उनको बाँध रखूँगी। मैं करूँगी यह काम?" इससे स्पष्ट है कि कमल जीवनकी स्वाभाविक गतिके सम्मुख किसी भी प्रकारके मिथ्या आडंबरको नहीं मानती। प्राकृतिक तत्त्वोंके वशीभूत होकर मन जिधर जाना चाहे, उसे उधर ही जाने दिया जाय, यह कमलका सिद्धांत है। अवरोधोंको वह ठहरने नहीं देना चाहती— 'एक दिनके एक अनुष्ठानके ज़ोरसे उसके छुटकारेका रास्ता यदि समस्त जीवनके लिए अवरुद्ध हो जाय तो उसे श्रेयकी व्यवस्था कहकर माना नहीं जा सकता।' उसका ध्यान जीवनकी रसमयतापर अधिक केन्द्रित है अपेक्षा-कृत तत्संबंधी आचारोंपर। अजितसे वह अत्यंत स्पष्ट शब्दोंमें कहती है, "मैं यही कामना करती हूँ कि नर-नारीका यही परिचय किसी दिन प्रकाश कीर वायुकी तरह सहज हो जाय।" यह उसकी जीवनकी नैसर्गिकताके प्रति आस्था है बंधन-मुक्तिके प्रति विश्वास है। उसके आदर्श मनोराज्यमें प्रकाश और वायु-जैसे प्राकृतिक पदार्थोंके समान ही नर-नारीका संबंध भी सुलभ और सार्वजनीन हो जायेगा।

· विवाहके प्रति कमलकी इन धारणाओंसे आशुबाबूके उस मतकी पुष्टि होती है, जिसके अनुसार 'विवाहके प्रति नहीं, इसके Form (तरीके) पर ही शायद कमलकी उतनी आस्था नहीं है।' वस्तुतः कमल विवाहके अनुष्ठानको नितांत मिथ्या ही नहीं मानती, पर वह उसे एकदम सत्य भी

नहीं मानती। उसके मतसे दो आत्माओंका पारस्परिक सम्मिलन ही वास्तविक सत्य है, विवाह तो उसका आवरण-मात्र है। आंतरिक प्रेमकी प्राणसे, और विवाहकी देहसे सापेक्ष्य तुलना करती हुई वह कहती है, "जैसे प्राण भी सत्य है, देह भी सत्य है—किंतु प्राण जब निकल जाता है ?" अर्थात् विवाहकी तभीतक सार्थकता है, जबतक उसके दोनों भागी उसे मानें। यदि दोनोंके हृदय एक-दूसरेसे अलग हो चुके हैं तो कोई भी अनुष्ठान उन्हें बाँधकर नहीं रख सकता। अपनी इस विचार-धाराके अनुकूल ही कमल आवश्यकतासे अधिक संयमको महत्ता नहीं देती। आशु बाबूके प्रति वह अपना मत व्यक्त करती है, "जहाँपर संयम उद्धत आस्फालनसे जीवनके आनंदको मलिन कर देता है, वह कोई चीज़ नहीं है, वह मनकी एक लीला है,—उसे बाँध रखना आवश्यक है। सीमा मानकर चलना ही तो संयम है—शक्तिकी स्पर्द्धामें संयमकी सीमाको भी लाँघ जाना संभव है। तब फिर उसे वह मर्यादा नहीं दी जा सकती। अति संयम भी एक तरहका असंयम है, यह बात क्या किसी दिन विचार कर आपने नहीं देखी आशु बाबू ?" इस लंबे उद्धरणसे स्पष्ट है कि प्राकृतिक जीवन-क्रमपर आधारित कमलकी विचार-धारामें संयमका महत्त्व प्रायः नहीं है, अति संयम तो परिहार्य है ही !

सामाजिक आडंबरोंसे अनुशासित विवाहकी संस्थाकी व्यंगात्मक प्रशंसा करते हुए कमल कहती है, "वह तो अनभिज्ञ यौवनका पागलपन नहीं है, बहुदर्शी गुरुजनों-द्वारा किया हुआ कार्य है, सपनेका मूलधन नही है—आँखोंसे देखी हुई पक्के आदमियों-द्वारा जाँच-पड़ताल की हुई शुद्ध वस्तु है। अंकगणितमें सांघातिक भूल न रहनेसे उसमें सहज ही दरार नहीं पड़ती। वह बहुत दृढ़ है—समूचे जीवनमें वज्रकी भाँति टिकी रहती है।" परंतु कमलके लिए यह मिथ्या स्थायित्व ग्राह्य नहीं। वह तो मानती है कि स्वाभाविक रूपसे जबतक प्रेमकी स्थिति बनी रहे, तभी तक दो व्यक्तियों-के बीच निकटका संबंध शोभन एवं वांछनीय है, परंतु वास्तविक सूत्रके छिन्न हो जानेपर लौह-शृंखलाका बंधन भी असत् तथा अवांछनीय है।

और क्योंकि वह यह मानती है कि 'सच्चा प्रेम भी संसारमें इसी तरह टूटकर दूर हो जाता है', इसीलिए अधिकांश प्रेमके विवाह क्षणस्थायी हो जाते हैं, अतएव उसके निकट प्रेमके स्थायित्वका भी कोई मूल्य नहीं। यही नहीं उसके मतानुसार तो अस्थिरता ही प्रेमका सबसे बड़ा गुण है—डी० एच० लॉरेन्सके शब्दोंमें "लव इज़ लाइक ए फ्लावर, इट मस्ट फ्लावर एंड फेड" अर्थात्, प्रेम एक पुष्पके समान है जिसे अनिवार्यत: खिलना और मुरझाना चाहिए, या "फाइडैलिटी एंड लव आर टू डिफ़रेंट थिंग्ज़, लाइक ए फ्लावर एंड ए जैम" अर्थात्, स्थिरता एवं प्रेम दो अलग-अलग वस्तुएँ हैं—पुष्प और मणिके समान।

प्रेम और विवाहको लेकर कमलका आक्रोश समस्त पुरुष जातिके प्रति अत्यधिक है। वह जानती है कि आदिम युगोंसे ही समाजकी बागडोर पुरुषोंके हाथमें रहनेके कारण, उन्होंने अपने स्वार्थके अनुकूल सामाजिक नियमोंका विधान किया है। वह ऐसी मान्यताओंके प्रति विद्रोह प्रकट करती है। उसका स्पष्ट मत है, 'एक दिन जिन लोगोंने कहा था कि नर-नारियोंके प्रेमका इतिहास ही मानव-सभ्यताका सर्वापेक्षा सत्य इतिहास है, उन्हीं लोगोंने सत्यका पता सबसे अधिक पाया था, किंतु जिन लोगोंने घोषणा की थी—पुत्रके लिए ही स्त्रीका प्रयोजन है, वे लोग स्त्रियोंका केवल अपमान करके ही शांत नहीं हुए, वरन् अपने बड़े होनेके रास्तेको भी बंद कर गये।' कमल कोई ऐसा कारण नहीं जानती, जिसके आधारपर वह नारी जातिको पुरुषसे नीचा समझे, परंतु फिर भी उसे यह ज्ञात है कि नारियोंकी मुक्ति पुरुषों-द्वारा ही संभव है, क्योंकि 'विश्वका ऐसा ही नियम है; शक्तिके बंधनसे शक्तिमान लोग ही दुर्बलोंका परित्राण करते हैं। उसी तरह, नारियोंको मुक्ति आज भी केवल पुरुष ही दे सकते हैं। दायित्व तो उन्हीं लोगोंका है।' इन पंक्तियों-द्वारा कमल समस्त नारी-जातिकी मुक्तिके लिए, 'इमैन्सिपेशन' के लिए, अपील करती है। मनोरमा-के 'अपराध'को आशु बाबूसे क्षमा करानेके लिए उसकी इस युक्तिमें व्यावहारिक बुद्धिका प्राधान्य

जैसा हमने ऊपर देखा, भोग और संयमके संबंधमें कमलके अपेक्षाकृत सर्वाधिक दृढ़ विचार हैं। वह जीवनको घुटने देना नहीं चाहती। हरेन्द्रके आश्रमकी व्यवस्थाका वह तीव्र विरोध करती है, "उस दिन में आश्रममें जो कुछ देख आई हूँ, वह क्या संयम और त्यागकी शिक्षा है? उन लोगोंको क्या मिला है? मिला है दूसरोंका दिया दुःखका बोझ, मिला है अनधिकार, मिली है प्रवंचितकी क्षुधा। चीनियोंके देशमें जन्मकालसे ही लड़कियोंके पाँव छोटे बनाये जाते हैं। पुरुष उन्हें सुन्दर कहें—यह में सह सकती हूँ, किन्तु लड़कियाँ जब अपने उन पंगु, विकृत पैरोंकी सुन्दरता पर स्वयं ही मोहित होती हैं, तब मेरे लिए आशा करनेकी कोई भी बात नहीं रह जाती।" सनातन कालसे चले आनेवाले पुरुषोंके अत्याचारके प्रति कमलका यह तीखा विद्रोह है। जीवनकी स्वाभाविक गतिमें किसी भी प्रकारका अवरोध उसे असह्य है, किन्तु यह स्मरणीय है कि अति-संयमका वह तिरस्कार करती है, संयमको भी बहुत अधिक महत्ता नहीं देती, पर फिर भी वह जीवनमें भोगको प्रश्रय देनेके लिए प्रस्तुत नहीं, विचारोंमें भी और व्यवहारमें भी । हरेन्द्रसे वह कहती है, "केवल भोगको ही जीवनका सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य बनाकर कोई जाति कभी बड़ी नहीं हो सकती।" स्वयं अपने जीवनमें वह खान-पानको लेकर जिस कृच्छ्र-साधनाका आचरण करती है, वह किसी भी तपस्वीके लिए स्पृहणीय हो सकता है। ऐसा जान पड़ता है कि कमल वस्तुतः संयमका अनादर नहीं करती, वरन् संयमके नाम पर मिथ्या बंधनोंको वह अस्वीकार करती है। उसके अनुसार संयम जहाँ अर्थहीन है, वह केवल निष्फल आत्मपीड़न है। अजित-द्वारा विवाहका प्रस्ताव आनेपर वह यही कहती है, "बहुत मज़बूत बनानेके लोभसे एकदम ठोस और छिद्रहीन मकान बनानेकी इच्छा मत करना। उससे मुर्देकी क़ब्र भले ही बन जाय, जीवित मनुष्यका शयनागार नहीं बन सकता।"

कमलके संपूर्ण जीवन-दर्शनके मूलमें छिपी हुई है उसकी जिजीविषा—जीनेकी आकांक्षा। जीवनसे उसे गहरा अनुराग है। और जीवन भी कैसा,

जिसमें अचल होकर पड़े रहनेकी भावना नहीं है,वरन् जिसमें प्रत्येक कठिनाई का सामना करनेकी उमंग है। वह आत्महत्या करेगी, यह बात तो उसके 'विधाता भी नहीं सोच सकते।' किसी भी मूल्यपर कमल जीवनको निस्पंद एवं शिथिल नहीं होने देना चाहती। उसके निकट तो जीवनका सतत गतिहीन रहना ही काम्य है। अजितसे वह कहती है, "द्रुतगतिसे चलनेमें एक भारी आनंद है, वह चाहे गाड़ीकी हो या मनुष्य: जीवनकी ही क्यों न हो। किन्तु जो लोग डरपोक हैं, वे नहीं चल सकते। वे सावधानीसे धीरे-धीरे चलते हैं। सोचते हैं, पैदल चलनेका जो कष्ट बच गया, वही उनके लिए बहुत है। रास्तेको धोखा देकर वे खुश हैं, अपनेको धोखा दे रहे हैं, इसका पता ही उन्हें नहीं चलता।" परन्तु इसके साथ ही साथ कमल यह भी जानती है कि कृत्रिम उपायोंसे जीवनको विकृत बना देना उचित भी नहीं। 'संयम जब सहज स्वाभाविक न होकर दूसरे पर आघात करता है, तभी वह दुर्वह हो जाता है।' हरेन्द्रके ब्रह्मचर्याश्रमसे वह इसीलिए सन्तुष्ट नहीं है। उसका स्पष्ट मत है, "इनको मनुष्य बनाना चाहते हों तो साधारण, सहज मार्गसे बनाइए—मिथ्या दुःखका बोझ सिरपर लादकर असमयमें ही कुबड़ा मत बना दीजिएगा।"

जैसा हम पहले ही कह चुके हैं, कमलके व्यक्तित्वका एक प्रमुख गुण यह है कि वह जीवनके छोटे-से-छोटे आनन्दका भी तिरस्कार नहीं करती। इसलिए प्रेम, भले ही उसकी अवधि अत्यन्त सीमित हो, कमलके निकट सदैव श्रद्धेय एवं वांछनीय है। यही नहीं, क्षणिक मोहका भी वह पश्चात्ताप नहीं करती। और वैसे तो पश्चात्ताप करना उसके स्वभावमें ही नहीं है, 'जितना पा चुकी हूँ, उससे अधिक क्यों नहीं मिला है, इसकी मुझे ज़रा भी शिकायत नहीं है।' अस्तु, क्षणिक मोहको प्रश्रय देनेके लिए प्रस्तुत कमल एक अत्यन्त स्पष्ट भाव-चित्र (imagery) के माध्यम-द्वारा अजितसे कहती है, "किस आदिम कालमें कुहरेकी सृष्टि हुई थी, आज भी वह उसी तरह विद्यमान है। सूर्यको उसने बार-बार ढँका है और बार-बार

ढँकता रहेगा। सूर्य ध्रुव है या नहीं, मैं नहीं जानती, किन्तु कुहरा भी असत्य प्रमाणित नहीं हुआ है। ये दोनों ही नश्वर हैं और शायद दोनों ही नित्यकालके हैं। उसी तरह मोह भले ही क्षणिक हो, किन्तु क्षण भी तो मिथ्या नहीं है। क्षण भरका आनन्द लेकर ही वह बार-बार लौट आता है। मालती फूलकी आयु सूर्यमुखीकी तरह लंबी नहीं है, इसलिए कौन उसे असत्य कहकर उड़ा देगा!" इस प्रकार क्षणकी महत्ता या क्षणका असीमत्व उसकी विचार-धाराका प्रमुख अंग है। वस्तुतः आनन्दका प्रवाह उसके लिए समयातीत है। एक और हृदयग्राही भाव-चित्रके सहारे वह आशु बाबूको क्षणिक प्रेमके सौंदर्यसे अवगत कराती है—'सूर्यास्तके समय बादलोंपर जो रंग खिल उठता है चाचाजी, वह स्थायी भी नहीं है, वह उसका स्वाभाविक रंग भी नहीं है, किन्तु इसीलिए उसे झूठ कौन कहेगा?' कहना न होगा कि कमलका यह अत्यन्त स्पष्ट एवं अपीलिंग दृष्टिकोण आलोचककी व्याख्याकी अपेक्षा नहीं रखता।

कमल जीवनमें किसी भी जातिगत अथवा सांप्रदायिक भेद-भावको स्वीकार नहीं करती। वह संपूर्ण रूपसे मानवताकी उपासक है, मनुष्य-मात्रकी महत्तामें उसकी आस्था है। भारतीयताकी भावनाके प्रबल समर्थक आशु बाबूसे वह कहती है "भारतकी विशेषता और यूरोपकी विशेषता-में भेद है—किन्तु किसी देशके किसी वैशिष्टचके लिए मनुष्य नहीं है, मनुष्यके लिए ही उसका आदर है। असल बात विचार करनेको यह है कि वर्त्तमान समयमें उसका वह वैशिष्ट्य कल्याणकर है या नहीं। इसके सिवा सभी बातें केवल अंध-मोह है।" जीवनको उसके स्वाभाविक एवं समग्र रूपमें देखनेके ही कारण कमलका दृष्टिकोण सब प्रकारकी 'प्रेजुडिस' से परे, नितान्त उदार तथा मानवतावादी है। उसके निकट मनुष्य अपनी सारी अच्छाइयों और बुराइयोंके साथ भी श्रद्धेय है। वह एक राष्ट्रकी नहीं, वरन् एक विश्वके संगठनकी कामना करती है—"विश्वके सभी मानव यदि एक ही चिन्ता, एक ही विधि-निषेधकी ध्वजा पकड़कर खड़े हो जाँय तो उससे हानि ही क्या है? भारतीयके रूपमें हम पहचाने न जायँगे, इसी बातका

तो भय है ? भले ही न पहचाने जाँय। विश्वकी मानव जातिमें-से हम भी एक हैं, इस तरहका परिचय देनेमें तो कोई आपत्ति न करेगा, उसका गौरव भी क्या कुछ कम है ?" इसलिए किसी भी देशकी संस्कृतिके गुणोंको वह ग्रहण करनेके लिए प्रस्तुत है। इसमें उसे लज्जा या हीनताका अनुभव नहीं होता। संपूर्ण मानवताका कल्याण हो, यही उसकी 'ऐथिक्स' है।

कमल एक ओर यदि अत्यधिक चिन्तनशील है तो दूसरी ओर उसकी तर्कशक्ति भी एकदम सुलझी हुई एवं प्रखर है। पूरा-का-पूरा उपन्यास उसके बौद्धिक कथोपकथनोंसे भरा पड़ा है। हर-एक विषयपर उसका अपना सुचिंत्य मत है, जिसे वह अत्यंत शक्ति एवं प्रभावके साथ अभिव्यक्त करती है। तर्कमें दुराग्रह करना उसकी प्रकृतिके विरुद्ध है, परंतु उसके तर्क स्वयं इतने अकाट्य हैं कि उनके सम्मुख प्रतिपक्षियोंको झुकना ही पड़ता है। उसकी बातचीतमें वकीलोंकी-सी जिरह मिलती है। नारीके पातिव्रत-धर्मके संबंधमें अपना मत देती हुई वह कहती है, "अनेकानेक लोग बहुत दिनोंसे कोई एक बात कहते आ रहे हैं, इसीलिए मैं उसे मान नहीं लेती। पतिकी स्मृति-को हृदयमें लेकर विधवाको जीवन बिताना चाहिए, इस प्रकारकी स्वतः सिद्ध पवित्रताकी धारणाको भी मेरे सामने जबतक कोई पवित्र प्रमाणित नहीं कर देता, तबतक मुझे उसे स्वीकार करनेमें हिचकिचाहट ही रहेगी।" उक्त सिद्धांत हमारी प्रचलित परंपराओं एवं मान्यताओंके विरुद्ध है, पर फिर भी हम यह जानते हैं कि उसे आसानीसे निराधार सिद्ध नहीं किया जा सकता। और यह स्पष्ट है कि कमलकी अचूक तर्क-शक्तिके प्रायः वही मत-वाद शिकार होते हैं, जो युग-युगोंसे हमारी भावनाओंसे लिपटे चले आ रहे हैं। नीतिशास्त्रमें कर्त्तव्यकी भावनाको प्रायः बहुत महान् एवं स्पृहणीय माना जाता है, परन्तु कमलका कहना है कि 'कर्त्तव्यमें जो आनन्द-सा प्रतीत होता है, वह दुःखका ही नामान्तर है। उसको बुद्धिके शासनसे ज़बर्दस्ती मान लेना पड़ता है। वही तो है बंधन।' इसी प्रकार बहु-कथित संयमको भी वह जीवनका बड़ा आदर्श नहीं मानती। हरेन्द्रसे वह कहती है, "सभी संयमोंकी तरह यौनसंयममें भी सत्य निहित है, किन्तु वह गौण

सत्य है। आडंबर करके उसको जीवनका मुख्य सत्य बना देनेसे वही हो जाता है एक प्रकारका असंयम। उसका दंड भी है। आत्मनिग्रहके उग्र दम्भसे आध्यात्मिकता क्षीण हो जाती है।" और तब आश्चर्य ही क्या जो हरेन्द्रको पराजित स्वरोंमें कमलके सम्मुख स्वीकार करना पड़ता है, "आपके साथ तर्कमें जीतनेका उपाय नहीं है।" यही नहीं, अविनाश भी इस बातसे सहमत हैं।

कमलके अत्यधिक तर्कशील होनेका एक प्रधान कारण यह है कि उसका वार्तालाप सदैव बौद्धिक-स्तरपर रहता है। भावनाओंके आवेगमें वह बह नहीं जाती। इसीलिए उन सारी बातोंको जिन्हें हम प्रायः स्वतःसिद्ध माना करते हैं, कमल सदैव एक शंकालुकी दृष्टिसे देखती है। वह प्रत्येक बातकी तह-तक पहुँचना चाहती है। मत और कार्य-पद्धतिके संबंधमें विवेचन करती हुई वह राजेन्द्रसे कहती है, "मत और काम दोनों ही बाहरकी वस्तुएँ हैं राजेन, मन ही सत्य है।" यहाँ हमें कमलके तत्त्वतक पहुँचनेवाले स्वभावके दर्शन होते हैं। एक बात और है। अपने इन तत्त्वदर्शी सिद्धातोंको वह यथासंभव अत्यंत संक्षेपमें—प्रायः सूत्र शैलीमें व्यक्त करती है। "अँधेरेका उससे भी बड़ा एक और अपराध है अजित बाबू, अकेले जानेमें डर लगता है"; "मेरे आँगनके पास जो फूल खिलते हैं, उनका जीवन बहुत कम है; उससे वह मसाला पीसनेका लोढ़ा अधिक टिकाऊ है, अधिक दीर्घ स्थायी है, फूलको जो नहीं पहचानता उसके लिए वह पत्थरका लोढ़ा ही बड़ा सत्य है"; "पेड़के पत्ते सूखकर झर जाते हैं, उनकी क्षति नये पत्ते भर देते हैं; यह तो हुआ झूठ, और बाहरकी सूखी लता मर जाने पर भी पेड़के सर्वांगसे चिपटकर, जकड़कर उससे कसके लिपटी रहती है, वही हो गया सच?"—इस प्रकार-के संक्षिप्त परन्तु अपीलिंग वाक्योंसे कमलका वार्तालाप सदैव युक्त रहता है। अंतिम उदाहरणसे शरत् बाबूके भाव-चित्रों (Imageries) के कुशल चयनका आभास मिलता है। कहना न होगा कि इस प्रकारकी सूत्रात्मक शैलीके प्रयोगसे पात्रोंके कथोपकथन कितने प्रभावोत्पादक हो जाते हैं। यही आशु बाबूके शब्दोंमें कमलकी 'बातोंकी जादूगरी' है।

कमलकी बातचीतकी शैली नितांत स्पष्ट एवं प्रखर होती हुई भी अत्यन्त मिष्ट है। किसीके मनको चोट पहुँचानेके लिए वह तर्क नहीं करती। आशु बाबूका कहना है, "क्या ही मीठी बातें हैं उस लड़कीकी,—केवल सौंदर्य ही नहीं है।" यही नहीं, शिष्टता एवं नम्रता भी उसके वार्तालापके अनिवार्य गुण हैं। इसी कारण उसका सत्यवादी होना और भी सराहनीय है। किसीकी झूठी प्रशंसा करना वह नहीं जानती, परन्तु उसकी अप्रशंसा भी अशिष्ट नहीं है। जो बात उसके मनमें है, वही मुखमें भी। अपनी माताकी कलंक-कथा वर्णित करनेमें उसे किसी प्रकारकी लज्जाका अनुभव नहीं होता। स्वर्गीय पिताका स्मरण करती हुई वह कहती है, "मैं तो कभी झूठ नहीं बोलती अजित बाबू। इस जीवनमें कभी किसी भी कारण झूठी चिंता, झूठा अभिमान, झूठी बातका आश्रय मैं न लूँ, बाबूजी यही शिक्षा मुझे बार-बार दे गये हैं।" कमलके मनमें सत्यके लिए कितना अधिक आग्रह है, इसका आभास हमें उसके उपर्युक्त कथनसे मिलता है। इसके साथ-साथ कमल मात्र सत्यभाषी नहीं है, वह निरंतर सत्यका आचरण भी करती है। उसके संबंधमें अजितका कहना है, "शायद किसीको धोखा देनेका स्वभाव उनका नहीं है।" और तो और कमलसे संबंध विच्छेद कर लेनेपर भी शिवनाथ उससे पाखंडकी आशा नहीं करता। स्वयं कमल भी हरेन्द्रसे कहती है, "मेरे काम भले हुए या बुरे, मेरा जीवन पवित्र है या कलुषित, इस विषयमें आप चुप हैं, किन्तु वे तो गुप्त रूपसे न होकर आँखोंके सामने सबकी उपेक्षा करके ही होते रहे हैं।" इस प्रकारसे कमलका व्यक्तित्व हमारे सम्मुख एक खुले पृष्ठके समान आ जाता है, जो चाहे उसे पढ़े।

कमलके तार्किक रूपके पीछे अनिवार्यतः रहनेवाला उसका विचारक रूप अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। आशु बाबूके शब्दोंमें, उसने 'जो कुछ सीखा है, बिलकुल संशय छोड़कर खूब अच्छी तरह सीखा है। उम्र भी तो अभी अधिक नहीं है, किन्तु अपने मनको मानो उसने इसी अवस्थामें पूर्णतः उपलब्ध कर लिया है।' वस्तुतः कमलके व्यक्तित्वकी प्रमुख विशेषताएँ उसके विचारोंमें हैं—ऐसे विचार जो प्राचीन रूढ़ियों एवं परंपराओंसे मुक्त होकर एक स्वस्थ

एवं सबल समाजके निर्माणकी ओर दिशा-निर्देश करते हैं। जीवनकी वास्तविकताके हर पहलूको कमलने अपनी आँखों देखनेकी चेष्टा की है, इसीलिए उसका ज्ञान पौस्तकीय नहीं है, और इसीलिए वह विद्वज्जनोंके आप्त वाक्योंको ज्यों-का-त्यों माननेके लिए प्रस्तुत नहीं है। उसके विचारोंमें एक निश्चितता है, एक आत्मनिष्ठा है, जिससे वह दुराग्रही अथवा हठवादी नहीं बनती, वरन् सच्चे अर्थोंमें एक द्रष्टा बनती है। अध्यापकीय ज्ञान उसे कम मिला है, चिंतन एवं मननकी प्रवृत्ति उसमें अधिक है। उसका यह चिंतन एवं मनन अपने मूलमें सृजनात्मक है, भले ही अपने बाह्यरूपमें वह विनाशात्मक जान पड़े। और समाजके उन तत्त्वोंका तो कमल विनाश ही चाहती है, जिनकी स्थितिसे निर्माणका कार्य अवरुद्ध हो गया है। कमलकी विचार-धाराके संबंधमें, आशु बाबूके रूपमें शरत् बाबू चेतावनी देते हैं कि 'उसकी सब बातें सब समय समझमें भी नहीं आतीं, मानी भी नहीं जा सकतीं।' वस्तुतः उनको समझनेके लिए बहुत सुलझे हुए मस्तिष्ककी आवश्यकता है।

अपने एकनिष्ठ प्रेम संबंधी दृष्टिकोणको आशुबाबूके सम्मुख उपस्थित करनेपर, उन्हें क्षुब्ध होते देखकर कमल ठीक ही कहती है, "बहुत दिनों-से दृढ़ मूल संस्कारमें आघात लगनेसे मनुष्य हठात् उसे सह नहीं सकता।" अपने सिद्धांतोंके संबंधमें दूसरोंकी प्रतिक्रियाके प्रति सहनशील रहना, सच्चे विचारकका प्रथम गुण है। इससे उसकी मनन-शक्तिकी गहराईका पता चलता हे। अपनी शक्तिपर विश्वास होनेके ही कारण कमल दूसरी सभ्यताओंके अनुकरणमें लज्जाकी कोई बात नहीं देखती। इसी प्रकारसे भूल होनेपर उसे स्वयं सुधार लेनेको भी वह अप-मानकर नहीं समझती। उसका मत है कि यदि कोई कार्य उचित लगता है तो उसे बिना किसी भयसे त्रस्त हुए कर डालना चाहिए। और फिर यदि उसमें कोई भूल दिखाई दे तो तुरंत ही उसका संशोधन भी कर डालना चाहिए। इस मत पर वह दृढ़ विश्वास रखती है, स्वयं उसपर आचरण करती है, और दूसरोंको भी उसीका उपदेश देती है। इसीलिए मनोरमा

और शिवनाथके संबंधमें, आशु बाबूकी धारणाओंके प्रतिकूल, उसे कुछ भी कुत्सित नहीं दिखाई देता। उपन्यासके अंतिम भागमें, अपनी विचार-धाराका सार तत्त्व-सा उपस्थित करती हुई वह कहती है, "आचार-अनुष्ठानको झूठा बनाकर मैं उड़ा देना नहीं चाहती, मैं तो केवल इसमें परिवर्त्तन करना चाहती हूँ। समयके धर्मानुसार आज जो अचल होते जा रहे हैं, उन्हींको मैं चोट पहुँचाकर सचल कर देना चाहती हूँ।" यह मात्र बौद्धिकताकी भावनाओंपर विजय नहीं है, वरन् बुद्धि और हृदयका सच्चा समन्वय है।

अपने संपूर्ण व्यक्तित्वमें क्रांतिकारिणी होते हुए भी कमलका व्यावहारिक संयम अत्यंत सराहनीय है। उसकी सहनशीलता—विचारगत एवं कर्मगत, अपने आपमें श्रद्धेय है। अत्यंत क्रोधी अक्षयके अनेक आक्षेपों एवं आरोपोंका उत्तर वह हँसकर देती है। अक्षयके अतिरिक्त अन्य सारे विरोधियोंके व्यंग्य बाणोंको भी वह शांतिपूर्वक सहन करती है, मानो उनके द्वारा किये गये सारे मान-अपमानोंसे वह परे है। जिस ऊँचाईपर वह प्रतिष्ठित है, वहाँतक इन तुच्छ व्यक्तियोंकी पहुँच ही नहीं है। अपने विरुद्ध सामाजिक षड़यंत्रकी बात सुनकर वह आशु बाबूसे एक स्मित हास्यके साथ कहती है, "अर्थात् कुशांकुरके ऊपर वज्राघात! किन्तु समाज और लोकालयोंसे बहिर्गत मुझ सदृश एक तुच्छ औरतके विरुद्ध षड़यंत्र किसलिए? मैं तो किसीके घर जाती नहीं।" इसीलिए उसके मनमें किसीके प्रति कोई विरुद्धताका भाव नहीं है। वस्तुतः वह दूसरोंको इस योग्य समझती ही नहीं कि वे उसका किसी प्रकार अपमान कर सकते हैं।

और सबसे बढ़कर उसका सुकठोर धैर्य है। शिवनाथकी प्रवंचना जानकर 'चेहरेपर वेदनाका आभास नहीं फूटा और न तो अभियोगकी भाषा ही निकली।' नियतिका इतना बड़ा आघात उसे तनिक भी न डुला सका। वह यथावत् स्थिर बनी रही। जैसा हम जानते हैं, उसके इस अपार धैर्यके पीछे उसका जीवन-दर्शन है, जो क्षणके आनंदको महत्ता देता है,

और किसीके विरुद्ध कोई शिकायत करना नहीं जानता। यही नहीं, अनुकूल एवं प्रतिकूल समयके प्रवाहने भी उसकी प्रकृतिको कठोर बना दिया है। साहसिकतामें वह किसीसे कम नहीं है। जगत्में किसी भी बातसे वह डरती नहीं है, मृत्युसे भी नहीं। उसका स्पष्ट मत है, 'पुरुषके भोग्यकी वस्तु जो लोग हैं, मैं उनकी जातिकी नहीं हूँ।' यह वाक्य मानो उसके व्यक्तित्वका मूल सूत्र है। अभीतक पुरुषसे स्वतंत्र करके नारीको सामाजिक विधानोंमें स्थान नहीं दिया गया, परन्तु कमल इस नियमका अपवाद सिद्ध होती है। वह दिखा देती है कि नारी यदि चाहे तो पुरुषकी भोग्या हुए बिना भी अपना जीवन-निर्माण कर सकती है। उसके व्यक्तित्वकी दृढ़ता सदैव अक्षुण्ण रहती है। उसकी विचार-धारा कहीं बदलती नहीं, इसीलिए बहुत-से स्थानोंपर हमें उसके वार्तालापमें पुनरुक्ति दिखाई देती है। आवेगके वशमें होकर उसका करणीय अन्यथा नहीं हो जाता। प्रबल मनोवेगोंसे आक्रांत अजितसे वह कहती है, "केवल एक ही रातकी भूलके बदलेमें इतना बड़ा दण्ड आपके सिरपर लाद देनेमें मुझे दया आ रही है।" रागकी छायामें कमलका यह विराग उसके स्वस्थ एवं सबल व्यक्तित्वका परिचायक है।

जैसा हम अपनी इस समीक्षामें कई बार कह चुके हैं, प्राचीनके प्रति विद्रोह कमलके व्यक्तित्वकी मौलिक धारणा है। शेलीकी 'पच्छिमी हवा'के समान वह उस सबको स्थान-च्युत कर देना चाहती है, जो पीत है, जो जर्जरित है। परम्पराओंसे उसे कोई मोह नहीं, प्राचीनताकी महत्ता उसे मान्य नहीं। जो कुछ सामूहिक रूपसे कल्याणकर है, वही उसके निकट मान्य है। और वही उसके लिए जीवनका सबसे बड़ा सत्य है। वह यह भी जानती है कि 'मिथ्याके साथ समझौता करनेके लिए जीवनकी कितनी ही सम्पदा मनुष्य नष्ट कर डालता है।' परन्तु वह स्वयं कभी ऐसा समझौता करनेके लिए प्रस्तुत नहीं होती। सत्यका आवरण धारण करनेवाले मिथ्याको तो वह टिकने ही नहीं देना चाहती, भले ही वह मिथ्या अत्यंत प्राचीन क्यों न हो। उसका स्पष्ट मत है, "कोई आदर्श ही बहुत दिनोंसे स्थायी रहा है, इसी कारण वह चिरस्थायी नहीं हो सकता, और उसके परिवर्तनमें भी लज्जा

नहीं है,—यही बात मैं आपसे कहना चाहती थी, उससे यदि जातिकी विशिष्टता चली जाती है, तो भी।"

प्राचीनतामें अनावश्यक आस्था रखनेवाले व्यक्तियोंके लिए कमलके उक्त सिद्धांत नितांत अनर्गल हो सकते हैं, परन्तु निरपेक्ष विचारकोंकी दृष्टिमें उनका मूल्य उपेक्षणीय नहीं। कमलकी यह बात कितनी अधिक सच है कि 'लुप्त वस्तुओंका पुनरुद्धार मात्र अच्छा ही होता है, इसका प्रमाण नहीं है। मोहके नशेमें बुरी वस्तुओंका भी पुनरुद्धार होते देखा जाता है। इतिहास इस बातका साक्षी है कि इस प्रकारकी भूल एक बार नहीं, अनेक बार हमारे सुधारकों-द्वारा हुई है।' अतीतके प्रति यह जड़ मोह मानवताके विकासके लिए कितना घातक है, इसे सभी समाजशास्त्री जानते हैं। परन्तु इसी तथ्यको कमल अपनी शैलीमें कहती है, उसे और भी प्रभावोत्पादक बनाकर। "वस्तु अतीत होती है कालके धर्मसे, किन्तु उसे अच्छा होना पड़ता है अपने गुणों से। केवल प्राचीन होनेसे ही वह पूजनीय नहीं हो जाती।" कमलका यह मंतव्य जितना ही कठोर है, उतना ही सत्य भी। मात्र भावनाओंके आवेगमें हम इस तथ्यको भुला नहीं सकते और इसीलिए उसकी उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। वृद्ध एवं अनुभवी आशुबाबू इसी बातको यों कहते हैं, "तुम लोग तो उसे जानते ही हो, जो कुछ प्राचीन है उससे उसको प्रबल घृणा है। हिला-डुला कर तोड़ डालना ही मानो उसका फैशन है। मन सम्मति प्रकट करना नहीं चाहता, चिर दिनका संस्कार भयके कारण काठ-सा हो जाता है, तो भी कोई बात ढूंढ़नेसे नहीं मिलती, हार मान लेनी पड़ती है।" कहना न होगा कि यहाँ आशुबाबू कमलके चरित्रके अनेक अध्येताओंका प्रतिनिधित्व करते हैं।

अत्यंत निर्धन अवस्थामें जीवन व्यतीत करती हुई भी कमल अपने आत्म-सम्मानकी सदैव रक्षा करती है। हरेन्द्रसे वह कहती है, "मैं सचमुच ही बहुत ग़रीब हूँ, अपना भरण-पोषण करनेकी जितनी मुझमें शक्ति है, उससे अधिक कुछ नहीं किया जा सकता। पिताजी मुझे कुछ भी देकर नहीं जा सके हैं, किन्तु वे मुझे दूसरोंके अनुग्रहसे मुक्ति पानेके लिए यह बीज

मंत्र देकर गये हैं।" और कमल अपने व्यावहारिक जीवनमें सदैव इस आदर्श-का निर्वाह करती है। अजित आशुबाबूको ठीक ही बताता है कि 'वह (रुपये की जरूरत) उनके (कमलके) आत्मसम्मानकी अपेक्षा बढ़कर नहीं भी हो सकती है।' यहाँ स्मरणीय यह है कि कमलका व्यक्तित्व आत्मसम्मानसे युक्त होने पर भी दर्प अथवा व्यर्थके अभिमानकी भावनासे रहित है। नीलिमाके शब्दोंमें, 'यों तो लड़की बहुत अच्छी मालूम होती है, अहंकार ज़रा भी नहीं है।' परन्तु फिर भी उसकी दृढ़ता ऐसी है कि वह अपने अत्यधिक प्रिय शिवनाथसे भी दुबारा संबंध नहीं जोड़ना चाहती।

कमल अनिवार्यतः एक स्वावलंबी महिला है, इसीलिए उसे आत्मा-भिमान शोभा भी देता है। अजितसे वह स्पष्ट कहती है, "कमल किसीकी संपत्ति नहीं है। वह केवल अपनी ही है, और किसीकी नहीं!" उसकी इस घोषणाका मूल्य तब और बढ़ जाता है, जब हम देखते हैं कि वह कितनी दरिद्र है, परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि कमलकी यह दरिद्रता 'मानो महा-देवजी की दरिद्रता है' जिसमें ऐश्वर्यके प्रति एक विचित्र उदासीनताका भाव है; और इन सबके पीछे उसके मनकी समृद्धता है। उसकी इस मनकी समृद्धताके ही कारण बड़ी-से-बड़ी असहायावस्था भी इस रमणीको लेशमात्र भी दुर्बल नहीं कर सकी है। अपनी विषम परिस्थितियों में भी वह 'भीख नहीं माँगती—भीख देती है।' आशुबाबू, हरेन्द्र इत्यादि सभीको उसके साहसकी प्रशंसा करनी पड़ती है। किसीके मतामतका मुँह देखते रहनेकी चिंता उसके कर्त्तव्यमें बाधा नहीं डालती। नीलिमाके शब्दोंमें, "कमलको देखते ही दिखाई पड़ता है कि वह स्वाधीनता अपनी पूर्णतासे, आत्माके अपने विस्तारसे स्वयं ही आती है।" ऐसा जान पड़ता है मानो उसकी कर्मण्यता एवं उसकी मानसिक स्वाधीनताने मिल कर ही उसके जीवनको इतना समृद्ध तथा इतना संतोषप्रद बना दिया है। अशांति अथवा असंतोष-की ज्वाला उसके मनको कभी नहीं जलाती। बड़े-बड़े धनी व्यक्तियोंके बीच भी वह कपड़ोंकी सिलाई करके तथा एक समय खाना खा कर अपना जीवन व्यतीत करती है। व्यक्तियोंसे संतुष्ट, समाजसे संतुष्ट, नियति तथा स्वयं

अपने आपसे संतुष्ट — यही है कमलके व्यक्तित्वका अपरिसीम वैभव। किसीका अनुग्रह वह स्वीकार नहीं करती, यहाँ तक कि आशु-बाबूका भी नहीं।

अपने आपमें ही अत्यधिक विश्वास रखनेके कारण, कमल भगवान्के प्रचलित स्वरूपमें विश्वास नहीं रखती। अजितसे वह कहती है,"भगवान्को तो मैं मानती नहीं, नहीं तो उनसे प्रार्थना करती कि दुनियाके सभी आघातोंकी आड़में तुमको रख कर ही एकदिन मैं मर सकूँ।" परन्तु यह एक विचित्र तथ्य है कि भगवान्का अस्तित्व न मानते हुए भी कमल एक ऐसी अज्ञात सत्तामें अवश्य विश्वास रखती है, जो मानव-जीवनके साथ सदैव खिलवाड़ किया करती है। दूसरे शब्दोंमें हम इस अज्ञात शक्तिको नियति कह सकते हैं। अजितसे ही वह कहती है, "यही तो मनुष्यकी सबसे बड़ी भूल है। वह सोचता है मानो सब कुछ उसके ही हाथमें है। किन्तु कहाँसे कौन उसकी सारी व्यवस्था उलट-पुलट देता है, इसका पता किसीको नहीं चलता।" ऐसा जान पड़ता है कि यद्यपि भगवान्के परंपरागत रूढ़ियोंमें बँधे हुए स्वरूप-को कमल नहीं मानती, फिर भी वह किसी एक ऐसी शक्तिका अस्तित्व अवश्य स्वीकार करती है जो मनुष्यके कर्मोंकी नियामक है—शेक्सपियरके शब्दोंमें, 'देयर इज़ ए डिविनिटी दैट शेप्स अवर ऐन्ड्स' इस प्रकार उसका 'भगवान्'—यदि हम उसे भगवान् संज्ञा दे सकें—भावनाओंसे निर्मित नहीं हुआ है, उसका अस्तित्व मनन और चिंतन पर आधारित है।

यहाँ तक तो हमने कमलके चरित्रकी व्याख्या स्वयं उसीकी विचारधारा तथा आचरणको ध्यानमें रखते हुए की। अब हम बहुत संक्षेपमें उपन्यासके अन्य पात्र-पात्रियोंसे उसका संबंध दिखानेकी चेष्टा करेंगे। एक प्रकारसे कमलका व्यक्तित्व 'शेष प्रश्न' का केन्द्र बिन्दु है, जिसके चारों ओर अन्य चरित्र घूमते हैं। कमल एवं आशुबाबूके पारस्परिक संबंधका अध्ययन हमारे लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है, क्योंकि इस संबंधमें अब दो मत नहीं हैं कि 'शेष प्रश्न' के आशु वैद्यमें स्वयं शरत्बाबूका व्यक्तित्व उभरकर आया है। सच तो यह है कि संपूर्ण शरत्-साहित्यमें 'शेष प्रश्न' का सर्वाधिक महत्त्व-

पूर्ण स्थान होनेका एक प्रधान कारण यह भी है। इसीलिए कमलके बारेमें आशुबाबूके मत विशेष रूपसे ध्यान देने योग्य हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि बहुत-से स्थानोंपर घोर मत-विरोध होनेपर भी आशुबाबू कमलके प्रशंसक हैं। प्रथम भेंटके समयसे ही वे उससे प्रभावित हो जाते हैं, तथा अपने वर्णनोंमें वे उसे 'लक्ष्मीकी मूर्ति' कहकर अभिहित करते हैं। इधर कमल भी इस वृद्ध तथा स्नेहशील व्यक्तिको प्यार करने लगती है। वह उनकी लड़की होनेकी कामना प्रकट करती है। प्रत्युत्तरमें आशुबाबू उसे 'बेटी' कह कर पुकारते हैं और उससे आग्रह करते हैं कि वह उन्हें चाचाजी कह कर संबोधित किया करे। वे कमलसे कहते हैं, "मेरी मणिकी अपेक्षा मानो तुम किसी अंश में भी छोटी नहीं हो बेटी।" कमल और आशुबाबूके इस कोमल संबंधमें केवल एक स्थान पर व्याघात उत्पन्न होता है, और वह तब जब वह उन्हें ऋण लेनेके लिए अपना जामिन बनाना चाहती है। आशुबाबू इस बातपर कमलकी बहुत भर्त्सना करते हैं, यद्यपि शीघ्र ही उनका यह क्रोध शांत हो जाता है। इसके बाद कमल आशुबाबूसे अपना संबंध पूर्ववत् बनाये रहने पर भी उनसे किसी भी प्रकारकी सहायता नहीं लेती। वह उनसे कहती है, "आप मुझसे स्नेह करते हैं, किन्तु कहींपर भी हम लोगोंमें मेल नहीं है।" इस वाक्यकी ध्वनिसे स्पष्टतः ज्ञात होता है कि यह स्वयं शरत्‌बाबूको संबोधित है। बहुत कुछ इसी प्रकारकी भावनाको व्यक्त करती हुई कमल उपन्यासके अंतिम भागमें फिर कहती है, "किन्तु आपको तो मैं किसी तरफ़से भी सान्त्वना नहीं दे सकती। शरीर और मनसे जब आप अत्यंत पीड़ित हैं, सान्त्वना देना ही जब कि अधिक आवश्यक काम है, तब भीतरसे मानो मैं केवल चोट ही पहुँचाती रहती हूँ। तो भी किसीसे भी आपको मैं कम प्यार नहीं करती चाचाजी!" इस प्रकार हम देखते हैं कि कमल और आशुबाबूका पारस्परिक संबंध बहुत कुछ विचित्र है। उनके मन मिलते हुए भी, मत एक दूसरे से नहीं मिलते; यद्यपि अपनी विस्तृत सहानुभूतिके कारण आशुबाबू कमलकी कुछ युक्तियोंको सत्य भी मानते हैं। अंततोगत्वा कुछ हिचकिचाते हुए आशुबाबू (शरत्‌बाबू) को अपना

निर्णय देना ही पड़ता है। वे कहते हैं, 'तर्कमें जो कुछ भी क्यों न कहूँ, तुम्हारी बहुत-सी बातोंको ही मैं मानता हूँ।'

कमल और शिवनाथका संबंध बहुत दिनों तक स्थायी नहीं रह पाता। इस संबंधके मूलमें क्षणिक आनंदको महत्त्व देनेवाला कमलका जीवन-दर्शन है। उन दोनोंका विवाह जितनी आसानीसे होता है, उतनी ही आसानीसे विच्छेद भी। एकबार पतिसे संबंध टूट जानेपर फिर कमल उसे दुबारा जोड़नेको तैयार नहीं होती। शिवनाथके मुँहसे अपना प्रिय नाम शिवानी उसे अच्छा नहीं लगता, परंतु दूसरी ओर, शिवनाथसे अत्यधिक वंचना पानेपर भी वह उनका तिरस्कार नहीं करती। उसका स्पष्ट मत है, "शिवनाथ गुणी मनुष्य हैं, उनके विरुद्ध मेरी तरफ़से कोई बड़ी शिकायत नहीं है। शिकायत करनेसे भला क्या लाभ हो सकता है? हृदयकी अदालतमें तो एकतरफ़ा विचार ही एकमात्र विचार है, उसके लिए तो कोई अपील नहीं मिलती।"

कमलके प्रति अजितके मनमें कई प्रकारकी भावनाएँ रही हैं। प्रारंभमें वह कमलसे घृणा करता है; फिर कुछ परिचय बढ़नेके उपरांत वह उसका प्रशंसक बन जाता है। इसी बीच कमलके जन्म और वंशका वर्णन सुनकर एक बार उसके मनमें फिर इस विचित्र रमणीके प्रति जुगुप्साका भाव जाग्रत होता है, परंतु अंततोगत्वा वह कमलके जादूसे बच नहीं पाता, और फलस्वरूप उसके सम्मुख विवाहका प्रस्ताव रखता है। स्वयं कमल भी अजितके प्रति कम आकर्षित नहीं है, वह मन ही मन उसे प्यार भी करती है। घर आनेके लिए कहकर वह उसकी अत्यंत व्याकुलताके साथ प्रतीक्षा करती है। प्रतीकात्मक शैलीको अपनाते हुए वह कहती है, "ठीक जगह पर पहुँचा देनेका दायित्व आपका है—मेरा कर्त्तव्य है केवल आपपर विश्वास किये रहना।" वस्तुतः वह अजितके हृदयकी सरलतापर मुग्ध है, परन्तु इतनेपर भी वह मनोवेगोंके आवेशमें आकर अपने आपको अजितके प्रति एकदम समर्पित नहीं कर देती। और अंतमें जब वह बिना विवाह किये ही अजितके साथ रहना चाहती है तो वह केवल उसकी दुर्बलताके ही कारण। वह अजितको आश्वासन देती है, "ज़ोरकी ज़रूरत नहीं। बल्कि तुम अपनी दुर्बलतासे ही मुझे बाँध रखना;

तुम जैसे मनुष्यको संसारमें यों ही बहाकर चली जाऊँगी, इतनी निष्ठुर मैं नहीं हूँ।" और इसीलिए कई व्यक्तियोंके प्रणय-सूत्रोंको तोड़कर वह अजितको ही स्वीकार करती है।

कमलके अजेय रूप-यौवन तथा असाधारण बुद्धिमत्ताको यदि कहीं झुकना पड़ा है तो राजेनके सम्मुख। इस नितांत दृढ़ तथा लापरवाह लड़केको वह घनिष्टताका दान देना चाहती है, उससे आग्रह करती है कि वह उसे मात्र कमल कह कर पुकारे। किन्तु राजेन उसके इस आग्रहको नहीं मानता। वह उसकी 'अक्षय मित्रता' का प्रस्ताव भी अस्वीकृत कर देता है। एक बार कमल फिर उसे सावधान करती है, "ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। मित्रता नामकी चीज़ संसारमें दुर्लभ है, और मेरी मित्रता तो उससे भी दुर्लभ है। जिसको पहचानते नहीं हो; उसकी अश्रद्धा करके अपनेको छोटा मत बनाओ।" परन्तु इससे भी राजेनका मन विचलित नहीं होता; उसका मत पूर्ववत् दृढ़ रहता है। वह स्पष्ट बता देता है कि कमलकी मित्रताका उसके लिए कोई मूल्य नहीं है, कोई उपयोग नहीं है। और तब कमलका मुँह लाल हो उठा। "किसीने मानो उसे चाबुक मारकर अपमानित कर दिया। वह अतिशिक्षिता, अति सुन्दरी और प्रखर बुद्धिशालिनी है। वह पुरुषकी कामनाका धन है, यही थी उसकी धारणा, उसका दृप्त तेज अपराजेय है, यही था उसका अकपट विश्वास। संसारमें नारियोंने उससे घृणा की है, पुरुषोंने आतंककी आगसे भस्म कर देना चाहा है। अवहेलनाका ढोंग न किया हो ऐसी बात भी नहीं है, किन्तु यह तो वही बात नहीं है। आज इस मनुष्यके सामने मानो वह तुच्छताका अनुभव करनेके कारण मिट्टीमें मिल गई। शिवनाथने उसे धोखा दिया है, किन्तु इस तरह दीनताका चीर उसके शरीरमें नहीं लपेट दिया।" इस लंबे उद्धरणमें उपन्यासकारने कमलके क्षुब्ध तथा अपमानित रूप और यौवनकी प्रतिक्रियाका वर्णन किया है। कमलके व्यक्तित्वका तेज राजेनके व्यक्तित्वकी प्रखरताके सम्मुख फीका पड़ गया है। यहाँ प्रतिदान कमल नहीं देती, वरन् राजेन देता है। रुग्ण शिवनाथकी परिचर्या करनेके समय वह कमलसे कहता है, "अन्यान्य

स्त्रियोंकी तरह जैसा मैंने आपको सोचा था वैसी तो आप नहीं हैं। आपका भरोसा किया जा सकता है।" कहना न होगा कि कमलके तेजस्वी व्यक्तित्वके लिए राजेनकी दयाका यह दान कितना अपमानजनक है। अपने अपरिमित सौंदर्यके प्रति इस लापरवाह लड़केकी नितांत उदासीनता, तथा उसके प्यार तथा उसकी चिंताके प्रति उसका तटस्थ भाव, उसके मनकी सारी वासनाओंको संयमित कर देता है, यद्यपि अतृप्ति तथा तज्जन्य प्रतिशोधकी चिनगारी उसके हृदयके एक कोनेमें अवस्थित रहती है। अत्यंत दयनीय भावसे उसे शिवनाथके सम्मुख स्वीकार करना पड़ता है कि यदि राजेन उसके साथ रह जाय तो यह उसके लिए (कमलके लिए) सौभाग्यकी बात होगी। परंतु कमलकी यह आकांक्षा एकदम अतृप्त ही रहती है। और तज्जन्य उसके मनका अवश तथा दुर्बल प्रतिशोध उस समय प्रकट होता है जब उपन्यासके अंतमें राजेनकी दुखद मृत्युका समाचार हरेन्द्र पढ़कर सबको सुनाता है। उस समय 'उसकी आँखोंसे अग्निस्फुलिंग-से निकलने लगे, बोली—दुःख किस बातका ? वह वैकुण्ठमें चला गया है। फिर हरेन्द्रसे उसने कहा—रोइए मत हरेन्द्र बाबू, अज्ञानकी बलि सदासे इसी तरह अदा होती है।' व्यंग (Irony) की ध्वनि लिये हुए कमलके इन शब्दोंमें राजेनकी मृत्यु-द्वारा उत्पन्न एक अजब-सा संतोषका भाव मिलता है। अपनी अर्पित घनिष्टताका तिरस्कार साधारण-से-साधारण रमणी नहीं सह सकती, फिर कमल-जसे तेजस्वी व्यक्तित्वके लिए तो यह अपमान नितांत असह्य है।

अपने स्वर्गवासी विदेशी पिताके प्रति कमलका मन सदैव आदर तथा श्रद्धासे भरा रहता है। अजितके सम्मुख उनकी चर्चा करती हुई वह कहती है, "मेरे पिताजी भी किसी बातमें कम नहीं थे। वे भी ऐसे ही धीर, ऐसे ही शांत मनुष्य थे....चरित्रमें, पाण्डित्यमें, सचाईमें—ऐसा मनुष्य मैंने बहुत कम देखा है अजित बाबू....इस जीवनमें कभी किसी भी कारण झूठी चिन्ता, झूठा अभिमान, झूठी बातका आश्रय मैं न लूँ, बाबूजी यही शिक्षा मुझे बार-बार दे गये हैं।" वस्तुतः अपने संपर्कमें आनेवाले प्रत्येक चरित्रका विश्लेषण वह अत्यंत सावधानीके साथ करती है। किसीकी भी झूठी निंदा

या झूठी प्रशंसा उसे प्रिय नहीं। बौद्धिकताके ऊँचे स्तरसे वह नीचे बहुत कम उतरती है, इसीलिए अत्यधिक राग तथा आवेशके क्षणोंमें भी वह स्थिर तथा संतुलित रह पाती है।

सच तो यह है कि कमलके चरित्रका खंड-खंड विश्लेषण करके, उसका अध्ययन करना उपन्यासकारकी सहृदयताके प्रति अन्याय करना है। स्वयं शरत् बाबूने स्थान-स्थान पर स्वयं अथवा अपने अन्य पात्रोंके माध्यमसे उसके चरित्रके जो वर्णन किये हैं, वे किसी भी आलोचनासे अधिक सच्चे और उपयुक्त हैं। कमलके चरित्रका परिचय जितना इन वर्णनोंसे मिल सकता है, उतना शायद समीक्षककी दृष्टि भी नहीं दे सकती। और क्योंकि 'शेष प्रश्न' की कमलका व्यक्तित्व उपन्यासकारके निकट अत्यंत ही प्रिय रहा है, अतएव तत्संबंधी वर्णनोंकी भी उपन्यासमें कमी नहीं है। आशु बाबू सोचते हैं कि 'कमलको उन्होंने जितना ही देखा है, उतना ही उनका आश्चर्य और श्रद्धा बढ़ गई है, लोकदृष्टिमें वह हेय है, निंदित है, शिष्ट-समाजसे परित्यक्त है, सभाके लिए उसके पास निमंत्रण नहीं आते, फिर भी, इस लड़कीकी नीरव अवज्ञाका ही उन्हें सबसे अधिक भय रहता है, इसीके सामने उनका संकोच नहीं मिटता।' और यह प्रतिक्रिया मात्र आशु बाबूकी न होकर बहुत-से रसज्ञ पाठकोंकी भी है। 'शेष प्रश्न' के अन्य प्रमुख पात्र भी कमलके चरित्रकी महत्ताका अनुभव करते हैं। हरेन्द्रके शब्दोंमें, 'उनके (कमलके) अंदर एक ऐसा निर्द्वन्द्व संयम, नीरव मिताचार और निःशंक तितिक्षा है कि देखनेसे आश्चर्य होता है।' वह आगे भी कहता है, 'उसके कथनमें न मालूम कसी एक सुनिश्चित दृढ़ताकी दीप्ति छूटकर बाहर निकलती है कि मालूम होता है मानो उसने जीवनका अर्थ खोज लिया है। शिक्षा-द्वारा नहीं, अनुभव उपलब्धिसे नहीं, मानो आँखोंसे अर्थको सीधे प्रत्यक्ष देख रही हो।' यही नहीं, इसके प्रत्युत्तरमें आशु बाबू तो यहाँतक कहते हैं कि 'वह यदि मिथ्या भी समझ चुकी हो, तो उस मिथ्याको भी गौरव प्राप्त है।' बहुत-से पाठकोंको कमलके चरित्रके इन मूल्यांकनोंमें अतिशयोक्तिकी गंध आ सकती है, परन्तु जिस

प्रसंग और वातावरणमें ये वाक्य कहे गये हैं, उनको ध्यानमें रखनेपर हम इनका मूल्य भली भाँति परख सकते हैं।

एक लंबे-से कथोपकथनमें कमलके चरित्रकी व्याख्या करते हुए आशु बाबू कहते हैं, 'जीवनका अर्थ ही उसके लिए स्वतंत्र है,—हम लोगोंके साथ उसका कोई भी मेल नहीं है। वह भाग्यको नहीं मानती, अतीतकी स्मृति उसके सम्मुखका रास्ता नहीं रोकती; उसका अनागत भी वही है—जो आज तक आया नहीं है। इसीलिए उसकी आशा भी जैसी दुर्निवार है, आनंद भी उतना ही अजेय है। किसी दूसरेने उसके जीवनको धोखा दिया है, इस कारण वह अपने जीवनको धोखा देनेके लिए किसी तरह भी तैयार नहीं है।' आशु बाबूके इन दो-तीन वाक्योंमें एक प्रकारसे कमलके व्यक्तित्वके प्रायः सभी मूल तत्त्वोंका उल्लेख हो गया है। इतने गहन चरित्रकी, इतने कम शब्दोंमें, इतनी सुन्दर टीका शरत् बाबू-जैसे मनीषी-द्वारा ही संभव हो सकती थी। इस संबंधमें नीलिमाका अध्ययन भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। उसके अनुसार 'वह (कमल) मानो ठीक नदीकी मछलीकी-सी है। पानीमें भीगने न भीगनेका प्रश्न ही नहीं उठता। खाने-पहिननेकी चिंता नहीं, शासन करने-वाला अभिभावक नहीं, आँखें लाल करनेवाला समाज नहीं—परम स्वतंत्र है।' इन वाक्योंमें उसके उन्मुक्त व्यक्तित्वका सुन्दर वर्णन हुआ है। किन्तु इन सब निर्णयोंके बावजूद कमलके चरित्रका मूल सूत्र (Key Note) किसीने पाया है तो हरेन्द्रने। वह कहता है, 'कमलकी आकृति प्राच्यकी है किन्तु प्रकृति प्रतीच्य की।' कमलके व्यक्तित्वका वह विरोधाभास ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि यह सच है कि हरेन्द्रके इस मतको शब्दशः ग्रहण करनेपर कमलके चरित्राध्ययनके प्रति अन्याय हो सकता है, फिर भी यह बात संदेहके परे है कि कमलके व्यक्तित्वकी मूल संवेदना इस एक वाक्यसे भली भाँति प्रकट हो जाती है।

स्वयं उपन्यासकारके एक उद्धरणको प्रस्तुत करके हम इस प्रसंगको समाप्त करेंगे। अजित और कमलको बुलाया गया है आशु बाबूको विदा देनेके लिए आयोजित समारोहमें। हरेन्द्रके घरमें सभी अतिथि एकत्र हो

चुके हैं, और तभी पहुँचती है कमल। उस समय उसके व्यक्तित्वका अत्यंत मार्मिक एवं स्पष्ट अंकन करते हुए उपन्यासकार कहता है, 'वह मानो वर्षा-कालकी वन्य-लता है। दूसरोंकी आवश्यकताके लिए नहीं, वरन् अपनी ही आवश्यकताके लिए आत्मरक्षाका सम्पूर्ण संचय लेकर मानो मिट्टी फोड़कर ऊपर सिर उठाती हुई आ पहुँची है। पारिपार्श्विक विरुद्धताका भय भी नहीं है, चिंता भी नहीं है—मानो काँटोंका घेरा बना कर उसकी रक्षा करने-का प्रश्न ही ज्यादती है।' ऊपर उद्धृत नीलिमाके वाक्योंकी ही भावनाको ये वाक्य भी व्यक्त करते हैं। परन्तु इनमें प्रयुक्त भाव-चित्र (Image) पिछले भाव-चित्रकी अपेक्षा अधिक सशक्त हैं।

जैसा कमलके उपर्युक्त गुरु-गंभीर चरित्र-विश्लेषणसे स्पष्ट हो गया होगा, शरत् बाबूके प्रायः समस्त नारी पात्रोंमें उसका व्यक्तित्व ही सर्वाधिक जटिल है। 'शेष प्रश्न' की रचना उपन्यासकारके जीवनके उत्तरार्द्धमें हुई है। अतः यह स्वाभाविक ही है कि उसके संवेदनशील मनको तब तक नारी-जीवन संबंधी ऐसी बहुत-सी अनुभूतियाँ प्राप्त हुई हों जिनके परिणाम-स्वरूप उसकी नारी-संबंधी पूर्व-भावनामें पर्याप्त अंतर आया हो, अथवा उसका एक निश्चितद शामें विकास हुआ हो। जो भी हो, उसके रचना-कालके पूर्वार्द्धमें निर्मित विराजबहू जैसे नारी-चरित्रोंमें जो सरलता थी, वह उसके उत्तरार्द्धके चरित्रोंमें नहीं रही। 'शेष प्रश्न' की कमलमें आकर तो जटिलता इतनी सघन हो गई है कि स्वयं उपन्यासकार भी कभी-कभी उससे परेशान हो जाता है। और यह विकासका स्वाभाविक क्रम भी है।

कमलके संपर्कमें आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको उसके आचरणोंको देखकर आश्चर्य सर्वाधिक होता है। अजितका कहना है 'आपको देखकर मुझे शुरूसे ही ऐसा आश्चर्य हुआ कि वर्णन नहीं किया जा सकता।' अन्यत्र भी कम-से-कम तीन स्थलोंपर वह कहता है 'कमल, तुमको समझ लेना कठिन है।' कमलके 'असाधारण व्यक्तित्वका' अनुभव उसके अन्य मित्रोंको भी होता है। और तो और स्वयं आशु बाबू (शरत् बाबू) को भी कई बार स्वीकार करना पड़ता है, "तुमको तो मैं समझ ही न सका कमल।" इसके अतिरिक्त अपने

विकसित होते हुए व्यक्तित्वको भी कमल नितांत स्वाभाविक तथा प्राकृतिक समझती है। इसीलिए शिवनाथसे संबंध-विच्छेद उसके निकट कोई बहुत महत्त्वपूर्ण एवं असाधारण घटना नहीं है। अपने संतुलित मन-द्वारा निर्दिष्ट उसका जीवन-क्रम कभी भी उसके लिए असंतोषका विषय नहीं बनता। तभी तो 'इस लड़कीको बाहरसे देखनेसे जैसा आश्चर्य होता है, भीतरसे देखनेपर भी वैसा ही अवाक् हो जाना पड़ता है।' इस 'आश्चर्यजनक लड़की' के सभी आचरणोंसे क्षुब्ध होनेपर भी, उससे अप्रभावित कोई नहीं है। अपनी जटिलताके संबंधमें कमल स्वयं भी सजग है, और वह यह मानती है कि 'स्त्रियाँ पहेली पसन्द करती हैं—उनका स्वभाव है।'

कमलके व्यक्तित्वकी प्रभविष्णुता बहुत आसानीसे एक स्वतंत्र निबंध-का विषय हो सकता है। फिर भी इस संबंधमें यहाँ संक्षेपमें कुछ कहना अप्रा-संगिक न होगा। जैसा हम पहले भी कह चुके हैं, कमलके आचरणोंसे असह-मति प्रकट की जा सकती है, परन्तु उनका तिरस्कार नहीं किया जा सकता। पहली बार उसके घर जाकर उसके कठोर व्यावहारिक संयमको देखकर अजितका मन उसके लिए श्रद्धासे भर उठता है। उच्छ्वसित आवेगसे भर कर वह कहता है, अपनेको बड़ा समझ कर जो लोग अपमानसे आपको दूर रखना चाहते हैं, जो लोग अकारण ही निंदा करते फिरते हैं, वे आपका पैर छूनेके भी योग्य नहीं हैं। संसारमें देवीका आसन यदि किसीके लिए हो तो वह आपके ही लिए है।' कमलका सबसे अधिक और तीखा विरोध करनेवाला व्यक्ति अक्षय है। अपनी कटूक्तियों एवं मर्मघातक व्यंगोंसे वह उसका हृदय छेद देना चाहता है। परन्तु अंततोगत्वा उसके मनमें भी परि-वर्त्तन होता है। उपन्यासके अंतिम अध्यायमें जब सारे पात्र-पात्री अंतिम बार एक दूसरेसे विदा लेते हैं तो कमलके जानेकी सबसे अधिक व्यथा कदाचित् अक्षयको ही होती है। वह कमलके पास पहुँच कर अपने सारे पिछले अपराधोंको स्वीकार करता है और उनके लिए क्षमाप्रार्थी होता है। कमलकी प्रभविष्णुताकी मापके लिए इससे बढ़ कर दूसरा उदाहरण नहीं दिया जा सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'शेष प्रश्न' में अंकित कमलका चरित्र बहुत जटिल एवं असाधारण है। उसका अध्ययन करनेपर हमारे मनमें बहुत-सी समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। कम-से-कम तीन समस्याएँ हमारे सम्मुख बहुत प्रमुख रूपसे आती हैं—

(१) प्राचीन परम्पराओंके प्रति अत्यधिक विद्रोहशील होनेपर भी कमलका चरित्र प्रगतिशील कहा जा सकता है अथवा नहीं?

(२) प्रचलित मानदंडोंके आधारपर कमलके चरित्रको नैतिक माना जा सकता है अथवा नहीं?

(३) जीवनमें सुख और समृद्धिको प्रधानता देनेवाले दृष्टिकोणको अपनानेपर भी क्या कमलको हम एक सुखवादी (Hedonist) मानते हैं?

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त प्रश्नोंपर विचार-विमर्श करनेका अर्थ होता है प्रायः उतने ही पृष्ठ और लिखना जितने कि कमलके चरित्रकी व्याख्या करते हुए लिखे जा चुके हैं। अतएव इस स्थलपर हम बहुत संक्षेपमें इन तीनों समस्याओंपर विचार करनेका प्रयत्न करेंगे।

जहाँ तक पहले प्रश्नका संबंध है, हम निःसंकोच रूपसे कह सकते हैं कि अपने विचारों और आचरणोंके समन्वयमें कमलका चरित्र हमारे युगकी आवश्यकताओंको ध्यानमें रखते हुए, पर्याप्तरूपसे प्रगतिशील कहा जा सकता है। अतीतकी अनावश्यक परम्पराओंका विरोध, जीवनके प्रति एक समृद्ध परन्तु स्वच्छ दृष्टिकोण, सामाजिक अंधविश्वासोंमें गहरी अनास्था, बाह्य आडंबरोंके प्रति तीखा विद्रोह, नारीपर अत्याचार करनेवाली समस्त पुरुष जातिके प्रति आक्रोश, मृत्यु-प्रेमका निरादर एवं जीनेकी अदम्य तथा प्रबल आकांक्षा, जातिगत एवं सांप्रदायिक भेद-भावनाका तिरस्कार, मानवता-प्रेम, मनुष्यकी महत्तामें विश्वास, जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें अपना एक सुचिंतित मत, व्यावहारिक संयम तथा धैर्य, तथा आत्मसम्मानकी दृढ़ भावना—कमलके चरित्रकी ये सारी विशेषताएँ उसके ईमानदार और प्रगतिशील व्यक्तित्वकी परिचायक हैं। बहुत संभव है कि अनेक समाज-शास्त्रियोंको कमलके चरित्रमें कुछ दुर्बलताएँ भी दिखाई दें, और यह भी

संभव है कि बहुत-से विचारक उसके दृष्टिकोणसे असहमत भी हों, परन्तु यह माननेसे कोई इनकार नहीं कर सकता कि कमलका चरित्र प्रतिक्रियावादी नहीं है, स्थिर भी नहीं है, वरन् निश्चित रूपसे गत्यात्मक (Dynamic) है। इसके अतिरिक्त प्रायः सभी समाज-विज्ञानी यह भी मानेंगे कि उसके चरित्रकी यह गति अंततोगत्वा व्यक्ति तथा समाजके लिए कल्याणप्रद एवं शुभ ही सिद्ध होगी। उपन्यासके एकदम अंतमें कमल आशु बाबूसे कहती है, "जिस दुःखसे आप डर रहे हैं चाचाजी, उसीमें-से पुनः उसकी अपेक्षा भी बड़ा आदर्श उत्पन्न होगा! और उसका कर्म भी जिस दिन समाप्त हो जायेगा, उस दिन उसके मृत शरीरके सारमें-से उसकी अपेक्षा भी महान् आदर्शकी सृष्टि होगी। इसी प्रकार संसारमें आजका शुभ कलके शुभतरके चरणोंमें आत्मविसर्जन करके अपना ऋण चुकाता रहता है। यही तो मनुष्यकी मुक्तिका मार्ग है।" हम कह सकते हैं कि संहारके बीचसे कमलका यह अदम्य उत्साह तथा आशाका स्वर उसकी प्रगतिशीलताका सबसे बड़ा प्रमाण है।

कमलके व्यक्तित्वकी नैतिक मान्यताओंको लेकर शरत्-साहित्यके पाठकों एवं समीक्षकोंमें काफ़ी मत-भेद रहा है। अधिकांश व्यक्तियोंका विचार है कि प्रचलित मानदंडोंके आधारपर कमलके चरित्रको नैतिक नहीं माना जा सकता। वे सोचते हैं, 'कमलके पिता युरोपीय थे, माता कुलटा थी—उसकी शिराओंके रक्तमें व्यभिचार प्रवाहित हो रहा है।' निश्चय ही एक ऐसी वंश-परम्पराके व्यक्तिके लिए हमारे समाजमें साधारणतः कोई आदरपूर्ण स्थान नहीं। और इसके अतिरिक्त विवाह तथा प्रेमके संबंधमें कमलके सिद्धांत उसे भारतीय हिन्दू समाजमें एक अत्यंत निम्न कोटिकी स्त्री ठहराते हैं, परंतु यदि हम उसकी उक्तियों एवं आचरणोंकी तुलना करके, उसके जीवन-दर्शनका कुछ अधिक गहराईके साथ परीक्षण करें तो हम देखेंगे कि उपर्युक्त मत बहुत कुछ असत्य है। वस्तुतः कमल मानव-जीवनमें संयमका तिरस्कार नहीं करती, वरन् संयमके नामपर मिथ्या एवं अस्वाभाविक बंधनोंको वह अस्वीकार करती है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि अनु-

पम सौंदर्य एवं प्रतिभाकी स्वामिनी होनेपर भी, हद दर्जेकी निर्धनतामें वह वेश्या-वृत्ति नहीं अपना लेती, वरन् किसी प्रकार सिलाई आदि करके अपना जीवन निर्वाह करती है। सुसंस्कृत व्यक्तियोंके प्रेमकी व्याख्या यदि कमल इस प्रकार करती है, 'शिवनाथ गुणवान् है, शिल्पकार हैं—शिवनाथ कवि है। चिरस्थायी प्रेम इन लोगोंके मार्गमें बाधक है....स्त्रियाँ तो केवल उपलब्ध मात्र हैं, नहीं तो वे लोग प्यार करते हैं केवल अपने आपको। अपने मनको दो भागोंमें बाँटकर उनकी दो दिनकी लीला चलती है' तो इसमें उसका दृष्टिकोण अनैतिक ज़रा भी नहीं है, मनोवैज्ञानिक अवश्य है। इसी प्रकार मानवीय प्रणयकी अस्थिरताको वह मनोविज्ञानके उस सिद्धांतके आधारपर सिद्ध करना चाहती है, जिसके अनुसार किसी भी वस्तु पर लगातार आठ सेकंडसे अधिक ध्यान नहीं लगाया जा सकता। पुरुष और नारीके पारस्परिक संबंधकी चर्चा करती हुई, अत्यंत व्यंगात्मक एवं तीखी शैलीमें वह कहती है, "पेड़के पत्ते सूखकर झर जाते हैं, उनकी क्षति नये पत्ते भर देते हैं, यह तो हुआ झूठ। और बाहरकी सूखी लता मर जानेपर भी पेड़के सर्वाङ्गसे चिपक कर, जकड़ कर उससे कसके लिपटी रहती है, वही हो गया सच ?" इस प्रकारके मानव-सत्योंको विश्वासके साथ अभिव्यक्त करने और तदनुसार आचरण करनेको यदि अनैतिक माना जाये तो भले ही कमलका चरित्र अनैतिक ठहराया जा सकता है, अन्यथा उसका व्यक्तित्व उच्च स्तरकी मान्यताओंसे ही अनुप्राणित जान पड़ता है।

तीसरी और अंतिम समस्या है कमलके आनंदवादी सिद्धांतकी। प्रायः लोग कमलको उन मतोंका अनुयायी सिद्ध करना चाहते हैं, जो पश्चिममें कभी हेडनिज्म तथा एपीक्यूरनिज्मके नामसे प्रचलित थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि 'आनंद के क्षण' का महत्त्व स्वीकार करनेवाली कमलकी विचारधारा बहुत कुछ उपर्युक्त दोनों संप्रदायोंके मूल सिद्धांतोंसे मिलती है। वह जीवनको बहुत समृद्धरूपमें देखना चाहती है, क्षणिक आनंदका भी आदर करना चाहती है। योग आदि, संयमके बाह्य आचरणोंका वह तिरस्कार करती है, "योग किसे कहते हैं मैं नहीं जानती, किन्तु वह

यदि निर्जन स्थानमें बैठकर केवल आत्मविश्लेषण और आत्मचिंता ही हो तो यही बात मैं ज़ोरके साथ कहूँगी कि इन दो सिंह-द्वारोंसे संसारमें जितने प्रेम, जितने मोहने भीतर प्रवेश किया है, उतना और कहींसे भी नहीं। वे दोनों अज्ञानके ही साथी हैं।" परंतु इन सबके बावजूद कमलके चरित्रको हम नितांत सुखवादी या क्षणिक आनंदवादी नहीं ठहरा सकते। यद्यपि यह सच है कि अपने विचारोंकी अभिव्यक्तिमें कमलने स्थान-स्थानपर क्षणके आनंदकी महत्ता स्वीकार की है, यही नही कमलने अपने इस सिद्धांतका यथासंभव प्रसार भी किया है, परन्तु ऐसा करनेमें कमलका दृष्टिकोण सामान्य मानव-जीवनको अधिकाधिक समृद्ध बनानेका ही है। अत्यंत अभावोंमें ही व्यतीत होनेवाले स्वयं अपने जीवनको उसने कभी वैभव-विलासपूर्ण बनानेकी चेष्टा नहीं की, यद्यपि अपने असीम रूप और सौंदर्यके बल पर वह ऐसा बहुत आसानीके साथ कर सकती थी। दिनमें केवल एकबार अत्यंत साधारण भोजन, आधुनिक सुविधाओंसे एकदम विहीन गृह-व्यवस्था और इसी प्रकारकी अन्य व्यावहारिक संयम तथा कृच्छ्र साधना कमलके तमाम सुखवादी (Hedonist) विश्वासोंके बावजूद स्वयं उसे सुखवादी नही ठहराते।

कमलके चरित्रको उसकी ऊँची-नीची सभी भाव-भूमियोंमें अंकित करनेके पश्चात् उपन्यासके अंतिम भागमें शरत् बाबू आशु बाबूके रूपमें उसके संबंधमें अपना निर्णय देते हैं। इस 'अभारतीय' रमणीके प्रति जितना अधिक उनका स्नेह रहा है, प्रायः उससे भी अधिक उनका मत-विरोध रहा है। हरेन्द्रके घर होने वाली विदा-गोष्ठीमें आशु बाबू कहते हैं, "तर्कमें जो कुछ भी क्यों न कहूँ कमल, तुम्हारी बहुत-सी बातोंको ही मैं मानता हूँ। जिसे मैं कर नहीं सकता उसकी हृदयसे अवज्ञा भी नहीं करता।" इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि कमलको लेकर स्वयं शरत् बाबूके हृदयमें मान्यताओंका एक बड़ा संघर्ष रहा है। उसका चरित्र उन अमर चरित्रोंकी कोटिमें रखा जा सकता है, जो एकबार सृजन किये जानेपर स्वयं कथाकारके नियंत्रणके बाहर चले गये हैं। कमलका व्यक्तित्व एक प्रकारसे शरत् बाबूके लिए भी रहस्यमय बन कर रह गया है, उपन्यासके अंततक

वे स्वयं भी उसे पूरा-पूरा नहीं समझ सके हैं। कमलके सिद्धांतोंसे विरोध रखनेपर भी उनकी अवहेलना नहीं की जा सकती, यह वे अवश्य समझ गये थे। स्वयं उपन्यासकार और उसके एक पात्रमें इतने उच्च स्तरके बौद्धिक वाद-विवाद हमें कदाचित् शरत् के 'शेष प्रश्न' में ही मिलते हैं।

'शेष प्रश्न' की कमल और भगवती बाबूके प्रसिद्ध उपन्यास 'चित्रलेखा' की नायिका चित्रलेखामें बहुत कुछ चारित्रिक समानताएँ हैं। दोनोंका बौद्धिक स्तर बहुत उच्च कोटिका है, जीवनकी प्रत्येक समस्याके प्रति उन दोनोंका अपना सुचिंतित मत है। ज्ञानके क्षेत्रमें इतना अधिक बढ़े होनेके साथ ही साथ दोनोंकी वाक्पटुता भी आश्चर्यजनक है। दोनोंके तर्क अचूक तथा उनकी शैली अत्यंत लाघवमय एवं प्रभावोत्पादक है। जीवनके प्रति दोनोंका ही अत्यंत समृद्ध दृष्टिकोण है। स्वयं सौंदर्य-प्रिय होनेके साथ-साथ दोनोंका रूप भी अपरिसीम है। जिस प्रकार कमल अपने मृत पति, शिवनाथ तथा अजितसे क्रमानुसार प्रेम करती है, उसी प्रकार चित्रलेखा भी अपन मृत पति, सामंत बीजगुप्त एवं योगी कुमारगिरिसे प्रेम करती है। तर्कके क्षेत्रमें दुराग्रह करना न कमल जानती है, और न चित्रलेखा। दोनों ही अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवनमें शांत, नम्र तथा व्यवहारकुशल हैं। इसके अतिरिक्त वाद-विवादके बीच दोनोंका व्यावहारिक संयम सचमुच ही सराहनीय है। तीखी-से-तीखी बातें सुनकर भी वे क्रुद्ध नहीं होतीं, अत्यंत शांतिपूर्वक उनका उत्तर देती हैं। सामान्य जीवनमें उनकी कष्ट-सहिष्णुता तथा धैर्य अतुलनीय है। विषम परिस्थितियों में भी संतुलित एवं स्थिर बना रहना उनका स्वभाव है। सच तो यह है कि कमल और चित्रलेखाकी विचार-धारामें कहीं-कहीं तो इतना अधिक साम्य है कि यदि एकके कथोप-कथन दूसरेके मुखमें रख दिये जाएँ तो कोई विशेष अंतर न पड़ेगा। दोनों ही चरित्र बहुत-कुछ मिलती-जुलती मिट्टीसे बनाये गये जान पड़ते हैं।

'शेष प्रश्न' की पार्श्व-नायिका है आशु बाबूकी एकमात्र पुत्री मनोरमा। 'शिक्षिता, सुरूपा और पूर्णयौवना' मनोरमाके शील और सौजन्यका परिचय हमें उपन्यासके प्रारंभिक परिच्छेदमें ही मिल जाता है। मित्र-मण्डलीमें

अपने छोटे चाचाके प्रति कुछ असंतोषका भाव व्यक्त करते हुए आशु बाबूको वह ऐसा करनेसे रोक देती है। आचार-व्यवहारमें मर्यादाका वह पूरा ध्यान रखती है। विदेशी शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करनेपर भी आमिष आदिका वह स्पर्श तक नहीं करती। संगीतसे उसे विशेष प्रेम है, और इस कलामें उसने पर्याप्त दक्षता भी प्राप्त कर ली है। इतने गुणोंसे संयुक्त होने और एक धनिक की पुत्री होनेके बावजूद उसके चरित्रमें अभिमानने नहीं, वरन् विनयने स्थान पाया है। सुरुचिकी मात्रा उसमें इतनी अधिक है कि शिवनाथके अनैतिक कृत्योंको वह सुनना भी पसंद नहीं करती। उसके पत्नीत्याग एवं मित्रको धोखा देनेकी घटना सुनकर उसका मन घृणासे अभिभूत हो उठता है। यही नहीं, वह आशु बाबूको समझाती भी है, "गुणका आदर करना मैं कम नहीं जानती बाबूजी, किन्तु इसीलिए शिवनाथ बाबूको एक दुष्ट दुश्चरित्र मतवाला समझकर भी फिर प्रश्रय क्यों दे रहे हो?" परन्तु इस सुरुचिके साथ सौजन्य भी है। यह जान कर कि उसके इन उपर्युक्त शब्दोंको उसके अनजानेमें ही, शिवनाथने सुन लिया है उसकी लज्जाकी सीमा नहीं रहती। वह अपने इस अनचाहे दुर्व्यवहारके लिए बहुत दुःखित होती है, और बाहर भागते हुए शिवनाथ बाबू और उनकी स्त्रीको स्वयं घरमें बुलवा लेती है। इस प्रसंगमें उसकी व्यवहारपटुता भी बहुत सराहनीय है। कमलकी बातें सुन कर पहले तो उसका चेहरा क्रोधसे लाल हो उठता है; किन्तु क्षण भरके लिए। दूसरे ही क्षण 'निर्मल हँसीकी छटासे उसकी दोनों आँखें झकाझक करने लगती हैं।' वस्तुतः मनोरमाको ये चारित्रिक गुण अपने वृद्ध एवं अनुभवी पितासे मिले जान पड़ते हैं। यह सच है कि 'मनोरमा आशु बाबूकी केवल लड़की ही नहीं, उनकी संगी, साथी मंत्री, मित्र—एक साथ सब कुछ ही थी यही लड़की।'

मनोरमाके चरित्रमें आधुनिक सामाजिकताके प्रायः सभी गुणोंके विद्यमान रहनेपर भी, उसके व्यक्तित्वमें गहरी अंतर्दृष्टिकी कमी है। वह व्यक्तियों तथा घटनाओंको बहुत ऊपरी, बहुत सतही निगाहसे देखती है। पहली बार कमलसे मिलनेपर, सुनी-सुनाई बातोंके आधारपर वह उसे शिष्ट समाजसे

बाहरकी स्त्री मानने लगता है। कमलका निःसंकोच व्यवहार, उसकी प्रतिभा तथा वाक्पटुता मनोरमाको ज़रा भी नहीं प्रभावित करती। इस दृष्टिकोणसे मनोरमामें बुद्धि-वार्द्धक्य एवं अनुभवकी बहुत कमी दिखाई देती है। और कमलके चरित्रकी तुलनामें तो यह कमी और भी अधिक उभरकर हमारे सामने आती है। मनोरमाकी व्यवहार-कुशलता बाहर भीगती हुई कमलको अंदर बुलाकर उसे एक दासीके समान ही व्यवहार दिला पाती है, उसमें दृष्टिकी इतनी गहराई नहीं कि वह कमलके यथार्थ मूल्यको समझ सके। इसीलिए वह आशु बाबूके बार-बार समझानेके बावजूद कमलका सदैव तिरस्कार करती रहती है। वह आशु बाबूके प्रति कमलकी अत्यंत स्पष्ट एवं मुखर सम्मान-भावनाको भी नहीं समझ पाती। एकदम उत्तेजित होकर वह कहती है, "आज मैं जान गयी हूँ कि उस दिन धोती और साबुन माँगनेके बहाने वह लड़की (कमल) मेरा केवल उपहास ही कर गयी थी,—उस दिन-का उसका अभिनय मैं समझ न सकी थी,—किन्तु उसका सब छल-कपट, सभी व्यंग्य ही व्यर्थ है बाबूजी, यदि तुमको आज वह सबसे बड़ा न पहचान सकी हो।" यहाँ इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है कि मनोरमाके मनमें कमलके लिए बहुत-से पूर्वग्रह भी हैं। बहुत कुछ इन पूर्वग्रहोंके कारण भी वह कमलके वास्तविक चरित्रको पहचान नहीं पाती।

मनोरमाके जीवनकी सबसे बड़ी संपत्ति है उसके प्रति आशु बाबूका स्नेह। 'लड़कीको आशु बाबू कितना प्यार करते थे उसकी कोई सीमा नहीं।' वैसे तो सभी पिता अपनी संतानको प्यार करते हैं, परन्तु आशु बाबू जैसे सुलझे हुए व्यक्तिका प्रायः साराका सारा मोह इस दुर्बल लड़कीपर केन्द्रित हो गया है, यही तथ्य महत्त्वपूर्ण है। मनोरमा आशु बाबूकी केवल लड़की ही नहीं है, 'उनकी संगी, साथी, मंत्री, मित्र एक साथ सब कुछ ही है।' और मनोरमा स्वयं भी यह जानती है कि वह कितने बड़े बापकी लड़की है। उसे यह पूरा विश्वास है कि बिना उसके बाबूजीके देखे हुए ताजमहलका आधा सौंदर्य ढँका ही रह जायगा। इस प्रकार आशु बाबूको वह पिताके रूपमें तो सम्मान देती ही है, परंतु शायद उससे भी अधिक सम्मान देती है उन्हें एक

अत्यंत संतुलित विचारकके रूपमें। और हम कह सकते हैं कि यह मनोरमाके उस अंतर्दृष्टि—मनुष्यको पहचान पानेकी उस अंतर्प्रवृत्तिका, कदाचित् सबसे बड़ा उदाहरण है, जो उसके चरित्रके अनिवार्य गुणोंमें-से एक नहीं है।

अजितके प्रति मनोरमाका व्यवहार बहुत कुछ उसके 'बचपन' को प्रदर्शित करता है। उसके चरित्रके इस पहलूमें हम उस संतुलन, व्यावहारिक संयम तथा निर्णयात्मक बुद्धिका अभाव देखते हैं, जो उसकी अवस्थाके व्यक्ति में प्रायः बहुत-कुछ विकसित रहती है। प्रारंभमें अजित और मनोरमाका प्रेम, आशु बाबूके शब्दोंमें 'संसारकी एक अपूर्व वस्तु है। दोनों ही चार वर्षोंके दीर्घ कालमें अत्यंत मनोयोगसे एक दूसरेकी प्रतीक्षा करते हैं। अजितके विदेश जानेके समयसे मनोरमाने 'जो ब्रह्मचारिणी जीवन अपनाया फिर एक दिनके लिए भी उससे भ्रष्ट नहीं हुई।' इसी बीच दूसरे वरके खोजे जाने की बात सुनकर वह आशुबाबूसे कहती है, "बाबूजी, यह चेष्टा तुम मत करो मुझको तुमने प्रकट रूपसे दान नहीं किया, किन्तु मन ही मन तो किया ही था।" मनोरमाके इन विचारों और आचरणोंसे उसकी अजितके प्रति निष्ठा का भली भाँति परिचय मिलता है, परन्तु उसके मनकी दुर्बलता और परिस्थितियोंने इस निष्ठाको ठहरने नहीं दिया। धीरे-धीरे उसकी अजितके प्रति विमुखता बढ़ती जाती है, और इस प्रकार चार वर्षोंकी लंबी अवधि तक प्रतीक्षा करनेके उपरान्त जब वह विदेशसे वापस आ जाता है तो वह उससे विवाह नहीं कर पाती। अजितके लिए मनोरमाकी उदासीनताको चित्रित करनेमें शरत् बाबूने मनोविज्ञानके अत्यंत सूक्ष्म अध्ययनका परिचय दिया है।

मनोरमाके मनमें अजितके प्रति उदासीनता और शिवनाथके प्रति आकर्षणके भाव प्रायः समानान्तर रूपसे विकसित होते हैं। वह कमल और शिवनाथ, दोनोंसे घृणा करती है। अजितकी प्रेयसी होनेके समय 'शिवनाथके संबंधमें मनोरमाकी विमुखता ही थी मानो सबसे अधिक। किन्तु दो ही दिनके साहचर्यके फलस्वरूप उसका शिवनाथके प्रति अज्ञात आकर्षण मानो पूरे वेगसे जागृत हो उठा। रुग्ण शिवनाथकी परिचर्यामें

लगी हुई मनोरमा उसके प्रति अपनी अतृप्त कामनाओंको समर्पित कर देती है। 'शय्याके पास चौकीपर बैठी हुई मनोरमा रात्रि-जागरणकी क्लान्तिसे रोगीकी छातीपर थका हुआ माथा रखकर शायद अभी-अभी सो गई है। उसकी गर्दनपर परस्पर सन्नद्ध दोनों हाथ रखकर शिवनाथ भी सो गया है।' इस संबंधमें यह स्मरणीय है कि एकदम प्रारंभिक संबंधोंमें, जब कि मनोरमाने शिवनाथका पिछला लज्जाजनक जीवन नहीं जाना था, शिवनाथ मनोरमाका संगीत-गुरु रहा है। उस समय मनोरमा उसके रूप और गुणोंसे अत्यधिक प्रभावित थी। बीचमें वह शिवनाथसे घृणा करने लगी, परन्तु अंततोगत्वा उसका प्रथम आकर्षण दबा न रह सका। और वह आशु बाबू जसे स्नेहशील पिताको अकेला छोड़कर, शिवनाथसे विवाह कर लेती है। आशुबाबू कहते हैं, "एक दिन शिवनाथको इस घरमें आने देनेमें भी उसे (मनोरमाको) आपत्ति थी, किन्तु आज जिस सम्मोहनसे उसका हिताहित ज्ञान, उसकी समस्त नैतिक बुद्धि आच्छन्न हो गई है, वह यथार्थ प्रेम नहीं है, वह जादू है, मोह है।" जो भी हो, इस 'जादू' या 'मोह' में फँस जानेका प्रधान कारण यह है कि मनोरमाका व्यक्तित्व बड़ा सुन्दर-सजल होनेपर भी अत्यंत ही दुर्बल है। उसकी मान्यताओंमें अपेक्षित दृढ़ताका अभाव है। यद्यपि यह सही है कि उसके व्यक्तित्वमें भावावेगकी प्रधानता नहीं है, फिर भी उसके मानसिक संस्थानमें वह विवेक पूर्णतः जागृत नहीं दिखाई देता, जो भले और बुरेके भेदको स्पष्ट करता है। अजित सारी रात कहीं अन्यत्र बिताकर सबेरे घर लौटता है। इससे आशुबाबूकी दुश्चिन्ताकी सीमा नहीं रहती, परंतु कमल उससे एकबार भी देरसे आनेका कारण नहीं पूछती। यह निरथक आत्म-अभिमान भी वस्तुतः उसे अजितसे दूर और शिवनाथके निकट ले जानेमें सहायक होता है। वह आशुबाबूसे कहती है, "मेरे संबंधमें यदि उन्होंने (अजितने) अनुचित धारणा कर ली है तो यह उनका दोष है। एक मनुष्यके दोष-संशोधनकी ज़िम्मेदारी क्या दूसरे मनुष्यको बलपूर्वक अपने ऊपर ले लेनी चाहिए बाबूजी ?" मनोरमाके इन शब्दोंमें हठ तथा दुराग्रहकी गंध अधिक आती है। वस्तुतः विचारगत

प्रौढ़ता मनोरमाके चरित्रकी विशेषता नहीं है। उसके निर्णयोंमें बचपना कुछ अधिक है तथा बुद्धि-वार्द्धक्यकी कमी है।

'शेष प्रश्न' की नीलिमाका चरित्र नारी-मनोविज्ञानके दृष्टिकोणसे अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। 'वह अविनाश मुखर्जीकी विधवा साली है। निराश्रय होनेके कारण उनके घरकी देख-भाल करती है। और क्योंकि अविनाशकी पत्नीका देहांत हो चुका है, अतः 'फिलहाल घरकी मालकिन वही है।' वह अत्यंत हँसमुख, स्पष्ट-वादिनी तथा निर्भीक है। घरके कामकाज, तथा बहनोई और उसके मित्रोंके साथ हँसी-मज़ाक़ में वह अपने वैधव्य-दुःखको डुबो देना चाहती है। संयम-नियम उसके चरित्रमें घुल-मिल गये हैं। नीलिमा-की ओर संकेत करता हुआ हरेन्द्र कहता है, "वैधव्यका कोई बाह्य प्रकाश इनमें नहीं है,—बाहरसे मालूम होगा मानो विलास-व्यसनमें मग्न रहती हैं, किन्तु मैं जानता हूँ इनकी दुःसाध्य आचार-निष्ठा, इनका कठोर आत्म-संयम!" इसमें कोई संदेह नहीं कि नीलिमाके व्यक्तित्वसे सबसे अधिक प्रभावित हरेन्द्र ही है, फिर भी उसके उपर्युक्त कथनमें अतिशयोक्तिका कोई अंश नहीं है। नीलिमाका वर्णन स्वयं उपन्यासकारने इस प्रकार किया है, 'अवस्था भी अत्यंत कम नहीं है, शायद तीसके लगभग पहुँच चुकी है। इस अवस्थाके लिए उपयुक्त गंभीरता हठात् उनमें ढूंढ़नेसे नहीं मिलती—ऐसा ही उनका हँसी-खुशीका मेला है, फिर भी ज़रा थोड़ा-सा ध्यान देनेसे ही यह बात स्पष्ट समझमें आ जाती है कि एक ऐसा अदृश्य आच्छादन उनको दिन-रात घेरे रहता है, जिसके भीतर प्रवेश करनेका कोई रास्ता ही नहीं है। घरके नौकर-नौकरानी भी नहीं प्रवेश कर सकते और न तो मालिक ही।' इस 'अदृश्य आच्छादन' के ही कारण नीलिमाका व्यक्तित्व इतना सुदृढ़ एवं महिमामय है। यद्यपि उसमें भी एक स्थानपर दरार पड़ ही जाती है, किन्तु उसके सम्यक् कारण भी हैं।

वस्तुतः नीलिमाके जीवनका सबसे बड़ा ध्येय है अपने स्वजनों एवं मित्रों-का सेवा-सत्कार। 'काम-काजी व्यक्ति हैं, दिन-रात काममें ही व्यस्त रहती हैं।' आशुबाबूकी शुश्रूषा करने जब वह उनके यहाँ जाती है, तो संपत्तिके

मोह के कारण नहीं, वरन् अपनी स्नेहशील प्रकृतिके कारण। उसकी 'अकलंक शुभ्रता' हमें उसके प्रत्येक संबंधमें दिखाई देती है। उसके व्यावहारिक जीवन-में शील एवं सुरुचिका स्थान सर्वोपरि है। वह सबके सामने परदेसे बाहर निकलना पसंद नहीं करती। व्यर्थके कटाक्ष करनेका उसका स्वभाव नहीं है। सुरुचिके लिए उसके मनमें इतना अधिक आग्रह है कि वह अजितको "एक दिन जिस दिन में नारी थी" शीर्षक कहानीका वह अंश पढ़नेसे रोक देती है जो 'किसी-किसी स्थानपर रुचिको चोट पहुँचाता है'। एकनिष्ठ प्रेम एवं पतिव्रत I र्म उसके निकट अत्यंत सम्मान्य एवं आचरणीय हैं। 'उसका कहना है कि पतिको त्याग करना ही तो बड़ा काम नहीं है, उन्हें फिरसे पाने-की साधना ही स्त्रीके लिए परम सार्थकता है।' प्रेम एवं विवाहके संबंधमें उसका दृष्टिकोण अत्यंत स्वाभाविक एवं स्वस्थ है। बेलाके पति-त्यागकी बातको लेकर वह कहती है, "सत्य न तो पतिको छोड़ देनेमें है न पतिकी दासी-वृत्ति करनेमें ही है, ये दोनों ही केवल दायें-बायेंके रास्ते हैं, गन्तव्य स्थान तो अपने आप ढूँढ़ लेना पड़ता है, तर्क करनेसे उसका पता नहीं चलता।"

नीलिमाका अत्यंत स्नेहपूर्ण व्यवहार उसके संपर्कमें आनेवाले सभी व्यक्तियोंको बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। हरेन्द्रको उसकी मम-ताका अधिकांश प्राप्त हुआ है,और वह जानता है कि यह उसके लिए कितना बड़ा सौभाग्य है। वाणीका वशीकरण भी नीलिमाको प्राप्त है। उसकी बातें 'स्वभावतः' ही मधुर होती हैं, 'कहनेके ढंगमें ऐसी एक विशेषता रहती है कि सहज ही में दृष्टिगोचर हो जाती है।' हरेन्द्रके ब्रह्मचर्याश्रमके बालकों-को देखकर उसकी आँखें भर आती हैं। स्नेह देनेके अतिरिक्त नीलिमा उसका प्रतिदान भी चाहती है। अपनी रूखी-सूखी और नीरस ज़िन्दगीको वह परि-चितों और मित्रोंके स्नेहसे ही सरस बनाना चाहती है। अजित और हरेन्द्रसे बात करते समय उसकी आँखें आँसूसे भर उठती हैं। वह कहती है, "ऐसी मीठी बात बहुत दिनोंसे सुनी नहीं है भाई, इसीसे सुननेके लिए कुछ लोभ होता है।"वस्तुतः ईर्ष्या और द्वेषसे परे हटकर उसने स्नेह और ममताको ही अपने जीवनका पाथेय बनाया है।

नीलिमाके व्यक्तित्वका एक प्रमुख गुण उसकी निर्भीकता भी है। लोगों-के कहने-सुननेके डरके मारे कोई भी व्यक्ति कमलको अपने घर नहीं बुलाना चाहता। परन्तु नीलिमा अविनाशके मना करनेके बावजूद उसे अपने यहाँ आमंत्रित करती है। इसके बाद घर आई हुई कमलको जब अविनाश कुछ व्यंग्य करके कहते हैं तो बहुत कड़ाईके साथ नीलिमा कहती है, "प्रश्नका उत्तर न दे सकनेमें तो लज्जा नहीं होनी चाहिए। किन्तु शिष्टताका लंघन करनेमें लज्जा अवश्य होनी चाहिए।" इस प्रकार अविनाशके घर रह कर और उन्हींकी जीविकासे भरण-पोषण करनेपर भी, नीलिमा उनका कोई अन्याय सहनेको तैयार नहीं है। उसकी चारित्रिक दृढ़ताके सम्मुख सभीको झुकना पड़ता है।

एक औसत गृहस्थिन होनेपर भी नीलिमाकी विचार-शक्ति काफ़ी विकसित है। हर एक घटना और व्यक्तिके संबंधमें उसका अपना स्वतंत्र मत है। बेलाको सुनाकर वह कहती है, "सभी बड़ी चीज़ें मनुष्योंके हाहाकार से ही पैदा होती हैं, अतः संसारके आमोद-प्रमोदमें ही जो लोग मग्न रहते हैं, यह उनकी आँखोंसे कैसे दिखाई पड़ सकती है।" इस वाक्यमें मानव-जीवनका बड़ा सत्य नीलिमाने व्यक्त किया है, जो स्वयं उसकी अनुभूतिपर आधारित है, ऐसा जान पड़ता है। इसी प्रकार एक स्थलपर वह कमलसे कहती है, "मैंने पुस्तकें नहीं पढ़ी हैं, अनुभव भी कम है, तर्क करके मैं तुमको समझा नहीं सकती, किन्तु मालूम होता है कि असली चीजका पता तुमको आज तक भी नहीं मिला है। श्रद्धा, भक्ति, स्नेह और विश्वास, इन्हें छीना-झपटी करके नहीं पाया जा सकता, अनेक दुःखसे बहुत देरमें ये दिखाई देते हैं। दिखाई पड़नेपर रूप-यौवनका प्रश्न न मालूम कहाँ मुँह छिपाये रहते हैं, कमल, पता लगाना कठिन हो जाता है।" नीलिमाके ये विचार पौस्तकीय सचमुच नहीं हैं। इनके पीछे बहुत लंबा अनुभव हो, शायद ऐसी भी बात नहीं है। वस्तुतः नीलिमाकी यह सुलझी हुई विचार-शक्ति उसकी गहरी अन्तर्दृष्टिके फलस्वरूप है।

अपने निश्छल एवं स्नेहमय स्वभावके कारण नीलिमाके संबंध उपन्यासके

सभी पात्र-पात्रियोंसे बहुत प्रीतिकर हैं। अविनाशकी वह साली है, उनके घरकी देखभाल करती है। अतः उनसे हँसी-मज़ाक़का रिश्ता तो उसका है ही। वैसे भी ये साली और बहनोई एक-दूसरेका यथोचित सम्मान करते हैं। किन्तु इस सबके बावजूद अन्यायकी बातपर नीलिमा अविनाशसे दबती नहीं है। उसका स्पष्ट कथन है, "मैं उनकी साली हूँ, सालीकी बहिन नहीं कि पति रूपी चरम-गुरुकी गदा घुमाकर मेरे ऊपर शासन करेंगे।" एक स्थलपर कमलके प्रति कुछ तीखी बात कहे जानेपर वह कहती है, "शिवनाथसे त्रुटि हुई है मुखर्जी महाशय, उनपर जुरमाना करके हम बदला लेंगे। किन्तु गुरुगिरीमें तो कोई भी पुरुष कम नहीं होता। इसीलिए प्रार्थना करती हूँ कि तुम अपनी बुद्धिसे दो-एक प्रिय वाक्य बाहर निकालो, हम सभी सुनकर धन्य हों।" यही नहीं, आत्मसम्मानके क्षत होनेपर वह कटिबद्ध होकर उसकी रक्षाके लिए भी तत्पर हो जाती है। हरेन्द्रके माध्यमसे वह अविनाशसे कहती है, "तब तो मेरे संबंधमें कृपा करके उन्हें स्मरण करा दो बबुआ जी कि किसीको छोटी मालकिन कहकर पुकारते रहनेसे ही वह यथार्थतः गृहिणी नहीं हो जाती। उसके ऊपर शासन करनेकी मात्राका भी उसे ज्ञान रहना चाहिए। मेरी तरफ़से मुखर्जी महाशयके अनुभवके भंडारमें आज इतना और जमा हो जाय। भविष्यमें यह काममें आ सकता है।"

नीलिमाके हृदयका सबसे कोमल भाग कदाचित् हरेन्द्र एवं कमलके हिस्सेमें आया है। शायद इसीलिए कि दोनों ही नीलिमाकी भांति अपने-अपने परिवारोंसे वियुक्त हैं। हरेन्द्रके सुख-दुःखके लिए तो वह बहुत ही चिन्तित रहती है। वह उन्हें विवाहित एवं गृहस्थ रूपमें देखना चाहती है, इसीलिए उनके ब्रह्मचर्याश्रमसे वह क्रुद्ध रहती है, परन्तु स्वयं हरेन्द्रसे वह चाहे जो कुछ कह ले, औरोंके व्यंग्य उसे सह्य नहीं हैं। इसके लिए वह अविनाश का भी तिरस्कार करती है। प्रारंभमें ही जब हरेन्द्र अविनाशके घर ठहरने आया था, तबसे उसे नीलिमाकी आत्मीयता प्राप्त हुई है, जिसमें कभी कोई कमी नहीं पड़ी। अपना घर लेकर जब हरेन्द्र उसमें जानेको प्रस्तुत

होता है तो नीलिमा कहती है, "किन्तु देश-सेवाके नशेकी खुमारी अब तक भी तुम्हारी आँखोंसे दूर नहीं हुई है बबुआजी, और भी कुछ दिनों तक अपनी भाभीकी हिफ़ाज़तमें रह लेते।" अपनी 'हिफ़ाज़त' में रखनेकी नीलिमाकी यह भावना ही मानो हरेन्द्रकी रक्षाका कवच बन गई है।

कमलके प्रति 'शेष प्रश्न'के प्रायः सभी चरित्रोंके मनमें कुछ-न-कुछ पूर्व-ग्रह रहा है। केवल आशु बाबू,और उनके साथ-साथ नीलिमा—ये ही दोनों व्यक्ति ऐसे रहे हैं जिन्होंने कमलको सहृदयतापूर्वक समझनेकी चेष्टा की है। सामूहिक रूपसे कमलकी बुराई सुनते-सुनते एक दिन नीलिमा अविनाशसे कहती है, "मुखर्जी महाशय, कमलसे मैं एक बार मिलना चाहती हूँ। मेरी बड़ी इच्छा है कि उसे निमंत्रण देकर खिलाऊँ।" और कमलसे मिलनेकी यह इच्छा वह अंततोगत्वा पूरी ही करती है—उसे हरेन्द्रके आश्रममें बुला कर। जितनी देरतक कमल उसके साथ रहती है, वह उसके ऊपर कोई आक्षेप नहीं होने देती, परन्तु यह नियतिका व्यंग ही है कि नीलिमा जिस व्यक्तिको इतना अधिक चाहती है, वही उसके सिद्धांतोंके एकदम विरुद्ध है। कमल एकनिष्ठ प्रेम और सतीत्वके आदर्शको एकदम नहीं मानती, जिसके ऊपर नीलिमाका वैधव्य-जीवन अवलंबित है, परन्तु इस सबके बावजूद नीलिमाके मनमें कमलके लिए एक अत्यंत कोमल कोना सुरक्षित है। वह कहती है, "उनमें-से किसीमें मैं शामिल नहीं हूँ। मेरे घरमें कभी तुम्हारा अनादर न होगा। "कमलको लेकर बहुत अधिक वाद-विवाद करना नीलिमाको पसंद नहीं है। वह कहती है, "वह बेचारी शिष्ट -समाजसे बाहर, बस्तीसे बाहर पड़ी हुई है,उसे लेकर आप लोग खींचातानी क्यों कर रहे हैं ?" यही नहीं, बेलाके ऊपर कटाक्ष करती हुई वह कमलकी प्रशंसामें आगे कहती है, 'कमल चाहे और जो कुछ भी करे, जिस पतिको उसने लांछन लगा कर घृणासे छोड़ दिया है, उसीके दिये अन्नका ग्रास मुँहमें डालकर, उसीके दिये कपड़ेसे लज्जा बचाकर जीवित रहना नहीं चाहती। अपनेको इतनी छोटी बनानेके पहले वह आत्महत्या करके मर जाती।" उपन्यासके अंतमें कमल जब आगरा छोड़कर अजितके साथ कहीं बाहर चलने लगती

है तो हरेन्द्रके घर होनेवाले विदा-भोजमें नीलिमा उसे दरवाजेकी आड़में बुलाकर अपनी आँखें पोंछती हुई कहती है, "कमल, मुझे कहीं भूल मत जाना।" और इसके आगे उससे कुछ कहते ही नहीं बनता। फिर जब कमल उससे कहती है, "तुम और जो भी इच्छा हो वह करो बहिन, किन्तु अविनाश बाबूके घरकी बेगारी करने को राजी मत होना" तो वह संक्षेप में उत्तर देती है, "ऐसा ही होगा कमल।" और इस प्रकार अंततोगत्वा वह कमलके प्रभावको स्वीकार कर लेती है।

बेलासे नीलिमा शायद बहुत प्रसन्न नहीं रहती। शायद इसीलिए कि वह उसके मूल सिद्धांतोंके प्रतिकूल जीवन-यापन करती है। अतः उसके बारे-में जो कुछ भी वह कहती है, उसमें थोड़ा-बहुत तीखापन अवश्य रहता है। सदैव सहृदयतापूर्वक तथा मधुर वार्तालाप करने वाली नीलिमा बेलाको अंत तक क्षमा नहीं कर सकी। वह आशु बाबूसे कहती है, "दुश्चरित्र पतिको त्याग देनेमें जितना भी सत्य क्यों न हो, बेलाके पति-त्यागमें तनिक भी सत्य नहीं है, यह बात मैं ज़ोर देकर कह सकती हूँ।"

हरेन्द्रके समान ही नीलिमा अजितको भी बहुत अधिक चाहती है। उसका असमयका वैराग्य उसे ज़रा भी पसन्द नहीं है। इसीलिए अजितको विवाहित रूपमें देखनेकी उसकी हार्दिक इच्छा है। उसकी ओर इशारा करती हुई वह हरेन्द्रसे कहती है, "तुम्हारे मुँहपर फूल-चंदन पड़े बबुआजी, ऐसा ही हो। उनके मनमें थोड़ा पाप हो, वे पकड़े जाँय किसी दिन—मैं काली-घाट जाकर ठाटबाटसे पूजा दे आऊँगी।" इन शब्दोंमें अजितके प्रति उसका स्नेह, ममत्व एवं अधिकार स्पष्ट झलकता है। बिना रक्त-संबंधके ऐसी अपनावकी भावना रखना शरत्‌के नारी पात्रोंकी एक प्रमुख विशेषता है। नीलिमाका चरित्र उसका एक सशक्त उदाहरण है।

नीलिमाके चरित्रका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग उसके आशु बाबूके प्रति प्रेमसे संबद्ध है। यह शरत् बाबूकी ही सामर्थ्य थी कि उन्होंने एक रूपवान, सुशील, बुद्धिमती एवं चरित्रवान विधवाको वात-रोग ग्रस्त एक ऐसे वृद्ध व्यक्तिसे प्रेम करते दिखाया है, जिसके मनमें रूप और यौवनका आकर्षण

समाप्त हो चुका है। इस दृष्टिकोणसे नीलिमाके चरित्रका अध्ययन मनोविज्ञानके क्षेत्रमें एक अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। प्रेमकी उत्पत्तिमें रूपासक्ति और साहचर्यका योग बताया जाता है, परन्तु इस विशिष्ट उदाहरणमें रूपासक्तिका स्थान एकदम नहीं है। नीलिमाके मनका स्नेह, ममता तथा दया-जैसी कोमल वृत्तियाँ ही आशु बाबू जैसे सरल और सुलझे हुए व्यक्तिके संपर्कमें आकर प्रेमके रूपमें परिणत हो जाती हैं। इस संबंधमें हम कुछ और अधिक न कह कर ,केवल आशु बाबूके एक लंबे उद्धरणको प्रस्तुत करते हुए इस प्रसंगको समाप्त करेंगे। कमलके सम्मुख इस अत्यंत अप्रीतिकर विषयको उपस्थित करते हुए आशु बाबू कहते हैं, "स्वप्नमें भी नहीं सोचा था। और कोई होता तो संदेह होता कि यह केवल छल या धोखा है। एकदम स्वार्थ है। किन्तु उसके संबंधमें ऐसी बात सोचना भी अपराध है। क्या ही आश्चर्यजनक स्त्रियोंका यह मन है। यह रोगातुर जीर्ण शरीर, यह असमर्थ असवन्न चित्त ; जीवनकी इस अपराह्ण वेलामें जबकि जीवनका कानी कौड़ी भी दाम नहीं रहता, ऐसे मनुष्यके प्रति भी किसी सुन्दरी युवतीका मन आकर्षित हो सकता है, इससे बढ़कर आश्चर्यकी बात दुनियामें और क्या हो सकती है ! फिर भी, यह सच है, इसमें ज़रा भी झूठ नहीं है.....किन्तु मैं निश्चित रूपसे जानता हूँ कि यह बुद्धिमती नारी मुझसे कुछ भी प्रत्याशा नहीं करती। वह केवल चाहती है मेरी सेवा करना, केवल यही चाहती है कि सेवाके अभावमें जीवनके इने-गिने शेष दिन दुःखमें ही न बीत जाँय। केवल उद्देश्य है दया और अकृत्रिम करुणा !"

'शेष प्रश्न' की बेलाको हम पार्श्व-चरित्रके रूपमें मान सकते हैं। उसका वर्णन करते हुए उपन्यासकार कहता है, "बेला कलह-प्रिय रमणी नहीं है, और विशेषतः वह सुशिक्षित है। उसने बहुत देखा-सुना है और उम्र भी शायद पैंतीसके ऊपर पहुँच चुकी है,किन्तु संयम-नियमके कारण यौवनका लावण्य अभी तक ढला नहीं मालूम होता, वैसा ही बना हुआ है। रंग उज्ज्वल है, मुँहका एक विशिष्ट रूप है, किन्तु ध्यानसे देखनेसे मालूम हो जाता है कि स्निग्ध कोमलताके अभावमें वह मानो रूखा हो गया है।" वस्तुतः बेलाका चरित्र

बहुत ही यथार्थवादी धरातलपर है, और उसके व्यक्तित्वमें गुणों और अवगुणोंका खूब ही अच्छा मिश्रण हो गया है। क्रोध करके झगड़ा करना उसकी शिक्षा और सौजन्यके विरुद्ध है। आत्म-सम्मानका ध्यान उसे अधिक रहता है। इस आत्म-सम्मानके प्रति सजग रहनेके ही कारण वह पतिसे समझौता नहीं कर पाती है, और उनसे अलग रहती है। फिर भी अपने अधिकारका अनुभव करती हुई वह पतिकी क्षमा-याचनाके बावजूद अदालत जाती है, और वहाँसे अपने भरण-पोषणके लिए पतिसे एक अच्छी खासी रक़म लेनेका फ़ैसला करवा लेती है। स्पष्ट ही उसके इस व्यवहारमें भारतीय सभ्यताकी अपेक्षा पश्चिमी सभ्यताका अधिक निर्वाह हुआ है। और इसी-लिए वह नर-नारीके समानाधिकार तत्त्वकी प्रबल समर्थिका है। वह कहती है, "अपने सम्मान, समस्त नारी-जातिके सम्मानकी रक्षाके लिए उस दिन भी मैंने परवाह नहीं की, आज भी न करूँगी। अपनी मर्यादा खोकर पतिकी घर-गृहस्थी चलाना मैंने पसंद नहीं किया......किन्तु मैंने अनुचित कुछ नहीं किया, इस कारण जैसे उस दिन नहीं डरी, आज भी मैं वैसी ही निडर हूँ। अपनी विवेक बुद्धिके सामने में बिलकुल निर्दोष हूँ।" इसमें कोई संदेह नहीं कि अपने इन विवाह एवं समानाधिकारोंके सिद्धांतोंके कारण बेलाका चरित्र बहुत-कुछ कमलसे मिलता-जुलता जान पड़ता है। आशु बाबू कहते हैं, "कमल, तुम्हारी तरह सोचने और साहसका परिचय देनेमें मैंने केवल एक ही लड़की देखी है, वह है यही बेला।" परन्तु इन दोनों चरित्रोंमें इस एक बाह्य समानताके अतिरिक्त मूलगत अंतर भी बहुत हैं। इस संबंधमें केवल एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा। पतिसे संबंध-विच्छेद कर लेनेपर कमल उनसे अपने भरण-पोषणके लिए एक भी पैसा लेना पसंद नहीं करती। वह अत्यंत निर्धनतामें किसी प्रकार दूसरोंके कपड़े सीकर अपना निर्वाह करती है, किन्तु किसी भी अन्यके सामने हाथ नहीं पसारती। इसके विपरीत बेला अपने पतिको त्याग देनेके बाद भी उनसे रुपये लेती रहती है और इस प्रकार वैभव एवं विलासमय जीवन व्यतीत करती है। यहीं हम दोनोंके दृष्टिकोणोंमें एक मौलिक अंतर देख सकते हैं, और यह निश्चित है कि

स्वयं बेला भी इस अंतरको भली भाँति पहचानती है। इसीलिए कमलको लेकर उसके मनमें एक हीनता ग्रंथि बन गई है। वह यथासंभव उसकी उपेक्षा एवं अनादर करनको ही प्रस्तुत रहती है।

'शेष प्रश्न' की कथा-वस्तुमें मालिनीका यत्र-तत्र उल्लेख-भर मिलता है। वह आगरेके नये मैजिस्ट्रेटकी पत्नी है। उसके ही प्रयत्नसे और उसके ही घरपर नारी-कल्याण-समितिकी स्थापना हुई है। मालिनीकी चारित्रिक संवेदना बहुत अंशोंमें बेलासे मिलती-जुलती है। 'वे पदस्थ व्यक्तियोंकी स्त्रियाँ हैं। हाई सर्किलकी महिलाएँ हैं। अँग्रेज़ी बातचीत, चाल-चलन, वेशभूषामें अप्टूडेट हैं, बेलाकी ही भाँति मालिनी भी यथासम्भव कमलका अपमान करनेका अवसर ढूंढ़ती है। 'नारी-कल्याण-समिति' के प्रमुख उद्देश्योंमें-से एक कदाचित् यह भी रहा होगा। उसकी एक बैठकमें तो कमलके चाल-चलनकी ही बुराई की जाती है। वस्तुतः मालिनी बाहरी तड़क-भड़कमें व्यस्त रहनेवाली उन महिलाओंमें-से एक है, जो मानव-मनके अंदर एकदम नहीं पैठ पातीं।

'शेष प्रश्न' के नारी-पात्रोंकी उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचनाके उपरांत हम कह सकते हैं कि इस उपन्यासका नारी-समाज अत्यंत सुशिक्षित एवं सुसं-स्कृत है। शरत् बाबूके कथा-साहित्यमें इस कृतिकी यह अपनी विशेषता है। प्रस्तुत उपन्यासके प्रायः सभी नारी-पात्र अत्यंत विचारवान एवं तर्कशील हैं। अपने कथोपकथनोंमें वे सूत्र-शैलीका व्यवहार अधिक करते हैं। और कमलकी बुद्धि तथा तर्क-शैलीकी प्रखरता तो अतुलनीय है। इसीलिए सारे उपन्यासका वातावरण नितांत बौद्धिक हो उठा है, फिर भी वह मनको उबाता नहीं, आकर्षित ही अधिक करता है।

विप्रदास

•

'विप्रदास' शरत् बाबूका अंतिम पूर्ण उपन्यास है। बहुत-से आलोचकों-के मतानुसार उनकी यह कृति पूर्वागत सभी रचनाओंसे, विचार और विधान दोनोंमें, अधिक प्रौढ़ है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह मत बहुत अंशोंमें सत्य है। इस उपन्यासकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें उन्होंने नारीके भारतीय रूपको ही अधिक श्रेयस्कर एवं महिमामय दिखाया है। नारीके पूर्वी और पश्चिमी संस्कृतियोंसे अनुप्राणित, दो विभिन्न एवं प्रायः विरोधी रूपोंमें, श्रेष्ठताके लिए जो संघर्ष शरत् बाबूके मनमें चल रहा था, उसकी चरम सीमा उनके सर्वापेक्षा प्रसिद्ध उपन्यास 'शेष प्रश्न' में पहुँच गई है, परन्तु इसके बाद,जान पड़ता है कि उनका निर्णय नारीके परंपरागत भारतीय रूपके ही पक्षमें रहा। इस सबके पीछे स्वयं उपन्यासकारकी अपनी निजी अनु-भूतियाँ रही होंगी, यह मानना कदाचित् बहुत न्यायसंगत होगा। बंगाली नारीसमाजमें अँग्रेज़ी शिक्षाके फलस्वरूप जो कुरीतियाँ घर कर गई थीं, उसके दुष्परिणामोंको शरत् बाबूने भली भाँति समझा था। विदेशी संस्कृतिसे प्रेरित कृत्रिम आचार-व्यवहारोंसे नारीका सहज रूप कितना विकृत और खोखला हो सकता है, इसका अंकन उन्होंने प्रस्तुत उपन्यासमें बहुत अच्छी तरहसे किया है। वंदनाकी मौसी, और उनके परिजन इसी वर्गके चरित्र हैं।

जहाँ तक उपन्यासके रूप-गठनका संबंध है, इस क्षेत्रमें उसकी श्रेष्ठता निर्विवाद है। यह कथा-वस्तुके चयनकी ही विशेषता है कि 'विप्रदास' इतना सशक्त तथा प्रभावोत्पादक उपन्यास बन सका है। मनोवेगों और संस्कारोंके पारस्परिक तीखे संघर्षका मिश्रण जिस प्रकारसे इसमें किया गया है, वह

पाठकके हृदयको झकझोर देता है। शरत्के पिछले उपन्यासोंमें इतना शक्तिशाली कथानक कदाचित् केवल 'गृहदाह' में ही मिलता है। अत्यंत ही सुगठित शैलीके फलस्वरूप 'विप्रदास' का प्रत्येक स्थल बहुत मार्मिक बन गया है।

'विप्रदास' की कथा अत्यंत संक्षेपमें इस प्रकार कही जा सकती है—बलरामपुरके समृद्ध जमींदारोंका घराना मुखर्जी परिवारके नामसे विख्यात है। इस परिवारमें विधवा माँ गृहस्वामिनीके पदपर प्रतिष्ठित हैं। उनके दो पुत्र हैं। बड़ा लड़का सौतेला है—विप्रदास, छोटेका नाम है द्विजदास। माँ बड़े लड़केसे जितना ही संतुष्ट रहती हैं, उतना ही छोटे लड़केसे असंतुष्ट। विप्रदासकी पत्नीका नाम है सती। अपने देवर द्विजदासपर उसके स्नेहाधिकारकी सीमा नहीं। उसकी यह आंतरिक कामना है कि उसका विवाह किसी प्रकार उसकी चचेरी बहिन वंदनासे हो जाय, परन्तु इसमें कठिनाई यह है कि वंदनाका परिवार तो आँग्ल सभ्यताको संपूर्णतः अपनाये हुए है, और विप्रदासके घरमें, विशेषतः उनकी विधवा माँ, सभी लोग कट्टर हिन्दू धर्मके अनुयायी हैं। द्विजदासको अवश्य ही अपवाद-स्वरूप माना जा सकता है।

एक बार अनायास ही वंदना अपने पिताके साथ बलरामपुर आ पहुँचती है। सतीके माध्यमसे द्विजदास और वंदना एक-दूसरेके बारेमें काफ़ी सुन चुके हैं, और इस प्रथम भेंटके अवसरपर दोनों एक-दूसरेकी ओर आकर्षित भी होते ह, परन्तु इसके साथ ही साथ वे अपनी सीमाओंको भी जानते हैं। अपने आत्माभिमानी स्वभावके कारण वंदना विप्रदासकी माँ दयामयीका कठोर आचार-व्यवहार देख कर अपमानित अनुभव करती है। उनके हृदयकी कोमलता और स्नेहको वह नहीं पहचान पाती।

इसके उपरांत परंपरागत संस्कारों और अपरिहार्य मनोवेगोंका तीखा संघर्ष प्रारंभ होता है। दयामयी और वंदना, वंदना और विप्रदास, वंदना और सुधीर तथा वंदना और अशोकके बीच आकर्षण और विकर्षणकी स्थिति कई बार एक-दूसरेकी स्थानापन्न होती है, परंतु इस

सारी उथल-पुथलके बीच भी वंदना और द्विजदासका अप्रकट संबंध अक्षुण्ण बना रहता है। एक बार विप्रदासने वंदनाको आशीर्वाद दिया था कि जो तुम्हारा वास्तवमें अपना होगा उसको ही तुम किसी दिन पा जाओगी। और अंततोगत्वा विप्रदासका वह आशीर्वाद सफल होता है। अनेकानेक संघर्षोंके बाद दृढ़ एवं अपरिवर्त्तित स्नेहकी विजय दिखाना शरत्के कथाकारका जैसे चरम ध्येय रहा है।

मुखर्जी-परिवारकी अत्यंत ही दुःखमय स्थितिका द्विजदाससे समाचार पाकर वंदना अपने पिताकी आज्ञा लेकर बंबईसे बलरामपुर चली आती है। एक सप्ताहके अनंतर उसके पिता भी आ जाते हैं, और उनके सामने द्विजदास तथा वंदनाका विवाह संपन्न होता है, परन्तु तब तक मुखर्जी-परिवारके व्यक्तियोंकी संख्या बहुत कम हो गई है—सतीकी मृत्यु हो चुकी है। विप्रदास और उनकी माँ तीर्थाटनके लिए जा रही हैं जो शायद कभी समाप्त न होगा। द्विजदासकी बहिन कल्याणी तथा उसके पति शशधरका इस घरसे संबंध टूट चुका है। अपने चाचाकी गृहस्थीमें रहनेके लिए विप्रदासका एकमात्र पुत्र बासू ही अवशिष्ट रह जाता है, और रह जाती है घरकी पुरानी दासी अन्नदा। और इस प्रकार जीवनकी सुख-दुःख और धूप-छाँहसे युक्त गोधूलि वेलामें उपन्यासका अंत होता है।

यहाँ शरत्की चरित्र-निर्माण-शैलीके संबंधमें एक समस्यापर विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा। प्रायः ही यह कहा जाता है कि शरत्ने अपने उपन्यासोंमें पुरुष-पात्रोंको अत्यंत दुर्बल तथा अशक्त रूपमें अंकित किया है। वे सदैव ही नारीकी महत्ताके शिकार रहते हैं। प्रस्तुत प्रसंगमें इस विषयके विस्तारमें जाना संभव न हो सकेगा। यहाँ केवल इतना ही कहा जा सकता है कि 'विप्रदास' के कथानकके आधारपर यह आक्षेप नितांत निर्मूल सिद्ध होता है। इस अत्यंत सशक्त उपन्यासका नायक है शीर्षक-चरित्र विप्रदास। और इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रारंभसे लेकर अंत तक उसके व्यक्तित्वकी दृढ़ता एवं कठोरता अक्षुण्ण रहती है। उपन्यासके सभी पुरुष और नारी पात्र उसकी प्रभविष्णुतासे अभिभूत रहते हैं। वंदना हँसी-हँसीमें ही विप्रदासको जो

'बाघ' की पदवीसे विभूषित करती है, उसका भाव यही है कि विप्रदासके सम्मुख स्वच्छंदता बरत पाना किसीके लिए भी संभव नहीं है। यहाँ तक कि दयामयी-जैसे महिमामय व्यक्तित्वको भी कहीं-कहीं अपने पुत्रके सम्मुख झुकना पड़ता है। यहाँ साथ ही साथ यह भी स्मरणीय है कि विप्रदासकी मातृ-भक्ति सचमुच पौराणिक है।

'विप्रदास' के नारी-पात्रोंकी संख्या दस है, परन्तु स्पष्ट ही इनमें-से सबका कथानकमें महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है। प्रधान नारी-चरित्र तीन हैं—वंदना, दयामयी और सती। अन्नदा, मैत्रेयी और वंदनाकी मौसीको पार्श्व-चरित्र कहा जा सकता है। शेष चार पात्र—कल्याणी, प्रकृति, हेम तथा बैरिस्टर-पत्नीका उपन्यासमें यत्र-तत्र उल्लेख-भर है। सबसे पहले हम उपन्यासकी नायिका वंदनाके चरित्रका विश्लेषण करेंगे।

वंदनाका चरित्रांकन शरत् बाबूने अत्यन्त ही अनुभवगम्य धरातलपर किया है। शरत्के जीवन-कालमें बंगालका सामाजिक जीवन बहुत-से सुधारोंसे आक्रांत हो उठा था। ब्राह्म-समाज तथा कुछ अन्य पाश्चात्य परिपाटीमें शिक्षित व्यक्तियोंके प्रभावके फलस्वरूप ही बंगालमें इन सामाजिक सुधारोंकी लहर-सी उठी। इनमें-से प्रमुख थे—स्त्री-शिक्षाका प्रचार, सती-प्रथाका विरोध, विधवा-विवाहका प्रचलन, पुरुषोंद्वारा बहु-विवाहकी संस्थाका विरोध, स्त्रियोंके बाल-विवाहका बहिष्करण तथा कुलीनताकी भावनाका विरोध। स्पष्ट ही इन सुधारोंसे प्रभावित होनेवाले व्यक्तियोंमें स्त्रियोंकी संख्या अधिक थी। कदाचित् तत्कालीन बंगाली नारी-समाजकी दुरवस्थाको देखकर ही इन सुधारोंकी आयोजना भी हुई थी। और यह भी सच है कि उस समयके बंगालमें नारीकी सामाजिक स्थिति अत्यंत दयनीय थी। 'श्रीकान्त'के एक पात्रके माध्यमसे स्वयं शरत् बाबूने कहलाया है, "बंगालकी कन्या अत्याचारकी चिर-अभ्यस्त है; और कहीं तो शायद कुत्ते-बिल्लियोंकी भी इतनी दुर्गति करनेमें मनुष्यका हृदय काँपता होगा" (४:१६०)। इन कन्याओंकी दुरवस्थाके विरोधमें ही सुधारकोंको अपनी अधिक-से-अधिक शक्ति लगानी पड़ी थी। इन सुधारोंकी थोड़ी-बहुत सफलताके साथ बंगालमें स्त्री-

पुरुषोंके एक नव्य दलकी स्थापना हुई, जिसकी जीवन-चर्या और सामाजिक मर्यादाएँ प्रमुखतः आँग्ल-संस्कृतिसे अनुप्राणित थीं। वंदनाका चरित्र शरत् बाबूने इस नव्य दलकी प्रतिनिधिके रूपमें ही अंकित किया है।

सामाजिक सुधारोंकी प्रत्येक लहर अपने साथ कुछ बुराइयाँ भी लाती है। १९वीं शतीके अंतिम भाग तथा २०वीं शतीके प्रारंभमें बंगालमें जो नारी-जागरण हुआ, उसमें भी सामाजिक बुराइयोंका प्रवेश हुआ। इसके फलस्वरूप इस नव्य दलने जहाँ एक ओर शिक्षा तथा विवाह आदि संबंधी सुधारोंको अपनाया, वहीं दूसरी ओर उसमें बनावटीपन, मिथ्या सामाजिक मर्यादाएँ, प्राचीन परंपराओंका अकारण विरोध तथा इसी प्रकारकी कुछ अन्य कुरीतियाँ भी आ गईं। तनिक गहराईसे देखनेपर इस वर्गके खोखलेपनका स्पष्ट मान होने लगा। 'विप्रदास' में वंदनाकी मौसी और उनके परिवारके अधिकांश व्यक्तियोंका चित्रण इसी रूपमें हुआ है। इस वर्गके सदस्योंने अपनी संस्कृतिमें जो कुछ भी अच्छा था, उसका त्याग करके, पाश्चात्य संस्कृतिके अत्यंत सतही रूपको ही अपनाया। फलतः उनके सामाजिक जीवनमें किसी भी प्रकारकी निष्ठा अथवा आस्था अवशिष्ट न रही, और उसका स्वरूप एकदम जर्जर हो उठा।

इस नव्य दलकी एक सदस्याके रूपमें वंदना भी इन बुराइयोंसे बची नहीं रही, उपन्यासके प्रारंभमें उसका दृष्टिकोण हमें बहुत कुछ सतही दिखाई देता है। परन्तु उसकी आंतरिक मर्यादाओंके पूर्णतः विघटित होनेके पूर्व ही उसे विप्रदास और उसके परिवारका साहचर्य मिल गया। यहाँ आकर उसने वह निष्ठा तथा आस्था पुनः प्राप्त कर ली जो उसके अपने व्यक्तित्वमें नष्ट हो गई थी। और इस प्रकार उसके चरित्रमें पूर्वी तथा पश्चिमी संस्कृतिके तत्त्वोंका उचित अनुपातमें सम्मिश्रण संभव हो सका। इस सानुपात सम्मिश्रणके कारण ही उसका व्यक्तित्व उपन्यासके मध्य-भागसे एकदम निखर उठा है। वस्तुतः 'विप्रदास'की वंदनाको जिस मोहक तथा प्रभावशाली रूपमें कथाकारने हमारे सम्मुख उपस्थित किया है, उससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि शरत् बाबू नारीके रूपमें इसी समन्वयको वांछनीय समझते

थे। वंदनाका चित्रण उपन्यासकारने यद्यपि बहुत तटस्थ होकर किया है, फिर भी इस चरित्रके प्रति उसके मनका आंतरिक मोह छिप नहीं पाता।

रवीन्द्रनाथके अनुसार स्त्रियोंकी दो जातियाँ होती हैं—एक तो माता, और दूसरी प्रिया। वंदनाका व्यक्तित्व दूसरे वर्गके अंतर्गत आता है। उसके व्यक्तित्वका एक अंश कठोर होते हुए भी, उसकी संपूर्ण सुकुमारताको नष्ट नहीं कर पाता। उसका स्वभाव बहुत सरल तथा निःसंकोच है प्रथम बार अपनी बहिनके घर आनेपर उसकी स्वच्छंदता द्विजदासको चकित कर देती है। किशोरावस्था पार कर चुकनेपर भी वह अपने बाबूजीसे कहानी सुनती है; और इस तथ्यको सबके सम्मुख स्वीकार करनेमें उसे कोई लज्जा नहीं है। दुर्लभ सौंदर्यकी स्वामिनी होनेपर भी उसे इस बातका गर्व नहीं है। दूसरे लोग इससे अवश्य ही प्रभावित होते हैं। सतीका मत है कि 'वंदनाकी संसारमें कोई अवहेलना नहीं कर सकता।'

वंदनाके स्वभावकी कठोरता भी अपनी प्रकृतिमें बहुत सात्त्विक है। प्रथम भेंटके समय विप्रदासके बहु प्रशंसित परिचयको सुनकर वह उन्हें ज़मीनपर झुककर प्रणाम नहीं करती। उसकी माँसे अपमानित अनुभव करनेपर वह बिना कुछ खाये-पिये ही तत्काल अपने पिताके साथ चल देती है। उसका यह हठ निश्चय ही उसके पिताके दुलारका परिणाम है। वे स्वयं भी कहते हैं, "एकबार हठ पकड़नेपर फिर यह उससे विरत नहीं की जा सकती।" विप्रदासके कलकत्तेवाले घरसे भी ठीक इसी प्रकारसे वह चल देती है, और अकेले पड़े हुए द्विजदासकी तबीयत ख़राब है, इस बातकी भी चिंता नहीं करती। ठीक इसके विपरीत एक बार अपनी मौसीके बहुत डराने-धमकानेके बावजूद वह रुग्ण विप्रदासको छोड़कर, उनके घर जानेको तैयार नहीं होती। वंदनाके इन व्यवहारोंको देखकर लगता है कि कभी-कभी उसके कुछ अपने 'मूड' होते हैं, परन्तु इससे उसकी स्थायी विचारशीलताको कोई हानि नहीं पहुँचती। कभी-कभी जाग्रत होनेवाला उसका हठ उसका अपने पितापर अधिकार व्यक्त करता है।

वंदनाका यह चांचल्य तथा कठोरता, दोनों ही बहुत कुछ उसकी स्वाभिमानी प्रकृतिके कारण हैं। विप्रदास-जैसे व्यक्तित्वकी महत्ताको भी पूर्णतः वह उपन्यासके अंतिम अंशोंमें ही स्वीकार कर पाती है। दयामयीसे प्रारंभमें रुष्ट हो जानेका प्रधान कारण उसके अभिमानको ठेस लगना ही है। बादमें विप्रदासके सम्मुख वह इस आत्मप्रतिष्ठाकी बात कहती भी है। इस आत्म-अभिमानके साथ उसके व्यक्तित्वमें एक आत्म अधिकारकी भावना भी मिश्रित है। विप्रदासका मैनेजर इस बातका भली भाँति अनुभव करता है, "विप्रदासकी आज्ञाकी अवहेलना करना कठिन है, यहाँ तक कि असंभव भी कह सकते हैं, किन्तु इस अपरिचित लड़कीकी सुनिश्चित, असंदिग्ध आज्ञा न मानना भी कम कठिन नहीं है। प्रायः उतना ही असंभव है।" सौंदर्य तथा विचार-शक्तिने मिलकर वंदनाके व्यक्तित्वको एक अजब-सी दृढ़ता दे रक्खी है, विप्रदासका सारा तेज भी उसकी इस दृढ़ताको कहीं-कहीं नहीं दबा पाता।

अपनी शिक्षा-दीक्षाके अतिरिक्त वंदनाका बौद्धिक स्तर काफ़ी ऊँचा है। इसीलिए वाद-विवाद करनेकी शक्ति भी उसमें कम नहीं है। अपनी विचार-शक्तिके कारण ही वह दयामयीसे तिरस्कृत अनुभव करनेपर भी क्षमा माँगती है। अपने चिंतनको विप्रदासके सम्मुख व्यक्त करती हुई वह कहती है, "शायद मेरा यही स्वभाव है, हो सकता है कि मेरी अवस्थाके अनुकूल यही स्वधर्म है, हृदय शून्य नहीं रहना चाहता, छटपटाकर चारों तरफ़ घूमता रहता है। शायद सभी औरतोंका स्वभाव ही ऐसा होता है; प्रेमपात्र कौन है, सारे जीवनमें भी खोजकर नहीं पाती....अथवा यह खोजकर पा लेनेकी वस्तु ही नहीं है मुखर्जी—यह मृगमरीचिका है।" धर्म-अधर्म तथा संस्कारकी प्रकृतिके बारेमें भी उसने सोचा-विचारा है। जीवनके प्रायः सभी पहलुओं-को लेकर उसने अपना निश्चित दृष्टिकोण बनानेका यत्न किया है।

पर इस सबके बावजूद वंदनाका चरित्र घोर बुद्धिवादी नहीं है। 'चरित्र-हीन' की किरणमयी अथवा 'शेष प्रश्न' की कमलके समान अधिक तर्क करने-में उसकी रुचि नहीं। जीवनको एक सुसंस्कृत रूपमें स्वीकार किया जाये, यही उसकी प्रधान मान्यता है। इसीलिए हास्य-विनोद-प्रिय होते हुए भी

वह हल्के मजाक़ों अथवा आक्षेपोंको सुनना पसंद नहीं करती। वैसे विप्रदास-के प्रति उसे हास्यात्मक उक्ति कहनेमें विशेष रस मिलता है। साधारणतः उसकी बातचीतमें एक सहज मिठास रहती है, जो अनायास ही सबको मुग्ध कर लेती है। इसके अतिरिक्त सौजन्य उसके चरित्रका एक अनिवार्य अंग बन गया है।

सतत स्नेहकी भावनाने वंदनाके व्यक्तित्वको अत्यंत मधुर तथा कोमल बना दिया है। हठी स्वभाव होनेपर भी वह कभी क्रुद्ध नहीं होती। किसीके प्रति विरुद्धताका भाव उसके मनमें नहीं है। विप्रदाससे अप्रसन्न होकर मौसी-के यहाँ चली जानेपर भी, जब वह उनकी बीमारीका समाचार पाती है तो मौसीके यहाँ के विवाह-समारोहको छोड़कर वह सीधी उनके पास जा पहुँचती है। विप्रदासकी तो उसे इतनी अधिक चिंता रहती है कि उनके सारे छोटे-बड़े काम वह स्वयं करती है। इस सेवाके लिए वह उन सारे आचरणोंको करती है, जिन्हें वह कुछ दिन पहिले मिथ्या ढोंग समझती थी। वस्तुतः जीवनमें सरलता तथा स्नेहकी भावनाको उसने अत्यंत सहज रूपमें अपना रक्खा है। त्रुटि खोजते रहना उसे अच्छा नहीं लगता।

इस पूर्णतः मनोवैज्ञानिक उपन्यासमें अन्य चरित्रोंके प्रति वंदनाकी प्रतिक्रियाएँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। अंततोगत्वा द्विजदासकी पत्नी होनेपर भी, वंदना अपनी बहिनके पति विप्रदासको सबसे अधिक प्यार करने लगी है, यद्यपि प्रारंभमें वह सजगरूपसे उसके प्रभावका तिरस्कार करती है। आगे चलकर उसे अपने पूर्व-व्यवहारपर लज्जाका अनुभव होता है। धीरे-धीरे विप्रदासके प्रति उसका आकर्षण बहुत कुछ श्रद्धाके रूपमें परिणत हो जाता है। फिर तो वह उसके प्रत्येक आचरणकी प्रशंसक तथा यथा-संभव अनुयायी हो जाती है। यह उसके स्नेहाधिकारका ही परिणाम है कि अत्यंत कट्टर विप्रदास उसके हाथका बनाया हुआ भोजन स्वीकार कर लेता है। वंदना भी विप्रदाससे कोई बात छिपाती नहीं और उसके साथ रहनेमें उसे अत्यधिक सुख तथा शांतिका अनुभव होता है। वस्तुतः वंदनाके चरित्र-परिवर्तनमें विप्रदासका बड़ा हाथ है। जो वंदना पहले आंग्ल-सभ्यता-

की अंध-भक्त थी, विप्रदासके संपर्कमें आकर अपनी जातीय संस्कृतिकी अनुगामिनी बन जाती है। ऐसा लगता है मानो विप्रदासके समीप आकर उसका अधूरा चरित्र पूर्ण तथा सर्वाङ्गीण हो गया हो। अशोक विप्रदाससे कहता है "वंदना मन-ही-मन आपकी पूजा करती है, इतनी भक्ति वह संसारमें किसी पर भी नहीं करती।" वंदनाकी विप्रदासमें सचमुच अडिग निष्ठा है। वह उनको वचन देती है, "इस जीवनमें यदि और कभी दर्शन न पाऊँ, तो भी कहूँगी कि वे भ्रांत नहीं हैं, उनके लिए शोक करना व्यर्थ है।" कभी समाप्त न होने वाली तीर्थ-यात्राके लिए जाते समय, वह उनसे कहती है, "कलकत्तेमें पूजाके कमरेमें आपकी जिस मूर्तिको मैंने छिपा रखा था, आज फिर वही मूर्ति मेरी दृष्टिमें पड़ गई है, बड़े भैया! और मुझे शोक नहीं है, आपका पता ठिकाना भले ही न मिले। मन-ही मन जिस दिन पुकारूँगी; आपको आना ही पड़ेगा। आप जितना भी नहीं-नहीं करें, किसी दिन भी यह बात झूठी न होगी।" 'पथेर-दावी' में जिस प्रकारका संबंध सव्यसाची तथा भारतीमें है, बहुत कुछ उसी प्रकारका संबंध विप्रदास तथा वंदनामें भी है।

द्विजदासके प्रति वंदनाका प्रेम अत्यंत सहज तथा नैसर्गिक है। प्रारंभसे लेकर अंत तक वह प्रायः एकरस रहता है। इसको यह अपने व्यक्तित्वके एक अपरिहार्य अंगके रूपमें स्वीकार करती है। द्विजदासकी सरलता वंदनाको अत्यंत ही प्रिय लगती है। उसकी इस निरीहताने ही वंदनाको जीत लिया है। अनेकानेक जटिलताओंके बावजूद सुधीर तथा अशोकको छोड़कर वंदना अंतमें द्विजदासको ही पति-रूपमें स्वीकार करती है। इन दोनोंके पारस्परिक संबंधमें न तो कोई जटिलता ही आई और न कोई विषमता ही। परंतु फिर भी इन दोनोंकी एक दूसरेके प्रति प्रणय-भावना अंत तक प्रायः मूक ही रही।

वंदना और दयामयीके पारस्परिक संबंधमें कई प्रकारकी स्थितियाँ रही हैं। प्रारंभमें वंदना दयामयी-द्वारा अपने आपको अपमानित अनुभव करती है। और इसके लिए वह कोई समझौता करनेको तैयार नहीं होती। पर धीरे-धीरे स्वयं ही वह उनकी गहरी स्नेहशीलतासे प्रभावित होती है। परन्तु यह संबंध इस स्थितिमें बहुत दिनोंतक चल भी नहीं पाता कि एकाएक

दयामयीको ज्ञात होता है कि वंदनाका विवाह एक विजातीय युवकसे निश्चित किया जा चुका है। इसको जानकर उनकी विमुखताका कोई अंत नहीं रहता। परंतु जब वंदना स्वतः सुधीरसे अपना संबंध तोड़ लेती है तो वह फिर दयामयीकी विश्वास-भाजन हो जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वंदनाके अत्यंत स्वच्छ आचरणोंसे प्रभावित होकर ही कट्टर दयामयी इस 'म्लेच्छ लड़की'को अपना सकीं। यह सचमुच वंदनाके चरित्रकी एक बड़ी विशेषता है कि वह इस घोर सनातनी घरमें इतना आदर तथा स्नेह पा गई है। दयामयी उसको खोकर बहुत क्षुब्ध हो उठती हैं, परंतु जब फिर उसे पाती हैं तो उनके आनंदकी सीमा नहीं रहती।

वंदना तथा सतीके संबंधमें कभी किसी भी प्रकारकी विरुद्धता नहीं आती। सगी बहिन न होनेपर भी दोनोंमें स्नेह अत्यंत प्रगाढ़ है। सतीको अपनी बहिनके सौन्दर्य तथा गुणोंपर गर्व है। वंदना भी अपनी स्नेहमयी 'मँझली बहिन' का बहुत आदर करती है। यद्यपि यह सच है कि सती तथा वंदना दोनों एक साथ कभी बहुत दिनों तक नहीं रही हैं; पर शरच्चंद्रके पात्रोंमें स्नेहकी गहराई समयके अनुपातसे निर्धारित नहीं होती। वंदना सदैव सतीकी इच्छाओंको ध्यानमें रखकर काम करती है। दोनोंके बीचमें जो भावात्मक सामंजस्य है, वह सचमुच स्पृहणीय है।

जैसा पहले भी संकेत किया जा चुका है, वंदनाके चरित्रमें दृढ़ता होते हुए भी उसके व्यक्तिगत व्यवहारमें काफ़ी चांचल्य है। उसकी इस प्रवृत्तिको अंग्रेज़ीमें 'फ्रीकिश' शब्द द्वारा भली भांति व्यक्त किया जा सकता है। क्षण भरके लिए कब उसका व्यवहार किसके प्रति कैसा हो जायगा, इसे कोई भी नहीं समझ सकता। आकर्षण तथा विकर्षण उसके मनमें बड़ी तीव्रतासे प्रवेश करते हैं; परंतु किसीके भी प्रति सतत विकर्षण उसका स्थायी भाव नहीं है। उसके इस प्रकारके चंचल व्यवहारका प्रधान कारण उसके व्यक्तित्वकी सरलता तथा स्नेहप्रियता है।

शरच्चंद्रके नारी चरित्रोंमें वंदनाका स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। नारी-जाति संबंधी उनकी विचार-धारामें वह उनकी अंतिम मान्यताओं

तथा निष्कर्षोंको प्रकट करती है। परिवार तथा तत्संबंधी अन्य समस्याओंको लेकर कलाकारके मनमें चलने वाला संघर्ष 'नव-विधान' में अत्यंत प्रमुख रूपसे व्यक्त हुआ है। वहाँ भी अँग्रेज़ी आचार-विचारोंकी तुलनामें प्राचीन भारतीय परंपराओंको ही विजय होता हुआ दिखाया गया है। 'विप्रदास' में शरच्चंद्रने इस प्रश्नको फिरसे उठाया है, और इस बार भी उनका निर्णय भारतीय संस्कृतिके ही पक्षमें रहा है। 'विप्रदास' की वंदना प्रारंभमें आंग्ल सभ्यतासे पूर्णत: प्रभावित होनेपर भी अपने बहनोईके संपर्कमें आकर स्वजातीय परंपरागत मान्यताओंको स्वीकार कर लेती है, जिन्हें वह कभी अत्यंत घृणाकी दृष्टिसे देखती थी। रचना-क्रमके अनुसार 'विप्रदास' के पहले 'शेष प्रश्न'का स्थान है। 'शेष-प्रश्न'में संस्कृतिके उपादानोंके पूर्वी तथा पाश्चात्य रूपोंके बीचमें चलनेवाला उपन्यासकारके मनका संघर्ष अपनी चरम सीमापर पहुँच जाता है। वहाँपर आशु बाबूके रूपमें स्वयं उपस्थित होते हुए भी शरच्चंद्र अपना मत ठीक-ठीक निर्धारित नहीं कर पाते। किन्तु 'विप्रदास' तक आते-आते उनका मत सुस्थिर हो जाता है, और विप्रदास तथा वंदना के रूपमें वे संस्कृति तथा नारीके भारतीय रूपको ही स्वीकार करते हैं। और इस प्रकार सुधार तथा संस्कारमें गहन संघर्ष होनेके उपरांत, शरच्चंद्रके जन्मगत संस्कार ही अंततोगत्वा विजयी होते हैं।

वंदनाका चरित्र बहुत आदर्शवादी धरातलपर हो, ऐसी बात नहीं है। वह अत्यंत यथार्थ है, और यह यथार्थता ही उसे इतना मोहक बना देती है। मानव-जीवनकी सभी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ उसके व्यक्तित्वमें घुली-मिली हैं। दया, करुणा, उदारता, घृणा, क्रोध, सहानुभूति तथा 'प्रेजुडिस'—सभी उसके मनमें वर्त्तमान हैं। परन्तु उसके चरित्रकी आधारशिला मानव-जीवनकी उच्चतम प्रवृत्तियोंसे ही निर्मित है। यही कारण है कि उसका व्यक्तित्व, आदर्शवादी न होते हुए भी, अत्यंत मोहक तथा प्रभविष्णु है। परन्तु इतनी समीक्षाके उपरान्त भी आलोचकको यह स्वीकार करना पड़ता है कि वंदनाका चरित्र इतना सुकुमार है कि उसके तत्त्वोंका पर्याप्त रूपसे विश्लेषण बहुत कठिन है। गुलाबके फूलमें कांटे भी होते हैं, और छोटे-

छोटे कीड़े भी। परन्तु इन दोनोंसे उसके सौंदर्य और उसकी मोहकतामें कोई अंतर नहीं आता। बहुत कुछ ऐसी ही स्थिति 'विप्रदास' की वंदना की भी है।

'विप्रदास' में दूसरा प्रमुख नारी-चरित्र दयामयीका है। प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा निष्ठा उनके व्यक्तित्वके प्रधान अंग हैं। यह गहन निष्ठा व्यापक स्नेहशीलतासे संयुक्त होनेके कारण और भी प्रभविष्णु हो गई है। सनातन धर्ममें प्रचलित सभी आचार-व्यवहारोंका वे कट्टरताके साथ पालन करती हैं। छूत-छातका विचार उन्हें बहुत अधिक रहता है। परन्तु उनकी इस आचरणप्रियताके पीछे कोई अंधभक्ति नहीं है। वंदनाके व्यवहार से संतुष्ट हो जानेपर वे इस 'म्लेच्छ लड़की' को रसोइघरमें जाने तक की आज्ञा दे देती हैं। वस्तुत: धार्मिक आचार-विचारोंसे बद्ध होते हुए भी, उनके विचार बहुत सुलझे हुए हैं। अपने व्यवहारसे किसीके मनको ठेस न पहुँचानेका उन्हें बहुत ध्यान रहता है।

विप्रदासके प्रति उनकी ममताकी सीमा नहीं। सौतेला पुत्र होते हुए भी उसको वे अपने सगे पुत्रसे अधिक चाहती हैं। विप्रदासके प्रति उनका विश्वास अटूट है। केवल एक स्थानपर इन दोनोंके संबंधमें व्याघात उत्पन्न होता है; परन्तु उपन्यासके समाप्त होते-होते माँ-बेटेकी स्थिति पूर्ववत् हो जाती है। द्विजदास प्रारंभमें ही वंदनासे कहता है, "सौतेली माँ हैं तो ज़रूर, किन्तु भैयाकी नहीं, मेरी हैं।" विप्रदासके निकट भी माँकी मर्यादा सबसे बड़ी चीज़ है। सचमुच एक-दूसरेके प्रति दोनोंकी ही श्रद्धा अनुपम है। 'दयामयीके दो पुत्र हैं—वे ज्येष्ठके प्रति जैसी अगाध आशा और भरोसा रखती हैं, कनिष्ठ पुत्रके प्रति वैसे ही संदेह और भयकी भावना उनके मनमें बनी रहती है।'

द्विजदाससे दयामयी बहुत प्रसन्न नहीं रहतीं। उसके साथ तो वे स्वर्ग भी जानेको राजी नहीं। परन्तु फिर इससे उनके पुत्र-प्रेममें कोई अंतर नहीं पड़ता, मन ही मन वे द्विजदासकी सुरक्षाका ध्यान रखती हैं। वंदनाको द्विजदासकी पत्नी बनानेका भाव उनके मनमें इसीलिए आता है।

वंदनाके प्रति दयामयीका भाव प्रारंभमें कदाचित् कुछ अच्छा न होनेपर भी, उसके आचार-विचारको देखकर वे अत्यंत प्रभावित होती हैं। इसके बाद तो इस म्लेच्छ लड़कीके प्रति उनके स्नेह तथा विश्वासकी सीमा नहीं रहती। यहाँ तक कि जब उन्हें यह ज्ञात होता है कि उसकी तो सगाई पहले ही हो चुकी है, अतः उसे वे द्विजदासकी पत्नी नहीं बना सकतीं, तो वे अपने आपको अत्यंत क्षुब्ध तथा पराजित अनुभव करती हैं। इस पराजयकी भावनासे अभिभूत होकर वे झूठ-मूठ ही वंदनाके संबंधमें कुछ कड़ी बातें कह देती हैं। परन्तु फिर शीघ्र ही वे वंदनाको अपने पास रखनेके लिए व्याकुल हो उठती हैं। उसके प्रति उनका ममत्व तथा विश्वास अक्षुण्ण रहता है। अपने भंडार की चाबी, जिसे वे सतीके अतिरिक्त और किसीको भी नहीं देतीं, अनायास ही वंदनाको दे देती हैं। परन्तु यह सचमुच नियतिका व्यंग है कि वंदना को इतना अधिक चाहने पर भी, सासके रूपमें वह उसके निकट अधिक नहीं रह पाई।

दयामयीने स्वयं भी अपनी मर्यादाको बहुत ऊँचा रक्खा है। इसीलिए उनका प्रताप भी वैसा ही है। परिवारसे संबद्ध कोई भी व्यक्ति उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता। उनकी अनुपस्थितिमें भी उनकी इच्छाओंका बराबर ध्यान रक्खा जाता है। इतनी बड़ी गृहस्थी उनके संकेतोंपर चलती है। विप्रदास जैसा महिमामय व्यक्ति सदैव उनके आदेशोंको सुननेके लिए तत्पर रहता है। परन्तु यहाँ यह स्मरणीय है कि दयामयीकी मर्यादाकी आधार-शिला विप्रदासकी अटूट मातृ-भक्ति है। जिस दिनसे विप्रदास कल्याणी और शशधरके पीछे घर छोड़कर चला जाता है, उसी दिनसे मानो दयामयी का तेजस्वी रूप विकृत हो उठता है। उनका पुत्री-प्रेम उनके अन्यायका कारण बना है। किन्तु उनके अन्यायने सबसे अधिक उन्हींके व्यक्तित्वको तोड़ दिया है। उनका 'सोने-सा रंग काला हो गया है, माथेके छोटे-छोटे बाल रूखे हो गये हैं, धूलसे मटमैले हैं, आँखें धँस गई हैं, ललाटपर रेखाएँ पड़ गई हैं—दुःख और शोककी ऐसी व्यथाका चित्र वंदनाने कभी नहीं देखा था।' ऐसा बिखरा हुआ व्यक्तित्व वैराग्यमें ही शांति पाता है। उपन्यासके अंतमें विप्रदासके साथ ही दयामयी भी कभी समाप्त न होनेवाली तीर्थ-यात्राके लिए निकल पड़ती हैं।

विप्रदासकी पत्नी सतीका चरित्र जितना ही संक्षेपमें अंकित किया गया है, उतना ही महिमामय भी है। अपने पति, देवर, बहिन, चाचा तथा सासके प्रति असीम श्रद्धा तथा स्नेह उसके व्यक्तित्वका मूल सूत्र है। देवरके प्रति उसकी ममता असीम है। मृत्युके समय वे द्विजदासके अतिरिक्त और किसी के लिए कुछ संदेश नहीं देतीं। यह शरत्की नारियोंकी एक विशेषता है कि उनका स्नेह अप्रत्याशित स्थलोंपर अभिव्यक्त होता है। दयामयीका सगा पुत्र द्विजदास है, परन्तु उनके स्नेह और विश्वासका भागी है सौतेला पुत्र विप्रदास। इसी प्रकार सती यद्यपि पत्नी है विप्रदासकी ,फिर भी उसका स्नेहाधिकार रहता है द्विजदासपर। घर-भरके विरुद्ध होने पर भी द्विजदास की देशभक्तिके कार्योंमें सती उसकी सहायता करती रहती है। द्विजदास भी भाभीकी किसी आज्ञाका उल्लंघन नहीं कर सकता।

सतीके इन स्नेह-संबंधोंने उसके व्यक्तित्वमें एक सौजन्यपूर्ण शक्ति भर दी है। उसके चरित्रकी दृढ़ता तथा अकलुषताने ही उसे इतनी महिमा दी है। सहिष्णुता, विनय तथा शांतिप्रियता उसके चरित्रके अन्य प्रमुख गुण हैं। किसी कठिनाईमें पड़कर उत्तेजित होना अथवा किसी विरुद्ध परिस्थिति में क्रोध करना, उसके स्वभावके विपरीत है।

और इन सबके ऊपर उसकी अटल पति-भक्ति है। पहले तो वह विप्रदाससे कल्याणी आदिसे क्षमा माँगनेके लिए अनुरोध करती है; परंतु प्रार्थना विफल होनेपर वह उन्हींके साथ घर छोड़कर चली भी जाती है। पतिके हर कार्यके लिए वह स्वयंको भी उत्तरदायी समझती है। किसी परिस्थितिमें वह उनका साथ नहीं छोड़ सकती। यही नहीं, विप्रदासकी मौलिक सत्प्रवृत्तियोंके ऊपर उसकी आस्था कभी रंच-मात्र कम नहीं होती। उनसे कभी कोई अन्याय होगा, ऐसा वह सोच ही नहीं सकती।

वंदना तथा द्विजदासके लिए उसके मनका अत्यंत कोमल कोना सुरक्षित है। इन दोनों निरीह प्राणियोंको वह अपने आँचलकी छायामें रखना चाहती है। यह सचमुच ही नियतिका कठोर व्यंग है कि सती वंदना तथा द्विजदासका विवाह न तो स्वयं देख सकी और न अंतिम समयमें उसकी

कल्पना ही कर सकी। इन दोनोंका विवाह हो जाय, यह उसके मनकी एकांत साध थी। परन्तु उसके जीवन-कालमें यह साध अपूर्ण ही रह गई।

'विप्रदास' के कथानकमें अन्नदाका स्थान दासीका न होकर, परिवार के एक निकट सदस्यका है। उसकी विनय, कृतज्ञताकी भावना, स्नेहशीलता तथा कर्त्तव्यपरायणता उसके व्यक्तित्वको बहुत ऊँचा उठा देते हैं। कुशल उपन्यासकारोंके कथानकोंमें इस प्रकारके पार्श्व-चरित्रोंकी योजना इसलिए की जाती है कि वे उपन्यासके अन्य पात्रों तथा पाठकोंके मनमें मानवता तथा मानवीय सत्प्रवृत्तियोंके प्रति आस्थाको अक्षुण्ण बनाये रख सकें। अन्नदा का चरित्र अपने इस कार्यको अत्यंत सफलतापूर्वक संपन्न करता है। उसका भद्र तथा सहिष्णु स्वभाव सबको प्रभावित करता है। उसकी गहन स्वामि-भक्ति मानवीय विश्वासको बल देती है। उसका अटूट स्नेह मानवीय संबंधोंको मधुर तथा स्थायी बनानेकी प्रेरणा देता है। उसके व्यक्तित्वके अध्ययनसे लगता है मानो जीवनसे उसने सब कुछ पा लिया हो। कहीं, किसीके भी प्रति उसकी कोई शिकायत नहीं। उसकी व्यवहार-कुशलता तथा मधुर-संलापने उसे सबका प्रिय बना दिया है। मुखर्जी-परिवारकी तो वह अपरिहार्य सदस्य है। दयामयी, विप्रदास, द्विजदास, सती तथा वंदना-ये सभी उसे बहुत चाहते हैं। और इसीसे जीवन तथा नियतिके प्रति उसकी कृतज्ञताका अंत नहीं रहता।

मैत्रेयीका चरित्र हमारे सम्मुख एक सुशिक्षित तथा सभ्य नवयुवतीके रूपमें आता है। परन्तु उसके व्यक्तित्वका धरातल बहुत ऊँचा नहीं है। स्वार्थ तथा ईर्ष्या जैसी भावनाएँ उसके मनमें सहज ही में प्रवेश पा जाती हैं। उसकी बुद्धि भी बहुत कुछ सतही है। उसके व्यक्तित्वमें वह गहराई नहीं, जो अनायास ही सबको प्रभावित कर लेती है। इस दृष्टिसे उसका चरित्र बहुत-कुछ औसत दर्जेका है। अपनेको तो वह अपना समझ सकती है, परन्तु दूसरेको अपना समझ सकने वाली व्यापक सहानुभूति उसमें नहीं है। उसके चरित्रमें वह स्नेहकी गहराई नहीं है, जो शरच्चंद्रके नारी-पात्रोंको इतना महिमामय बना देती है। वंदनाकी तुलनामें तो उसका व्यक्तित्व नितांत साधा-

रण-सा लगने लगता है। वस्तुतः किसी भी प्रकारकी विशेषताका न होना ही उसके व्यक्तित्वकी सबसे बड़ी कमी है। उसका व्यक्तित्व स्वयं अपने आपमें दोषपूर्ण न होने पर भी, मानव-जीवनकी उच्च भूमियोंपर प्रतिष्ठित नहीं है। इसीलिए वंदनाका स्मरण आते ही, मैत्रेयीका रूप अनायास ही कुछ-कुछ खल-नायिका-का-सा हो जाता है, यद्यपि स्वयं उसका चरित्र इतना बुरा नहीं है।

'विप्रदास' के कथानकमें वंदनाकी मौसीका चरित्र एक षड्यंत्रप्रिय तथा कुटिल नारीके रूपमें अंकित हुआ है। वे उस वर्गका प्रतिनिधित्व करती हैं, जो पर्याप्त अवकाश होनेके कारण दूसरोंके कार्यमें हस्तक्षेप करके अपना छोटे-से-छोटा स्वार्थ साधना चाहती हैं। वंदना जैसी सहानुभूतिमय लड़की भी उनकी इस प्रवृत्तिके कारण उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखने लगती है। वे अकारण ही दूसरे-से ईर्ष्या रखती हैं। उनकी मूल प्रवृत्ति अत्यंत संकुचित है। जीवनकी क्षुद्रताएँ उन्हें विशेष प्रिय हैं। अधिक बातूनी तथा कुटिल बुद्धिके कारण उन्हें अपने इस प्रकारके छोटे-बड़े षड्यंत्रोंको रचनेमें विशेष कठिनाई नहीं होती। मिथ्या अभिमान तथा अनावश्यक कुतूहलकी भी उनमें कमी नहीं है। निष्ठा-हीन नव्य पश्चिमी संस्कृतिकी अनुगामिनी होनेके कारण, उनके जीवनमें अपने स्वार्थका स्थान सर्वोच्च है। दूसरेको समझ सकने तथा उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित कर सकनेकी शक्ति उनमें एकदम नहीं है। इस नव्य दलकी संस्कृतिका चित्रण शरत् बाबूने अत्यंत व्यंजनापूर्ण-ढंगसे 'विप्रदास' में किया है। एक ओर प्राचीन भारतीय संस्कृतिमें आस्था रखनेवाला विप्रदासका परिवार है, दूसरी ओर वंदनाकी मौसीका वर्ग है, जो अँग्रेज़ी सभ्यताके एकदम सतही रूपको अपनाकर पूजा-पाठ आदि को 'सुपरस्टिशन' कहता है। अंततोगत्वा विजय निष्ठाकी ही होती है; अपनी परंपराओंसे च्युत वंदनाकी मौसी अपने षड्यन्त्रमें सफल नहीं हो पातीं।

दयामयीकी पुत्री कल्याणीका उपन्यासके कथानकमें विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है। अपनी माँका कमज़ोर स्नेह उसे प्राप्त है, और इसीके बलपर वह सबको दबाती है। 'विप्रदास'के कथानकमें वह बड़ा मोड़ लाती है, इसमें

कोई संदेह नहीं, पर इसका मुख्य कारण उसका पति है, वह स्वयं नहीं ! वैसे उसका चरित्र बहुत ही साधारण है, दयामयीकी पुत्री तथा द्विजदास की बहिन लगने योग्य वह कुछ नहीं कर पाती।

वंदनाकी मौसीकी लड़की प्रकृतिका तो एक आध-स्थलपर उल्लेख भर हुआ है। हाँ, हेमनलिनीके चरित्रके संबंधमें अवश्य कुछ संकेत हमें मिल जाते हैं। वह भी वंदनाकी मौसीके ही वर्गकी है। अंग्रेज़ी शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करके उसने जीवनका बहुत सतही दृष्टिकोण ही अपनाया है। उसका चरित्र भी संभवतः औसत दर्जेसे कुछ भी ऊपर नहीं है। बलरामपुरके वेटिंग-रूममें मिलनेवाली बैरिस्टर-पत्नीका भी हमें कुछ परिचय नहीं मिल पाता। उपन्यासकार केवल इतना ही कह कर रह जाता है कि पति के एकदम 'साहब' होते हुए, "संभवतः तब तक भी वे मेम साहब न बन सकी थीं।"

वस्तुतः तो 'विप्रदास' तत्कालीन बंगाली नारी-समाजके तीन वर्गोंका एक मर्मस्पर्शी आख्यान है। पहला वर्ग तो वह है जो पूर्णतः 'मेम साहब' बन चुका है, जैसे वंदनाकी मौसी तथा उनके दलके अन्य लोग; दूसरा वर्ग वह है जो इस प्रकारसे 'मेम साहब' बननेके प्रयत्नमें है जैसे हेमनलिनी; और तीसरे वर्गकी प्रतिनिधि है वंदना। यह वर्ग वह है जो 'मेम साहब' बनकर भी आंतरिक शांति नहीं पाता, और अंततोगत्वा फिर वापस आकर अपनी भारतीय परंपराओंको ही स्वीकार करता है। इन तीनों वर्गोंका बड़े सम्यक् दृष्टिकोणसे शरच्चंद्रने परीक्षण किया है। और अंतमें वंदना तथा द्विजदासका विवाह कराके मानो उन्होंने पाश्चात्य तथा भारतीय संस्कृतिके उत्कृष्टतम-अंशोंके संगमकी महत्ता प्रतिपादित की है। इस सांस्कृतिक सम्मिश्रणमें प्रधानता उन्होंने अपने यहाँकी विचार-धाराको ही दी है। अंतिम निर्णय-स्वरूप उपन्यासकारने स्वयं भारतीय नारीके उस महिमामय स्वरूपको ऊँचा ठहराया है, जो 'सास, देवर, नौकर-चाकर, दासी-मजदूरिन, आश्रित-परिजन, ठाकुरबाड़ी, अतिथिशाला तथा गुरु-पुरोहित' सबको साथ लेकर चलता है। 'विप्रदास' के माध्यमसे जीवनको उसकी समग्रतामें स्वीकार करनेकी यह दृष्टि शरच्चंद्रने बड़े विश्वासके साथ हमें दी है।

शरत्‌के नारी पात्र : सामान्य प्रवृत्तियाँ

शरत् बाबू हमारे देशके अन्यतम विचारक एवं कलाकार हैं। वस्तुतः वे कलाकारोंमें महान् विचारक एवं विचारकोंमें महान् कलाकार थे। उन्हें सच्चे अर्थोंमें जीवन-द्रष्टा कहा जा सकता है। उन्होंने जीवनके मानसिक पक्षका ही अधिक अंकन किया है, इसीलिए उनकी 'अपील' इतनी व्यापक है। मानव-मनोविज्ञानके तो शरत् आचार्य हैं ही, परन्तु यदि उन्हें प्रमुख रूपसे नारी-जीवनकी अनुभूतियोंका विशेषज्ञ कहा जाय तो कदाचित् अधिक असंगत न होगा। सृष्टिकी रहस्य-स्वरूपा नारीके जीवनकी जैसी सूक्ष्म परख शरत्‌को थी, वैसी हमारे देशके किसी साहित्यकारमें ही नहीं, वरन् किसी विदेशी कलाकारमें भी मुश्किल ही से मिलेगी। नारी-जीवन अपनी सभी अच्छाइयों और बुराइयोंके साथ जिस मार्मिक ढंगसे शरत्‌की कृतियोंमें अभिव्यक्त हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

एक आक्षेपः—

कुछ विद्वानोंका यह आक्षेप है कि शरत्‌ने अपनी कृतियोंमें उन्हीं पुरुष-पात्रोंको चित्रित किया है, जो नारी-हृदयकी महत्ताका शिकार हो चुके हैं, और यह अनुचित है। परंतु यह धारणा उचित नहीं है, क्योंकि भले ही आजके सामाजिक जीवनमें पुरुषकी महत्ता नारीसे अधिक बढ़ी-चढ़ी हो, फिर भी स्वयं पुरुषके ही निर्माणमें नारीका बहुत बड़ा हाथ है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। जीवनके प्रारंभिक वर्षोंमें व्यक्ति अपनी जननीकी क्रोड़में बनता-बिगड़ता है, फिर तरुणाईमें क़दम रखते ही नारीके प्रिया-स्वरूपसे उसे प्रेरणा मिलने लगती है। इस प्रकार सामाजिक वातावरणसे प्रभावित होते हुए भी पुरुषके व्यक्तित्वकी गठनमें नारीका बड़ा उत्तरदायित्व है। बस इसी अनुपातसे शरत्‌ने अपनी रचनाओंमें नारी-पात्रोंको प्रधानता

दी है। यहाँ यह बात स्पष्ट रूपसे कह देनी होगी कि उपन्यासकारकी कलामें तत्कालीन बंगाली नारी-समाजकी दुरवस्थाके प्रति ज्ञात अथवा अज्ञात रूपसे एक प्रतिवर्त्तनकी भावना भी अवश्य छिपी है। इस तथ्यकी ओरसे हम अपनी आँख नहीं मूँद सकते।

एक बात और भी है। यद्यपि अपने निबंध "नारीर मूल्य"में शरत्‌ने बहुत ही विदग्धतापूर्ण ढंगसे नारीके महान् मूल्यका निर्धारण किया है, परंतु फिर भी नारीकी महत्ता वे उसके पुरुषसे संबंधमें ही आँकते हैं। उसके स्वतंत्र मूल्यका उन्होंने कहीं विवेचन नहीं किया है; और शायद इसी-लिए उनके अधिकांश उपन्यासोंका नामकरण उनके नायकोंके नामोंके आधार पर ही हुआ है। "चन्द्रनाथ", "काशीनाथ", "देवदास", "श्रीकान्त" एवं "विप्रदास"-जैसे उनके प्रमुख उपन्यास इस तथ्यका समर्थन करते हैं; और जिन रचनाओंका नामकरण नायिकाओंके नामोंपर हुआ है, उनमें भी नायकको भुला दिया गया हो, ऐसी बात नहीं है। "बिराजबहू"में ही, उपन्यासका शीर्षक तो है 'बिराजबहू', किन्तु फिर भी बिराजके माध्यमसे उसमें नीलांबरके चरित्रका ही अधिक अंकन हुआ है। इस प्रकार यह कहना कि शरत्‌ने अपनी कृतियोंमें नारीको आवश्यकतासे अधिक महत्ता प्रदान की है, बहुत संगत प्रतीत नहीं होता।

शरत्‌के नारी पात्रोंका सूक्ष्म अध्ययन लेखककी नारी संबंधी विशिष्ट धारणाओंका स्पष्ट परिचायक है। नारी एवं प्रेमको पर्याय माना जाता है। शरत्‌की नारियोंके प्रेममें सेक्सकी प्रधानता नहीं है। उनके पुरुष-पात्रों एवं नारी-पात्रोंके पारस्परिक संबंध सामान्य ऐन्द्रिकतासे रहित हैं। इसी लिए शरत्‌की कृतियोंमें स्नेहकी निर्मल मंदाकिनी बहती है, वासनाकी कलु-षित वैतरणी नहीं। अंग्रेजीके प्रसिद्ध उपन्यास "वदरिंग हाइट्स" में प्रदर्शित प्रेमकी व्याख्या करते हुए डेविड सेसिल नामक समालोचकने कहा है "...अपनी सारी गहराईमें कैथरीन (उपन्यासकी नायिका) का प्रेम सेक्सरहित है, उसमें ऐन्द्रिकताका ऐसा ही अभाव है, जैसा कि उस आक-र्षणमें जो लहरोंको चंद्रमाकी ओर खींचता है और लोहेको चुंबककी

ओर....'' हम कह सकते हैं कि शरत्की अधिकांश नारियोंका प्रेम प्रायः ऐसा ही है।

शरत्-द्वारा अक्षय एवं युग-युगांतरसे चले आनेवाले प्रेमको दी गई मान्यता भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। उनके पुरुष-पात्रों एवं नारी-पात्रोंके बीचका पारस्परिक आकर्षण अनिर्वचनीय है। न जाने कौन-सी शक्ति उन लोगोंको एक-दूसरेकी ओर खींचती है। कवि-कुल-गुरु कालिदासने ''अभिज्ञान शाकुंतलम्''में कहा है—

''रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकीभवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥''

अर्थात्—रम्य दृश्योंको देखकर या मधुर शब्दोंको सुनकर यदि कोई सुखी व्यक्ति भी उन्मना हो उठता है, तो इसका कारण यही समझना चाहिए कि उसे अपने पूर्व जन्मोंके स्नेह-संबंधोंकी-जो अचेतन मनमें स्थिर भावोंके रूपमें स्थित हैं—अनायास ही सुधि आ रही है।

पूर्व जन्मके इन्हीं स्नेह-संबंधोंके आधारपर शरत्की अधिकांश प्रेम-कथाओंकी सृष्टि हुई है; और शरत्के नारी-पात्रोंका तो निर्माण ही शायद स्नेह एवं ममताके परमाणुओंसे संभव हो सका है।

पति-भक्त नारी:—

शरत्के नारी-समाजकी दूसरी प्रमुख विशेषता है उसकी अटल पति-भक्ति। वस्तुतः उपन्यासकारके सभी प्रतिनिधि नारी-पात्रोंके संस्कार नितांत भारतीय हैं। यद्यपि एकनिष्ठ प्रेमके संबंधमें लेखक स्वयं ही बहुत अधिक निश्चित नहीं हो सका, फिर भी उसके नारी-पात्रोंके प्रेमकी पवित्रता-में किसी प्रकारका संदेह नहीं किया जा सकता। यहाँ हमें ''चरित्रहीन'' की किरणमयी एवं ''शेष प्रश्न''की कमलको अपवाद स्वरूप मानना होगा। इस तथ्यके समर्थनमें स्वयं शरत् बाबूकी स्वीकारोक्ति नीचे उद्धृत की जाती

है—"तुम्हारी यह बात मैं मानता हूँ ! अन्नदा दीदीके प्रति वास्तवमें मेरी भी आंतरिक श्रद्धा है ! मेरे जन्मगत संस्कार आखिर भारतीय ही हैं।" —(इलाचन्द्र जोशी : "साहित्य सर्जना"—पृष्ठ १४३) शरत्के नारी-पात्रोंकी सामान्य पट-भूमिकी विवेचना करते समय हमें यहाँ इस बातका भी स्पष्ट उल्लेख कर देना होगा कि उपन्यासकारके पुरुष-पात्रोंमें जितनी अधिक चरित्रकी विविधता द्रष्टव्य है, उतनी अधिक उनके नारी-पात्रोंमें नहीं, क्योंकि उनमें-से अधिकांशके व्यक्तित्व प्रायः मिलती-जुलती भाव-धाराओंसे अनुप्राणित हैं।

शरत्के नारी चरित्रोंके अंकनके संबंधमें प्रायः कहा जाता है कि उपन्यासकारने अपने पात्रोंको सदैव ही विपत्तिके अथाह सागरमें निमज्जित होते दिखाया है, जो कुछ अस्वाभाविक है। ऐसे आलोचकोंके अनुसार विपदापर विपदा पाठकको सहानुभूति निरपेक्ष बना देती है। इस संबंधमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जिस प्रकार जीवनके बाह्य क्षेत्रके पीड़नका चित्राधार होनेके कारण प्रेमचन्दका "गोदान" हिन्दीकी सिरमौर कृति बन गया है, उसी प्रकार मानसिक व्यथाओंका यथार्थ अंकन करनेके कारण शरत् सहृदय साहित्यिकोंके इतने निकटवर्ती हो गये हैं कि पाठक उनकी रचनाओंमें अपने आपको ही बोलता हुआ पाते हैं। वस्तुतः शरत्के जीवनदर्शनमें दुर्बलताका नाम नारी नहीं है, वरन् उनके अनुसार तो जो विपत्तियोंके सागरकी ऊँचीसे ऊँची लहरोंसे होड़ ले सके, वही सच्चे अर्थोंमें सहिष्णुताकी प्रतीक नारी कही जा सकती है।

पतित नारियोंको उच्च स्थान:—

इस स्थानपर शरत्के कृतित्व पर लगाये जानेवाले एक प्रसिद्ध आरोपपर भी कुछ विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा। प्रायः कहा जाता है कि अपनी रचनाओंमें शरत्ने पतित नारियोंको बहुत ऊँचा स्थान दिया है। "चरित्रहीन"की किरणमयी इसका ज्वलंत उदाहरण है। परंतु वास्तविक बात यह है कि उक्त आक्षेप दूरसे ही संगत प्रतीत होता है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो स्पष्ट जान पड़ेगा कि शरत्ने अपने जीवन-दर्शनमें नारीके

असत्-स्वरूपको कहीं भी प्रश्रय नहीं दिया है। उसके प्रति सहानुभूति भले ही प्रकट की हो। "चरित्रहीन"में किरणके प्रति सहानुभूति तो जाग्रत होती है, किन्तु उसके अनैतिक कार्योंके प्रति नहीं। उसकी व्यभिचार-बुद्धिके पीछे एक निश्चित सामाजिक कारण है, जिसे दूर कर देनेपर शायद एक सुधारककी दृष्टिमें उसका चरित्र इतना नीचे न गिरता। परंतु आगे चलकर "शेष प्रश्न"में तो एकनिष्ठ प्रेमको नितांत निराधार सिद्ध किया गया है। इसका समाधान सामाजिक न होकर पूर्णतः मनोवैज्ञानिक है। आशुबाबू कहते हैं—"स्रोतके खिंचावसे कौन कब पास आ जाता है और कौन कब दूर चला जाता है, इसका हिसाब कोई भी नहीं जानता।"

अस्तु, शरत्‌ने अपनी रचनाओंमें पापके प्रति कहीं भी सहानुभूति प्रकट नहीं की है। "चरित्रहीन"में प्रेमकी पवित्रताके ही कारण उपन्यासकारने सावित्रीको किरणमयीसे ऊँचा उठाया है। किरण यदि हमारी सहानुभूति जाग्रत करती है तो सावित्री हमारी श्रद्धा। किरण एवं सुरबालाकी तुलनाके समय भी सुरबाला ही हमें महिमामयी दिखाई देती है। सुरबालाके सुदृढ़ विश्वासके सम्मुख किरणको स्वयं झुकना पड़ता है, यह सत्‌की असत्‌पर विजय है। नारीका पतित स्वरूप शरत्‌की समवेदनाका विषय हो सकता है, आदरका नहीं।

शरत्‌का नारी-समाजः—

नारीके संबंधमें शरत्‌की कुछ विशिष्ट धारणाओंका संक्षिप्त परिचय देनेके बाद अब हम उपन्यासकारके नारी-समाजका एक वर्गीकरण प्रस्तुत कर रहे हैं। यह वर्गीकरण नितांत वैज्ञानिक एवं पूर्ण है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, फिर भी इससे यह जाननेमें अवश्य सहायता मिल सकेगी कि शरत्‌ने नारीको मूलतः किन-किन रूपोंमें देखा। वर्गीकरण इस प्रकार हैः—

१. **स्नेहमयी माताएँ**—जिनमें-से कुछ अधेड़ावस्थातक वैधव्य प्राप्त कर चुकी हैं।

२. **कठोर प्रकृति एवं कटुवाणीकी गृहिणियाँ।**

३. **सीधी-सरल प्रेमिकाएँ,** अविवाहित, विवाहित एवं विधवा, तीनों प्रकारकी।

४. **गहनतम रमणियाँ**—एकनिष्ठ प्रेमकी विरोधिनी।

५. **कर्कशा वृद्धाएँ।**

अब हम बहुत संक्षेपमें एक-एक वर्गकी अलग-अलग विवेचना करेंगे। पहले वर्गके नारी-पात्र अपनी प्रकृतिमें अत्यंत कोमल-सजल हैं। उनका शरीर साधारण हाड़-मांसका बना हुआ है, परंतु उनका व्यक्तित्व स्नेह एवं ममतासे निर्मित है। इस वर्गकी जननीका वात्सल्य केवल अपनी संतान तक ही सीमित न रहकर, किसी भी बालक-बालिकाके लिए उमड़ सकता है। परोपकार बुद्धिका भी उसमें पर्याप्त विकास हुआ है। "मेजदिदि"की हेमांगिनी, "परिणीता"की भुवनेश्वरी, "रामेर सुमति"की नारायणी एवं "विप्रदास"की दयामयी—जैसी रमणियाँ इसी वर्गसे संबंधित हैं। विधवा माताओंका स्नेह और भी सार्वजनिक एवं व्यापक हो जाता है। उनका हृदय उनके व्यक्तित्वकी अपेक्षा कहीं अधिक महिमामय है।

दूसरे वर्गके अंतर्गत आती हैं कठोर प्रकृति एवं कटु वाणीकी रमणियाँ। इनमें-से अधिकांशकी चारित्रिक संवेदना मूलतः स्वार्थपरक होती है। उनमें रागात्मक भावनाओंकी स्थिति तो अवश्य होती है, परंतु उनके इस रागका विस्तार बहुत ही सीमित रहता है। इसीलिए उनके जीवनमें कटुता और कठोरता घर कर जाती है। लोभ और क्रोध, ये दोनों ही मनोविकार उनके ऊपर आधिपत्य जमाये रहते हैं। इस वर्गकी सबसे विशिष्ट प्रतिनिधि "मेजदिदि"की कादंबिनी है।

तीसरे वर्गकी सीधी सरल प्रेमिकाएँ शरत्‌की कथाओंमें प्रमुख रूपसे अंकित होती रही हैं। भारतीय नारी-सुलभ गुणोंकी समष्टि होनेके कारण इनका अंकन प्रायः आदर्शवादके धरातलपर हुआ है। इनमें-से विवाहित रमणियाँ प्रायः पति-भक्त तथा शील और स्नेहकी प्रतिमा हैं, जैसे "बिराज-बहू"की बिराज। इनके अंदर प्रकृतिकी दृढ़ता निरपवाद रूपसे मिलती है। सरलता एवं सौहार्द्र इनकी चारित्रिक विशेषताएँ हैं। कुछ प्रेमिकाएँ ऐसी

भी हैं जो अल्प अवस्थामें ही वैधव्यका दुःख भोग रही हैं। इनका व्यक्तित्व ऊपरसे निर्विकार, उदासीन रहता है, परन्तु उनके हृदयकी रागात्मिका-वृत्ति मुक्त होनेके लिए छटपटाती रहती है। समाजका भय उन्हें पग-पगपर सताता है, इसीलिए उनका चरित्र कुछ असहाय-सा जान पड़ता है। इस वर्गका उदाहरण हमें "बड़ दिदि"की माधवीमें मिलता है। निर्मल एवं स्फटिक-सदृश प्रम इस वर्गकी सभी रमणियोंकी प्रमुख विशेषता है। उपर्युक्त वर्गकी ठीक दूसरी ओर ऐसी नारियोंका समाज है जिनका व्यक्तित्व नितांत गहन है। यह नारीवर्ग भी मूलतः प्रेमिकाओंका ही है, परन्तु ये प्रेमिकाएँ सीधी एवं सरल न होकर अपनी प्रकृतिमें अत्यंत जटिल हैं। प्राचीनके प्रति विरोध इनके चरित्रकी मूल संवेदना है। इनका चरित्र दृढ़ होते हुए भी अस्थिर, एवं अस्थिर होते हुए भी दृढ़ है। किस समय ये क्या कर डालेंगी, इसका कुछ भी पता पाठकको नहीं चल पाता। उनकी धमनियोंमें नया रक्त है, और ऐसा जान पड़ता है कि स्वयं उपन्यासकार भी उनके आवेगसे अभिभूत हो उठा है। इनकी नैतिक मान्यताएँ प्राचीन परम्परासे भिन्न, विद्रोहिणी प्रकृतिकी हैं। ऐसे नारी-पात्रोंमें किरणमयी एवं कमल सर्वप्रमुख हैं। "गृहदाह"की अचलाको भी इसी वर्गके अन्तर्गत रखा जा सकता है। पाँचवाँ तथा अंतिम वर्ग है उन वृद्धा कर्कश स्त्रियोंका जो सक्रिय जीवनसे अवकाश ग्रहण करके कलह-संग्राम एवं वाग्-युद्धके लिए सदैव तत्पर दिखाई देती हैं। इनकी बुद्धि रचनात्मक न होकर विनाशात्मक है। इनके मानसिक संस्थानमें रागात्मक वृत्तियोंका प्रायः अभाव और ईर्ष्या-द्वेषका साम्राज्य है। अकारण क्रोध एवं कलह उनके व्यक्तित्वकी विशेषता है। समाजका यह वर्ग पारिवारिक तथा सामाजिक सुख-शांति-के लिए कितना घातक है, इसे शरत् बाबू भली भाँति समझते थे। प्रकृतिमें कठोर एवं कटु होनेके साथ-साथ ये वृद्धाएँ अपनी वाणीमें भी कटु हैं। उनके वचनोंका विष सहन करनेके लिए उपन्यासकारने शिवशंकर सदृश जीवनका गरल पान करनेवाले, सहिष्णुता एवं धैर्यके प्रतीक पात्रोंका निर्माण किया है। अशिक्षाके वातावरणमें पले होनेके कारण ऐसी स्त्रियोंका

चरित्र और भी तीखा हो गया है। इस वर्गके प्रतिनिधि पात्रोंमें "रामेर सुमति"की दिगंबरी, 'अरक्षणीया'की स्वर्णमंजरी एवं 'पंडित मोशाइ'की बुढ़िया वैष्णवीकी गणना कर सकते है।

शरत्के नारी-पात्रोंके उपर्युक्त वर्गीकरणके संबंधमें एक बात कह देना आवश्यक है, और वह यह कि उपन्यासकारके ये नारीपात्र अपने-अपने वर्गों-का प्रतिनिधित्व करते हुए भी स्वयं अपने व्यक्तित्वमें अपूर्व हैं। वस्तुतः शरत्ने समान चरित्रोंका नहीं, वरन् समानांतर चरित्रोंका अंकन किया है। एक ही भाव-भूमिपर प्रतिष्ठित होते हुए भी दो पात्रोंका चारित्रिक वैशिष्ट्य सदैव द्रष्टव्य है। "रामेर सुमति"की नारायणी, "बिंदुर छेले"की बिंदो एवं "मेजदिदि"की हेमांगिनी, इन तीनोंके ही व्यक्तित्व एक मूल संवेदनासे अनु-प्राणित होनेपर भी अपने स्वरूपमें अलग-अलग हैं। शरत्के चरित्र-निर्माण-का यह कौशल वस्तुतः स्पृहणीय है।

विकासके तीन युगः—

शरत्के नारी-पात्रोंमें समानता न होते हुए भी उनके अंदर एक निश्चित विकासकी धारा स्पष्ट दिखाई देती है। उपन्यासकारने अपरिपक्वावस्थामें नारीको किस रूपमें देखा, फिर परिणत वयमें उसकी धारणाएँ किस प्रकार बदली, और अंतमें उन्होंने अपने जीवनकी गोधूलि-वेलामें, जब वे समाजके सारे उतार-चढ़ावसे परिचित हो चुके थे, नारीमें किस शांतिका अनुभव किया, इसका क्रमिक विकास उनकी रचनाओंमें भली-भाँति देखा जा सकता है। नारीके विकासकी दृष्टिसे शरत्के रचना-कालमें तीन युग माने जा सकते हैंः—

प्रथम युगः—बड़ दिदि—परिणीता
द्वितीय युगः—चरित्रहीन—शेष प्रश्न
तृतीय युगः—विप्रदास

अपनी रचनाओंके प्रथम युगमें शरत्ने नारीको अत्यंत सरल, सजल एवं स्नेहमय रूपमें देखा, प्राचीकी उषाके समान रंगीन एवं आकर्षक, परंतु

उनके बढ़ते हुए अनुभवने शीघ्र ही बता दिया कि नारीका स्वरूप वस्तुतः उतना कोमल तथा सीधा-सादा नहीं है, जितना वे समझते थे। इसीलिए उनकी रचनाओंके द्वितीय युगमें नारीका व्यक्तित्व बहुत रहस्यमय हो गया, उसके अन्दर कुछ कठोरताका समावेश हुआ। ऐसा जान पड़ता है कि इस समय उनके मनमें नारीके प्राच्य एवं पाश्चात्य रूपोंके बीच विजयके लिए संघर्ष चलता रहा, जिसकी चरम सीमा उनकी अमर कृति 'शेष प्रश्न'में पहुँच गई। इस कालकी नारी मध्याह्नके समान प्रखर एवं बुद्धिवादिनी है, किन्तु इसके उपरान्त तीसरे युगमें शरत् फिर अपनी प्राचीन भारतीय मान्यताओंकी ओर बढ़े और उन्होंने नारीको फिर वही प्राचीन श्रद्धा एवं महिमा दी, जिसका मोहक अंकन वे अपनी रचनाओंके प्रथम युगमें कर चुके थे। इस कालमें उन्होंने नारीका शान्तिप्रद रूप अंकित किया, जैसे प्राचीकी उषा अपने उन्हीं रंगोंके साथ आकर प्रतीचीकी संध्यामें कुछ अधिक गहरी, गंभीर एवं मौन हो जाय! जीवनकी इस गोधूलि-वेलामें लेखकने "विप्रदास"की दयामयी-जैसे चरित्रकी अवतारणा की, जो अनायास ही हमारे मनमें उस निष्काम भाव एवं शान्तिका संचार करता है, जो शारीरिक एवं मानसिक विकारोंसे भरे-पूरे उपन्यासमें किसी भी कलाकार-द्वारा मुश्किलसे अंकित हो पाता।

शरत्‌के नारी-चित्रणको लेकर उनके कृतित्वपर ही नहीं, उनके व्यक्तित्व पर भी कुछ गंभीर आरोप लगाये गये हैं। पतित स्त्रियों एवं वेश्याओंके प्रति उनकी सहानुभूति देखकर लोगोंने उनके आचरणको नैतिकतासे विहीन समझा। अपनी चर्चाको समाप्त करते हुए हम स्वयं इस संबंधमें कुछ न कहकर, स्वयं लेखककी अपने संबंधमें एक उक्ति उद्धृत करेंगे। अपने एक मित्रकी उक्त शंकाका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था:—"नारी जाति संबंधे आमार चरित्र कौन कालेउ उच्छृंखल छिल ना, एखनउ नय।"

अर्थात्, नारी जातिके संबंधमें हमारा चरित्र कभी उच्छृंखल न था, और न अब है।

परिशिष्ट—२

शरत्के अपेक्षाकृत गौण नारी-पात्र

शरच्चंद्रने अपने उपन्यासों तथा अपेक्षाकृत बड़ी कहानियोंमें नारी-चरित्रका जो सांगोपांग वर्णन किया है, उसका विश्लेषण हम प्रस्तुत पुस्तकके अध्यायोंमें उपस्थित कर चुके हैं। इस परिशिष्टके अंतर्गत हम कथाकारके उन नारी-चरित्रोंका विवेचन करेंगे जो उनकी अपेक्षाकृत गौण कथाकृतियोंमें मिलते हैं। इन नारी-चरित्रोंकी अभिव्यक्ति जीवनकी समग्रतामें न होकर उसके किसी अंग-विशेषमें हुई है। नारीके रूपकी वह विशदता जो शरत्के प्रमुख कथा-साहित्यमें अत्यंत सहज रूपसे मिलती है, उनकी इन लघु कहानियोंमें स्वभावतः ही नहीं है। इन संक्षिप्त कथा-कृतियोंका यह उद्देश्य भी नहीं है। इनके माध्यमसे तो कलाकारने नारी-जीवनकी कुछ झाँकियोंको हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है।

आलोच्य कथा-कृतियोंमें-से 'शुभदा'को छोड़कर, शेष रचनाओंको आकार तथा वर्णन-विशदता—दोनों ही दृष्टिकोणोंसे कहानी माना जायेगा। दो-एक कथा-कृतियोंको लघु-उपन्यास भी कहा जा सकता है। पुस्तकके प्रधान खंड तथा इस परिशिष्टको मिलाकर शरत्के संपूर्ण नारी-समाजकी व्याख्या हो जाती है। अवश्य ही शरच्चंद्रकी उन रचनाओंको हमने अपनी समीक्षामें सम्मिलित नहीं किया है, जिन्हें वे स्वयं पूरी नहीं कर सके थे।

इस परिशिष्टसे संबद्ध कथाकृतियोंको भी पूर्वयोजनानुसार समयानुक्रमणिकाके आधारपर ही क्रमबद्ध किया गया है। इन रचनाओंके संबंधमें संस्करण आदिकी सूचनाएँ नहीं दी गई हैं, क्योंकि विस्तृत विवेचन न होनेके

कारण इसकी आवश्यकता नहीं समझी गई। वैसे 'शुभदा'को छोड़कर, जो इंडियन प्रेस, प्रयागसे प्रकाशित हुई है, इस परिशिष्टसे संबद्ध शरत्‌की अन्य रचनाओंके संस्करण हिंदी ग्रंथ रत्नाकर, बंबई-द्वारा प्रकाशित प्रयुक्त किये गये हैं। इन रचनाओंके प्रथम प्रकाशन आदिकी सूचना पुस्तकके अंतमें दी हुई शरच्चंद्रके कथा-साहित्यकी समयानुक्रमणिकासे मिल सकती है।

१. मंदिर

इस कहानीमें एक धनिक जमींदारकी कन्या अपर्णा तथा उसके कुल-पुरोहितके लड़के शक्तिनाथकी हृदय-स्पर्शी प्रणय-कथा अंकित हुई है। शरत् बाबूकी इस प्रथम रचनासे ही स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने स्त्री-पुरुषके सतत् आकर्षणको चित्रित करनेमें उच्छृंखलताको कहीं भी नहीं आने दिया है। 'मंदिर' में अपर्णाका शक्तिनाथके प्रति प्रेम कहानीके अंतमें ही स्पष्ट रूपसे प्रकट होता है, जब वह मृत शक्तिनाथकी दी हुई स्नेह-भेंट-को देवताके चरणोंमें रखकर रोती हुई कहती है, 'भगवान्, मैं जिसे नहीं ले सकी, उसे तुम ले लो। अपने हाथोंसे मैंने कभी पूजा नहीं की, आज कर रही हूँ—तुम स्वीकार करो, तृप्त होओ, मेरे और कोई कामना नहीं है।'

विवाह हो जानेपर अपर्णा पतिके घर जाती है, पर वहाँ भी उसे शांति नहीं। पति-पत्नीके बीचमें एक अज्ञात अवरोध रहता है, जो दोनोंको समीप नहीं आने देता। अपर्णा अपनी सारी सरलता तथा सच्चरित्रताके बावजूद अपने पतिको स्वीकार नहीं कर पाती। और उनकी मृत्युके उपरांत वह अपने प्रथम-प्रिय शक्तिनाथका भी तिरस्कार कर देती है। अप्रकट प्रणयका अभिमान तीन जीवनोंको नष्ट कर देता है। इस सबसे अपर्णाके हृदयकी दुर्बलता तथा अव्यावहारिकता सिद्ध होती है। जीवनके व्यापक स्वरूपको स्वीकार कर पानेकी शक्ति उसमें नहीं है, और इसके लिए असीम दुःखका भार भी उसे उठाना पड़ता है।

२. काशीनाथ

इस अपेक्षाकृत लंबी कहानीकी नायिका है कमला। बड़े ज़मींदारकी एकमात्र पुत्री होनेके कारण वह बड़े लाड़-प्यारसे पाली गई है। उसका

विवाह एक ऐसे व्यक्तिसे हुआ है, जिसके मनमें संसारके प्रति आसक्तिसे अधिक अनासक्ति है। फलतः पति-पत्नी दोनोंके चाहते हुए भी उनका वैवाहिक जीवन सुखमय नहीं हो पाता। कमला सभी संभव प्रयत्नोंके बावजूद काशीनाथको अपनी ओर आकर्षित करनेमें असमर्थ रहती है। यह पराजय उसके मनमें विद्रोह तथा प्रतिशोधकी भावनाको जन्म देती है। उसका चरित्र इतना आदर्शात्मक नहीं है कि पतिसे प्रकट प्रणय न पाने पर भी वह मन ही मन उसकी पूजा करती रहे। एक बार विरुद्ध होनेपर वह सब प्रकारसे काशीनाथके मनको दुःख पहुँचानेका यत्न करती है। यहाँ तक कि शारीरिक यातनाका भी अंतमें षड्यंत्र कर डालती है। परंतु यहींसे पति-पत्नीके मनमें सुप्त प्रणय एकबारगी जाग उठता है। और यह दुर्घटना ही दोनोंको एक-दूसरेके समीप ले आती है।

कहानीमें नायककी मामीका उल्लेख हुआ है एक साधारण स्त्रीके रूपमें, और विंदुवासिनीका अंकन हुआ है काशीनाथकी स्नेहमयी ममेरी बहिनके रूपमें। कमला तथा काशीनाथको एक-दूसरेके समीप लानेमें विंदुवासिनीका बड़ा हाथ है।

३. बोझ

'बोझ' में दो प्रमुख नारी-पात्र हैं—सरला और नलिनी। सरलाका विवाह बहुत छोटी अवस्थामें सत्येन्द्रसे हो गया है। वह अपने पतिको हृदय-से चाहती है, और उसकी सभी छोटी-मोटी सुविधाओंका ध्यान रखती है। पतिके लिए उसका निश्छल प्रेम असीम है। परंतु इस सरल स्नेहका अंत बहुत शीघ्र हो जाता है। रोगाक्रांत होकर सरलाकी मृत्यु हो जाती है। और तब सत्येन्द्रका दूसरा विवाह होता है। नई बहूका नाम है नलिनी। पर वह सरलाकी यादसे पीड़ित रहता है। नलिनीको अपने पतिका भरपूर प्रेम नहीं मिल पाता। परंतु समय बीतनेपर अपने कठोर धैर्यके फलस्वरूप वह सत्येन्द्रके मनको जीत लेती है। पतिके मनको पहिचाननेकी शक्ति उसमें है। सहानुभूति तथा बुद्धिमत्ताकी भी उसके व्यक्तित्वमें कमी नहीं।

इस प्रकार कुल मिलाकर उसका चरित्र काफ़ी सशक्त है। परंतु इतने पर भी अपने अभिमानपर वह पूर्णतः विजय प्राप्त नहीं कर पाती, और यही उसकी असीम वेदना तथा अंततोगत्वा उसकी मृत्युका कारण बनता है। सत्येन्द्रका तीसरा विवाह होनेपर वह नव वधूको अपनी अँगूठी उपहार-स्वरूप भिजवाती है। यह उसकी व्यापक सहानुभूति तथा सहिष्णुताका प्रमाण है।

'बोझ' में कई अन्य नारी-पात्रोंका उल्लेख हुआ है। मातो नलिनीके मायकेकी नौकरानी है। जैसी वह स्नेहमय है, वैसी ही स्पष्ट-वक्ता भी। सत्येन्द्रकी माँ स्नेहमयी गृहिणी हैं; नलिनीके प्रति उनकी विशेष ममता है। गिरिबाला, राजबाला, नृत्यकाली तथा योगमाया गाँवकी लड़कियाँ हैं। दूसरोंकी चर्चा करनेमें उन्हें सुख मिलता है। रासमणि नाईकी लड़की है। अकारण चारित्रिक दोष देखने तथा उसे प्रचारित करनेमें उसका मन अधिक लगता है। विधु सत्येन्द्रकी तीसरी पत्नी है, परंतु कहानीमें केवल उसका नामोल्लेख भर मिलता है।

४. पथ-निर्देश

इस अपेक्षाकृत लंबी कहानीमें दो प्रधान नारी-पात्र हैं—सुलोचना और उसकी पुत्री हेम। सुलोचना विधवा है, तथा अपनी स्थिति-जन्य कठिनाइयोंको सहन करनेके लिए उसमें पर्याप्त धैर्य है। विरुद्ध परिस्थि-तियोंमें घबरा जानेवाला स्वभाव उसका नहीं है। उसके चरित्रमें मानवीय सहानुभूतिकी भी कमी नहीं है। अपने पड़ोसीके लड़के गुणेन्द्रकी माँ की मृत्यु हो जाने पर सुलोचनाने ही उसकी देख-भाल की है। अपने धार्मिक आचरणोंका सतर्कताके साथ पालन करते हुए भी वह दूसरोंके अन्यथा व्यवहारके प्रति असहिष्णु नहीं होती। परंतु यह धार्मिक कट्टरता केवल एक बार उसे धोखा देती है, और वह तब, जब कि अपनी पुत्री हेम तथा गुणेन्द्रका मूक स्नेह देखकर भी वह उन्हें विवाहके सूत्रमें बँधने नहीं देती। बादमें उसे इसका पश्चात्ताप भी होता है। मृत्यु-पर्यंत वह इस व्यथासे

मुक्त नहीं हो पाती। अपनी एक-मात्र पुत्रीको विधवा बनानेके लिए वह स्वयं उत्तरदायी है, इस बातको वह एक क्षणके लिए भी अपने मनसे नहीं निकाल पाती।

हेम इस कहानीकी नायिका है। स्वभावसे ही वह अभिमानिनी तथा दृढ़ है। माँके प्रति उसकी भक्ति असीम है, यद्यपि अपने विवाहके उपरांत वह सुलोचनाके लिए कुछ चिड़चिड़ी-सी रहने लगती है। गुणेन्द्रसे प्रेम करते हुए भी वह उससे विवाह नहीं करती, क्योंकि वह ब्रह्मसमाजी है, और इस प्रकारके विवाहमें उसकी माँकी सम्मति नहीं मिल पाती। समाजके मिथ्या बंधनों तथा गहरी मातृ-भक्तिकी भावनाने उसके संपूर्ण जीवनको दुःखमय बना दिया है। विधवा हो जानेपर, माँ की अप्रकट इच्छा रहते हुए भी, वह फिर गुणेन्द्रको स्वीकार नहीं कर पाती। उसकी इस विवशताके दो कारण हैं—एक तो उसका प्रच्छन्न आत्माभिमान तथा दूसरे सामाजिक रीति-नीतिके प्रति उसकी आस्था। वह अपने वैधव्यके दुःखको धार्मिक आचरणोंमें भुला देना चाहती है, परंतु इसमें भी उसे शांति नहीं मिलती। प्रणयकी गहरी व्यथाने उसके जीवनको अर्थ-हीन बना दिया है। अध्ययन-मननमें उसकी विशेष रुचि रही है, परंतु इसमें भी अब उसका मन नहीं लगता। मनोवेगों तथा परंपराओंके संघर्षमें उसका चरित्र उलझ गया है। उसका व्यक्तित्व नितांत अशक्त नहीं है, पर उसके अंदर वह निरपेक्ष दृढ़ता भी नहीं है, जो मिथ्या बंधनोंको सहज ही में तोड़ देती है। संस्कारोंने उसे इतना जकड़ लिया है कि बहुत यत्न करनेपर भी वह उनसे मुक्त नहीं हो पाती।

'पथ-निर्देश' की मानदाका चरित्र उन दासियोंके वर्गके अंतर्गत आता है, जो अपने स्वामीके घरमें एक पारिवारिक स्वजनका स्थान पा लेती हैं। वह अपने दायित्वको समझनेवाली, ईमानदार तथा बुद्धिमती है। गुणेन्द्र-की किसी मौसीके लड़के आदिका अत्याचार सहन करके भी वह अपने रुग्ण स्वामीको नहीं छोड़ती। हेमनलिनीके प्रति उसके मनमें विशेष ममता है।

गुणेन्द्रकी मौसी उन नितांत स्वार्थी परिजनोंमें-से हैं जो केवल धन के आधार पर अपन संबंधोंको निर्भर करते हैं। वे स्वाभाविक स्नेह तथा सहानुभूतिसे हीन हैं, तथा उनके व्यवहारमें केवल कृत्रिमता है।

५. प्रकाश और छाया [आलो औ छाया]

'पथ-निर्देश' तथा 'प्रकाश और छाया'की मूल कथामें कोई विशेष अंतर नहीं है। अपूर्ण प्रेमकी ही कहानी दोनोंमें है। 'प्रकाश और छाया' में दो प्रमुख नारी-पात्र हैं– सुरमा तथा प्रतुल। सुरमाका व्यक्तित्व काफ़ी गंभीर तथा ऊँचे स्तरका है। विधवा वैष्णवी होनेके कारण वह यज्ञदत्तसे प्रेम करती हुई भी उससे विवाह नहीं करती, और तब, जब कि स्वयं यज्ञदत्त उसे अपनी पत्नी बनानेके लिए बहुत इच्छुक हैं। परंतु इतनेपर भी इन दोनोंका प्रेम शब्दोंमें अभिव्यक्ति नहीं पाता। सुरमामें आत्म-त्यागकी भावना इतनी प्रबल है कि वह यज्ञदत्तका विवाह ज़िद करके प्रतुलके साथ करवा देती है, और इसके बाद भी यह उसकी हार्दिक इच्छा रहती है कि इन दोनोंका वैवाहिक जीवन सदैव सुखमय रहे। अंदरके उमड़ते हुए भावोंको वह सदैव नियंत्रित रखती है। संयम तथा निष्ठा उसके व्यक्तित्व में एकदम सहज हो गई है। यज्ञदत्त अपनी सगाई एक बार करके फिर उसे तोड़नेके लिए भी तत्पर हो उठता है, पर सुरमा उसे ऐसा नहीं करने देती। वह कहती है, "नहीं, सो नहीं हो सकता, दुखिया लड़कीको सुखी करना है, यह भी तो ज़रा सोचो; खासकर, वचन देकर मुकरोगे ?' सुरमाके अंदर एक ऐसी कृतज्ञताकी भावना है, जो उसे विकल नहीं होने देती। अपने अपूर्ण प्रेमके कारण उसका व्यक्तित्व असंतुलित नहीं हो पाता

प्रतुल यज्ञदत्तकी पत्नी है। उसका चरित्र इतना सीधा तथा सरल है कि यही उसकी एकमात्र विशेषता है। जीवनके अधिकांश व्यवहारोंसे अनभिज्ञ यह अबोध लड़की सबके प्रति अपनी आस्था रखती है। अभियोग की भाषा उसे आती ही नहीं। वह बहुत कम बोलती है और सदैव काम काजमें लगी रहती है। 'बैठा रहना उसने सीखा ही नहीं।' वह वस्तुत

इतनी अधिक निर्दोष तथा सरल है कि इस कहानीकी ट्रैजडीका अधिकांश दायित्व उसीके ऊपर आता है। यदि इतनी निरीह न होकर वह स्वयं भी अपने व्यक्तित्वको प्रकाशमें लानेकी चेष्टा करती तो यज्ञदत्तका, सुरमा-का तथा स्वयं उसका जीवन बहुत सुखमय हो सकता था।

'प्रकाश और छाया' में यज्ञदत्तकी बुआका बहुत साधारण उल्लेख हुआ है। उनका जितना चरित्र इस कहानीमें अंकित हुआ है, उससे उनके व्यक्तित्वकी किसी विशेषता पर प्रकाश नहीं पड़ता। वे केवल एक सीधी, सरल तथा स्नेहमयी स्त्रीके रूपमें दिखाई देती है।

६. अनुपमाका प्रेम [अनुपमार प्रेम]

अनेक प्रकारकी प्रेम-कथाओंको पढ़-पढ़कर एक नवयुवतीका मन किस प्रकार असंतुलित हो जाता है, इसका अत्यंत यथार्थ चित्रण इस कहानी-में हुआ है। अनुपमाके व्यक्तित्वमें भावनाओं तथा बौद्धिकताका उचित सामंजस्य नहीं हो सका है। जीवनके व्यावहारिक पक्षको वह बिलकुल नहीं समझ पाती है। प्रेमकी वेदना ही मानो उसका सर्वस्व है। 'वह समझती है कि मनुष्यके हृदयमें जितना प्रेम, जितनी माधुरी, जितनी शोभा, जितना सौंदर्य, जितनी तृषा है, सबको बीन-बीनकर इकट्ठा करके मैंने अपने मस्तिष्कके भीतर सहेजकर रख लिया है; मनुष्य-चरित्र और मनुष्य-स्वभाव मेरे लिए नख-दर्पण हो गया है।' इतने मिथ्या अभिमानके साथ अनुपमा जब जीवनकी गहराइयोंमें उतरती है तो उसे पता चलता है कि उसने कितनी बड़ी भूल की है। परंतु व्यक्तित्वमें दृढ़ता न होनेके कारण वह अपने आपको सुधार भी नहीं पाती। जीवनकी अनेक विषमताओंका सामना करनेका साहस न होनेके कारण केवल एक आत्महत्याका ही मार्ग उसके सम्मुख खुला रहता है। 'प्रेमकी जोगिन' बननेकी तीव्रतर भावनाने उसके जीवनको एकदम विशृंखल बना दिया है। सब ओरसे निरुपाय होकर वह प्राणांत करनेकी चेष्टा करती है, परन्तु ऐसा हो नहीं पाता। उसका एक बाल्य सहचर, जिसके प्रणय-निवेदनको वह कई बार ठुकरा चुकी थी, तालाबमें कूदकर उसे बाहर निकाल लाता है।

कहानीमें अनुपमाकी भाभीका चित्रण एक अत्यंत साधारण कोटिकी स्त्रीके रूपमें हुआ है। जबतक अनुपमाके माता-पिता जीवित हैं; तबतक वह उसके साथ बड़ा अच्छा व्यवहार करती है; परंतु उनकी मृत्युके बाद वह अपनी विधवा ननदको घरकी दासियोंसे भी नीचा समझने लगती है। अपने पति तथा बच्चोंको छोड़कर वह किसीको भी अपना नहीं समझती। सामान्य स्नेह तथा करुणासे एकदम विहीन होनेके साथ-साथ उसके व्यक्तित्वमें असहिष्णुता अधिक है। केवल स्वार्थ-सिद्धिमें लगे रहना ही उसके जीवनका परम उद्देश्य है।

अनुपमाकी माँ, सुरेशकी माँ तथा ललितकी माँ, इन तीनों गृहिणियोंका कहानीमें यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है। अपनी संतानके प्रति असीम स्नेह इनके चरित्रका मूल सूत्र है।

७. दर्पचूर्ण

'दर्पचूर्ण'में इंदुमती तथा विमला इन दो सखियोंका चरित्र अत्यंत स्वाभाविकताके साथ अंकित हुआ है। दोनोंका व्यक्तित्व एक दूसरेका विरोधी-सा है। इस कहानीमें पति-पत्नीके संबंधकी भारतीय तथा पाश्चात्त्य धारणाओंका तुलनात्मक अध्ययन हुआ है। इंदुमती पाश्चात्त्य सभ्यता तथा संस्कृतिकी अनुगामिनी है, विमला भारतीय परंपराओंको मानकर चलनेवाली है।

विदेशी संस्कृतिके सतही रूपको ही अपनाकर संतुष्ट हो जानेवाली नारियोंमें-से इंदुमती एक है। जातीय विशेषताओंका वह तिरस्कार कर चुकी है, और अपनी प्राचीन परंपराओंसे पूर्णतः मुक्त न हो पानेके कारण वह अंग्रेज़ी रीति-नीतिमें एकदम घुल-मिल भी नहीं सकी है। इन दो विचार-धाराओंके बीचमें उलझ जानेके कारण उसका जीवन निष्ठाहीन हो गया है। उसके व्यक्तित्वमें किसी गहरी आस्थाका अभाव है, और इसीलिए अपने जीवनमें वह संतोष अथवा शांतिका अनुभव नहीं कर पाती।

इंदुमतीका स्वभाव चिड़चिड़ा है। ज़रा-ज़रा-सी बातपर वह झुंझला उठती है। पति-भक्तिके भारतीय आदर्शसे उसे चिढ़ है; वह नारीके समान अधिकारोंका समर्थन करती है। अपने मिथ्या अभिमानके कारण ही उसका गार्हस्थ जीवन सुखमय नहीं हो पाता। पतिकी अनेकानेक चेष्टाओंके बावजूद वह उनसे असंतुष्ट ही रहती है। अपने नारीत्वके आदर्श-को वह ग़लत स्थानोंमें खोजती है। फलतः उसके जीवनमें सरसता, स्नेह तथा सामंजस्य नहीं है।

विमलाका चरित्र इसके काफ़ी विपरीत है। वह इंदुके पति नरेन्द्रकी ममेरी बहिन है। अपने भैया तथा भाभीके प्रति उसका अत्यंत गहरा स्नेह है; तथा पतिके लिए उसकी श्रद्धा अपरिसीम है। पति-प्रेमने उसके व्यक्तित्वको बहुत मधुर तथा सरस बना दिया है। उसके मनमें किसीके प्रति विरुद्धता नहीं, इसीलिए उसके जीवनमें एक संतुलन है। संसारसे असंतुष्ट न होकर, मानव-जीवनके प्रति कृतज्ञता उसके हर कार्यमें परि-लक्षित होती है। स्वभावसे मिष्टभाषिणी विमला कभी आवेशमय नहीं होती। ऐसा जान पड़ता है मानो जीवनके रहस्यको समझ पानेकी कुंजी उसे मिल गई है। इंदुकी तुलनामें तो उसका चरित्र और भी निखरा दिखाई देता है।

'दर्पचूर्ण'में अंबिका बाबूकी पत्नीको पार्श्व-चरित्रके रूपमें अंकित किया गया है। अपने रुग्ण पतिके प्रति उसकी अगाध भक्ति सचमुच सराहनीय है। अवस्था कम होने पर भी जीवनकी अनेकानेक कठिनाइयोंसे वह डरती नहीं। संघर्षोंमें पड़नेका आनंद कितना अधिक है, इसे वह भली भाँति जानती है। इसीलिए जीवनके प्रति अकृतज्ञता की भावना उसके व्यक्तित्व-में भी नहीं दिखाई देती।

८. अंधकारमें आलोक [आँधार आलो]

'अंधकारमें आलोक' एक नर्त्तकीकी असफल प्रणय-कथा है। इस कहानीमें दो प्रमुख नारी-पात्र हैं—बिजली बाई और राधा रानी। बिजली

बाई कलकत्तेकी प्रसिद्धवारांगना है, युवक सत्येन्द्रको उसने सारे अंतःकरण-मे चाहा है । राधा रानी सत्येन्द्रकी पत्नी है । इन दो नारियोंके पारस्परिक मनोभावोंको इस कहानीमें अत्यंत सूक्ष्मताके साथ अंकित किया गया है ।

बिजली बाईका व्यवसाय तो है नाचना-गाना, पर उच्चतम साहित्यिक कृतियोंसे उसे विशेष अनुराग है । इसीलिए वारांगना होते हुए भी उसकी रुचि काफ़ी परिष्कृत है । सत्येन्द्रके प्रति उसका अज्ञात प्रेम है । इस अज्ञात प्रेमकी खोजके कारण ही प्रेमके वशीभूत सत्येन्द्रको घरपर बुलाकर वह उसका अनादर करती है; परंतु इसके बाद जब दृढ़भक्त सत्येन्द्र कभी उसके पास नहीं जाता तो उसके रूपका गर्व चूर-चूर हो जाता है । उसका असफल प्रणय आत्मोत्सर्गमें परिणत होता है, और शेष जीवनके दिन वह अपने व्यवसायको छोड़कर सत्येन्द्रकी स्मृतिमें ही बिता देती है ।

राधारानी एक कोमलमना गृहस्थ नारी है । छोटी अवस्थामें ही वह अशेषगुणवती तथा अनुपम सौंदर्यकी स्वामिनी है । परंतु इसके कारण गर्वका प्रादुर्भाव उसके मनमें नहीं हो सका है । सहानुभूति तथा उदारता जैसी वृत्तियाँ ही उसके व्यक्तित्वमें अधिक सहज जान पड़ती है । अपने पतिकी पूर्व-प्रेयसी बिजली बाईका वह तिरस्कार नहीं करती, वरन् बड़ी बहिनके समान आदर देती है । सत्येन्द्र अपने घर बुलाकर उसका अपमान करना चाहता है, परंतु राधारानी उसे ऐसा करनेसे रोक देती है । इस प्रकार वह द्वेषके स्थानपर मानो सभीको स्नेह ही देना चाहती है ।

'अंधकारमें आलोक'में सत्येन्द्रकी विधवा माँका प्रारंभमें बहुत थोड़ा उल्लेख हुआ है । उनमें सहनशीलता तथा बुद्धिमत्ताकी कमी नहीं दिखाई देती । पतिकी मृत्युके उपरांत वे अपनी एकमात्र संतान तथा अपनी बहुत बड़ी ज़मींदारीकी देखभाल स्वयं करती हैं । और ऐसा लगता है कि उनके काममें कहीं कोई त्रुटि नहीं होती ।

९. वैकुंठका दान-पत्र [वैकुंठेर विल]

'वैकुंठका दान-पत्र' अपेक्षाकृत लंबी कहानी है । स्त्री पात्रोंके दृष्टिकोण-मे इसमें भवानीका चरित्र विशेष उल्लेख योग्य है । विनोद उसका सगा

पुत्र है, तथा गोकुल सौतेला, यद्यपि साधारणतः उसके व्यवहारसे इसके विपरीत ही सिद्ध होता है। स्नेहकी व्यापकताने उसके चरित्रको प्रभविष्णु बना दिया है। भवानीके चरित्रके अध्ययनके समय 'विप्रदास'की दयामयीका अनायास ही स्मरण हो आता है। इन दोनों चरित्रोंमें बहुत समानता है।

भवानीके व्यक्तित्वकी प्रमुख विशेषता है उसकी बुद्धिमत्ता तथा दूरदृष्टि। उसे धोखा दे सकना आसान काम नहीं है। परंतु उसकी बुद्धिमें कुटिलता बिलकुल नहीं है। किसीके प्रति विरुद्धताकी बात उसके मनमें आती ही नहीं। सब कुछ चुपचाप सुनते तथा सहन करते जाना ही मानो उसके जीवनका मूल-मंत्र है। बड़ी-से-बड़ी विपत्तिके समय भी उसका धैर्य अडिग रहता है। मितभाषिता, सहिष्णुता तथा स्नेहमयताने उसके व्यक्तित्वको महिमान्वित बना दिया है। शरत्के उन नारीपात्रोंमें भवानी-का प्रमुख स्थान है जो स्नेहकी संकीर्णताके सिद्धांतको असिद्ध करते हैं।

मनोरमा गोकुलकी पत्नी है। स्वार्थ-बुद्धिका विकास उसमें कुछ अधिक हुआ है। अपने परायेका भेद-भाव करना वह भलीभाँति जानती है। अविकसित बुद्धिके कारण वह अपना सही कर्त्तव्य निश्चित नहीं कर पाती। जीवनके छोटे-बड़े स्वार्थ ही उसके विविध व्यवहारोंके नियामक हैं। इस दृष्टिकोणसे उसका चरित्र औसत दर्जेका कहा जा सकता है।

घरकी दासी मुनुआकी माँ का कहानीमें जहाँ-तहाँ उल्लेख हुआ है। वह मजूमदार परिवारका आवश्यक अंग बन गई है। वैसे तो सामान्यतः ही उसका स्वभाव स्नेहमय है, परंतु विनोदको बचपनमें पालने-पोसनेके कारण उसके प्रति उसकी ममता अधिक है।

गोकुलकी बड़ी लड़की हेमांगिनी अपनी दादीके पास ही रहती है। इस संपर्कके कारण उसमें सरलता अधिक है; षड्यंत्रप्रियता उसके स्वभाव-में नहीं है। अन्यान्य बालकोंकी भाँति इधरकी बात उधर करना वह नहीं जानती।

१०. निष्कृति

'निष्कृति'की गणना शरत् बाबूकी उत्कृष्ट कहानियोंमें की जाती है। कलकत्तेके एक मध्यमवर्गीय परिवारकी तीन बहुओंका इसमें बड़ा सुंदर चित्रण हुआ है। सिद्धेश्वरी बड़ी बहू हैं, नयनतारा मँझली बहू तथा शैलजा सबसे छोटी बहू है। सिद्धेश्वरी तथा नयनताराके पति गिरीश तथा हरीश सहोदर भाई हैं; शैलजाका पति रमेश इन दोनोंका चचेरा भाई है।

इस कहानीकी मुख्य संवेदना शैलजाका ही चरित्र है। इसके द्वारा कथाकारने एक बार फिर सिद्ध किया है कि रक्त-संबंध स्नेहकी सीमाका निर्धारण नहीं करते। शैलजाके व्यक्तित्वमें अनुशासनकी भावना प्रधान है। उसका स्नेह सबके लिए समान है, परंतु वह उसका अपव्यय भी नहीं करती। सदैव घरके काम-काजमें लगे रहनेके कारण वह अनावश्यक रूपसे बातचीत करना पसंद नहीं करती। तीखे-से-तीखे व्यंगोंको वह चुपचाप सुन लेती है, परंतु जब वह बोलती है तो अत्यंत स्पष्ट तथा सीधे-सादे ढंगसे। छल-कपटकी बात उसे एकदम अप्रिय है। सहिष्णुताके साथ-साथ उसमें स्वाभिमान भी है। कुल मिलाकर उसके चरित्रमें एक ऐसा संतुलन तथा संयम है, जिससे कोई अप्रभावित नहीं रह सकता।

सिद्धेश्वरीको उनके असंतुलित स्नेहने कमज़ोर बना दिया है। अपने-आपमें भली होनेपर भी उनका व्यक्तित्व बहुत सशक्त नहीं है। बुद्धिका यथेष्ट विकास न होनेके कारण वह अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्यका निर्धारण उचित रूपसे नहीं कर पातीं। उनके चरित्रमें दृढ़ता नहीं है। दूसरेके बहकावेमें वे आसानीसे आ जाती हैं। परंतु फिर भी उनकी मौलिक सत्प्रवृत्तियाँ सदैव अक्षुण्ण रहती हैं। जान-बूझकर असत्‌के साथ वह समझौता नहीं कर सकतीं। यही उनके चरित्रकी बड़ी विशेषता है।

नयनताराके व्यवहार साधारण स्वार्थों-द्वारा परिचालित होते हैं। जीवनकी क्षुद्रताएँ उसके व्यक्तित्वमें आसानीसे प्रवेश पा गई हैं। कूट बुद्धिके आधिक्यके कारण वह सदैव अपने स्वार्थ-सिद्धिके जाल रचा करती

है। उसकी वाणी कटु तथा हृदय मलिन है। सबके ऊपर वह अपना ही प्रभुत्व चाहती है। इस संकीर्णताने उसके व्यक्तित्वको कुरूप बना दिया है।

नीला सिद्धेश्वरीकी पुत्री है, परंतु वह रहती अधिक शैलजाके पास ही है। उसकी 'छोटी चाची' ने उसके व्यक्तित्वको बहुत-कुछ ढाला है। इसीलिए उसे नयनताराका दुर्व्यवहार तथा षडयंत्रप्रियता जरा भी अच्छी नहीं लगती। शैलजाके ही गुण उसमें विकसित होते हुए दिखाई देते हैं। उसके सारे व्यवहारोंमें उसीकी शिक्षा प्रतिध्वनित जान पड़ती है।

११. स्वामी

'स्वामी' अठारह-उन्नीस वर्षीय युवती सौदामिनीकी आत्मकहानी है। प्रथम यौवनकी वंचना तथा लज्जाने उसके सारे व्यक्तित्वको जर्जर कर दिया है। प्रणयके उद्दाम वेगके सम्मुख वह अपनेको अशक्त पाती है। पश्चात्तापकी भावना उसमें अवश्य है, परंतु बाह्य हठने उसे पूर्णतः दबा रक्खा है। अपने मामाकी शिक्षा-दीक्षाके फलस्वरूप वह प्रारंभमें ईश्वरमें विश्वास नहीं करती। इस अनास्थाने उसकी बादकी लज्जाको और भी भयावह बना दिया है। अपरिपक्वावस्थाके अपरिपक्व प्रणयने उसके विवाहित जीवनमें चरम वेदना भर दी है। उसका व्यक्तित्व इतना सशक्त भी नहीं है कि वह सब कुछ अपने पतिके समक्ष स्वीकार करके अपनी सारी लज्जासे एकबारगी मुक्ति पा ले। नरेन्द्रके प्रति सौदामिनी किसी समय आकर्षित थी। यह प्रथम आकर्षण उसके तथा उसके पतिके बीचकी खाई बन गया है, जिसे उसकी सारी उदारताके बावजूद वह लाँघ नहीं पाती। उसके चरित्रमें प्रारंभसे लेकर अंततक एक ऐसी अवशता दिखाई देती है, जिसे हम साधारण तुलनाकी दृष्टिसे हार्डीकी टैसके साथ संबद्ध कर सकते हैं। उसके जीवन-क्रममें घटनाओंकी अनिवार्यता है। अपनी सारी 'ट्रैजडी'के लिए स्वयं उत्तरदायी होते हुए भी, सौदामिनी स्वयं अपनी नियतिका वरण कर सकती थी, ऐसा नहीं जान पड़ता। इसीलिए उसका चरित्र इतना सजल तथा सहानुभूतिका उद्रेक करनेवाला बन गया है।

सौदामिनीकी माँके चरित्रमें विशेष उल्लेखनीय कुछ भी नहीं है। बंगालकी नारीको अपनी पुत्रीके विवाहके लिए कितना चिंतित रहना पड़ता है, वे इसीका उदाहरण प्रस्तुत करती जान पड़ती हैं।

सौदामिनीकी सौतेली सास साधारण स्वार्थोकी स्त्री है। सामान्य गृह-कलहमें बहुत दक्ष होनेके साथ, अप्रिय आलोचनाएँ करना ही मानो उनके जीवनका एक-मात्र ध्येय है। इस कार्यमें उन्हें यथावसर अपनी छोटी बहूसे भी सहायता मिल जाती है। मुक्ता सौदामिनीके घरकी दासी है। कुटिल बुद्धिकी होते हुए भी उसमें भलाईका कुछ अंश शेष है। उसके व्यक्तित्वकी सद् प्रवृत्तियाँ एकदम ही नष्ट नहीं हो गई हैं। सौदामिनीको वह अपने मनमें बहुत चाहती है, इसमें कोई संदेह नहीं।

१२. एकादशी वैरागी

'एकादशी वैरागी'में एकादशीकी छोटी सौतेली बहिन गौरी ही एक-मात्र नारी-पात्र है। अत्यंत संक्षेपमें अंकित होनेपर भी उसका चरित्र काफ़ी प्रभावोत्पादक बन गया है। बुद्धिमत्ता तथा न्यायप्रियता उसके चरित्र-की प्रमुख विशेषताएँ हैं। अपनी संपूर्ण प्रवृत्तियोंमें वह मानो परम वैष्णव है। वेदनाने उसके व्यक्तित्वको अत्यंत सहिष्णु, कोमल तथा सहानुभूति-मय बना दिया है। सब ओरसे तिरस्कृत होनेपर भी उसके मनमें कटुताका प्रवेश नहीं हो सका है। अपने स्वच्छ आचरण तथा निश्छल व्यवहारसे वह मानो अपने प्रथम यौवनकी लज्जाको मिटा देना चाहती है। विधवा ब्राह्मणीके एकादशीके यहाँ जमा पाँच सौ रुपयोंको, जिसका कोई प्रमाण-पत्र अथवा साक्षी शेष नहीं है, वह तत्क्षण दिलवा देती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि लोभी, परंतु ईमानदार एकादशीके अपरिसीम स्नेह तथा विश्वासने गौरीके व्यक्तित्वको और भी स्निग्ध तथा कोमल बना दिया है।

१३. मुक़द्दमेका नतीजा [मामलार फल]

जहाँ शरच्चंद्रने नारीके प्रिया रूपको उसकी अनेक जटिलताओंमें चित्रित किया है, वहीं उन्होंने नारीके जननी रूपको भी उसकी सारी सरसता-

के साथ हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है। नारीका वात्सल्य 'सुमति', 'मँझली दीदी' तथा 'बिंदोका लल्ला' शीर्षक कहानियोंमें अत्यंत मनोवैज्ञानिक ढंग-से अभिव्यक्त हुआ है। कुछ-कुछ इसी वर्गकी कहानी है 'मुक़द्दमेका नतीजा'। चरित्र-चित्रण तथा रस-परिपाककी दृष्टिसे यह पहली तीन कहानियों-जैसी सफल चाहे भले ही न हो,परंतु अनेक प्रकारकी विरुद्धताओंके बीच भी नारी-का वात्सल्य किस प्रकार अक्षुण्ण रहता है, यह तथ्य इससे भलीभाँति प्रकट होता है।

'मुकद्दमेका नतीजा'में केवल दो नारीपात्र है—गंगामणि तथा उसकी देवरानी। इन दो में भी गंगामणिका ही चरित्र इस कहानीमें प्रधान है, उसकी देवरानी तो मात्र एक पार्श्वचरित्रके रूपमें आती है। गंगामणिका व्यक्तित्व नारायणी, हेमांगिनी अथवा बिंदोकी भाँति बहुत सरस तथा सुसंस्कृत नहीं है। वह समाजके अपेक्षाकृत निम्न वर्गका प्रतिनिधित्व करती है। उसकी वाणी कटु है, तथा स्वभावसे भी वह कलहप्रिय हैं। ज़रा-ज़रा-सी बातपर अपने देवर तथा देवरानीसे लड़ना उसका मानो नित्यकर्म है। परंतु इतने कर्कश व्यक्तित्वमें भी वात्सल्यका स्रोत प्रवाहित होता है, इस तथ्यसे शरत् बाबू भलीभाँति परिचित थे। चरित्रके इस उज्ज्वल पक्षको उभारना ही मानो उनके कलाकारका चरम उद्देश्य रहा है।

साधारणत: गंगामणिका चरित्र औसत दर्जेका या उससे भी कुछ नीचा ही है। बुराई करना, झूठ बोलना तथा कलहको प्रश्रय देना उसके व्यक्तित्व-के काफ़ी प्रमुख अंग हैं। क्षमा तथा दयाकी प्रवृत्तियोंके भी वह निकट नहीं है। इन सबके बावजूद उसके हृदय-तलमें वात्सल्यका भाव विकसित हो सका है। अपनी देवरानीके सौतेले पुत्र गयारामके प्रति उसके मनमें अपार ममता है, यद्यपि इस ममताकी अभिव्यक्ति भी उसके अपने व्यक्तित्व-के समान ही बहुत कुछ कर्कश तथा खुरदुरी है। गयारामकी खोजमें वह अपने पतिके क्रोधकी चिंता किये बिना ही चली जाती है। और जब उसके पति तथा भाई उसका पता लगाते-लगाते गंगारामकी झोंपड़ीतक पहुँचते है तो अत्यंत आश्चर्यचकित होकर वे देखते हैं कि गंगामणि पंखा कर रही

है और गयाराम खा रहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि शरत्की नारियों-का स्नेह प्राय: अप्रत्याशित स्थलोंपर अभिव्यक्त होता है। उनकी ममतामें भी संकीर्णता नहीं, व्यापकता है।

गंगामणिकी देवरानीका कहानीमें जहाँ-तहाँ उल्लेख भर है। स्वभाव-से वह स्वल्पभाषिणी है। दूसरोंकी बातोंमें उसे दिलचस्पी अधिक नहीं है। वैसे गयारामसे वह बहुत प्रसन्न नहीं है। अपने पति तथा बच्चेकी ही उसे चिंता रहती है। उसका व्यक्तित्व स्वकेन्द्रित अधिक जान पड़ता है।

१४. बिलासी

यह कहानी बहुत कुछ संस्मरणात्मक है। शीर्षक-चरित्रको लेकर ही इसकी रचना हुई है। प्रकृति तथा वातावरणके दृष्टिकोणसे बिलासीका चरित्र 'श्रीकांत' प्रथम पर्वकी अन्नदा जीजीसे कुछ-कुछ मिलता है। उसका वर्णन करता हुआ उपन्यासकार लिखता है, "यह उसी बूढ़े सँपेरेकी लड़की थी,—बिलासी। उसकी उमर अठारहकी थी या अट्ठाइस की,—कूत नहीं सका। परंतु, चेहरेकी तरफ़ देखते ही मालूम हो गया कि उमर चाहे जितनी भी हो, मेहनतके मारे और रातों जगते-जगते उसके शरीरमें अब कुछ रहा नहीं है। ठीक जैसे फूलदानीमें पानी दे-देकर जिलाये रखा हुआ बासी फूल हो। हाथसे ज़रा-सा छूते ही, ज़रा-सा हिलाते ही झर पड़ेगा।" श्रीकांतने भी प्रथम दर्शनके समय अन्नदा जीजीका वर्णन बहुत-कुछ ऐसा ही किया है।

अपने पति तथा प्रेमीके प्रति अटूट भक्ति बिलासीके चरित्रकी प्रमुख विशेषता है। अनेकानेक यातनाओंके बीच भी वह मृत्युंजयकी रोग शैय्याको नहीं छोड़ती। सुनसान बागमें अकेले रुग्ण पतिके साथ बराबर रहनेका साहस उसमें है। मृत्युंजयको देहावसानके उपरांत वह भी विष खाकर आत्महत्या कर लेती है। यह सतीत्वका आदर्श उसने किसी पोथीसे पढ़कर नहीं पाया, वरन् यह उसके मनकी सहज वृत्ति है। और इस तेजसे उसका सारा व्यक्तित्व अभिभूत है। उसके चरित्रमें एक ऐसी दीप्ति है, जो अनायास ही पाठकको प्रभावित कर लेती है।

१५. तसवीर [छवि]

'तसवीर'में मा-शोये नामक एक बर्मी नवयुवतीकी प्रणय-कथा है। बा-थिन नामक चित्रकारसे वह प्रेम करती है, परंतु उसका प्रणयास्पद अपने चित्रोंमें ही व्यस्त रहनेके कारण संभवत: उसकी आशाके अनुरूप उसका ध्यान नहीं रख पाता। बा-थिन स्वभावसे कुछ अन्यमनस्क प्रकृतिका व्यक्ति है। मा-शोयेमें इतना धैर्य नहीं है कि वह इस अन्यमनस्कताको बराबर सहन करती जाये। एक राजवंशकी पुत्री होनेके कारण संभवत: उसमें कुछ हठ अधिक है। प्रणयास्पदके प्रति आत्म-समर्पणकी भावनाके स्थानपर, उस-पर अधिकार रखनेकी भावना उसके मनमें अधिक प्रबल है। इस अधीरता-जन्य वेदनासे धीरे-धीरे उसका हृदय परिष्कृत हो जाता है, और तब उसका प्रेम पूर्ण हो पाता है।

मा-शोयेके व्यक्तित्वमें शील, नम्रता तथा अन्य सद्‌व्यवहारोंकी कमी नहीं है। वह मिष्टभाषिणी भी है। परंतु उसमें सहिष्णुताकी मात्रा बहुत कम है। यही कमी उसके चरित्रको बहुत ऊँचा नहीं उठने देती।

१६. महेश

करुण-रस-प्रधान इस कहानीकी सरसता बहुत कुछ अपनी है, परंतु इसमें स्त्री-पात्र लगभग नहीं हैं; ग़फ़ूरकी दस वर्षीया पुत्री अमीनाका चरि-त्रांकन अवश्य हुआ है, अत्यंत संक्षिप्त किंतु मार्मिक शैलीमें। पिताकी निर्धनता तथा सहिष्णुताने अमीनाको धैर्यकी प्रतिमूर्त्ति बना दिया है। इस छोटी-सी अवस्थामें ही उसने बहुत-से सामाजिक व्यवहार सीख लिये हैं। जैसी वह स्नेहमय है, वैसी ही कर्त्तव्य-परायण भी। अपने पिताके बैल महेशके प्रति उसकी ममता कम नहीं है, परंतु ग़फ़ूरकी तरह वह एकदम अव्यावहारिक भी नहीं है। वह यथासाध्य कम बोलती है, किंतु उसकी बातचीतमें बुद्धिमत्ता झलकती है। इतनी कम अवस्थामें बिना किसी साधन-के वह किसी प्रकार अपने पिताकी संक्षिप्त-सी गृहस्थी चलाती है। बचपनमें ही मानो वह वार्द्धक्यका अनुभव करने लगी है। उसकी इस अवशताको शरच्चंद्रने जिस ढंगसे अंकित किया है, वह सचमुच बहुत करुणोत्पादक है।

१७. अभागिनीका स्वर्ग [अभागीर स्वर्ग]

'महेश'की भाँति 'अभागिनीका स्वर्ग'भी दैन्य तथा विपन्नताकी कहानी है। पतिसे परित्यक्त अभागिनी अपनी एकमात्र संतान कंगालीके साथ किसी तरह्से अपने दिन काटती है। जितना ही उसे अपने पुत्रसे स्नेह है, उतनी ही उसे अपने पतिके लिए चिंता है। उसके जीवनकी एकमात्र साध यह रह गई है कि मृत्युके उपरांत उसका दाह-संस्कार विधिपूर्वक हो और उसका पति उसकी चितामें आग लगाये, परंतु यह नियतिका क्रूर व्यंग्य है कि अभागिनीके पति रसिकके आ जानेपर भी उसका शव जलाया नहीं जाता, गाड़ दिया जाता है।

कहानीमे अभागिनीके चरित्रपर विशेष बल नहीं दिया गया है। जहाँ तहाँ उसके व्यवहार तथा वार्तालापसे प्रकट होता है कि वह एक भली और कोमल हृदय स्त्री है। इतने दुःख-दैन्यमें दिन बितानेपर भी उसे किसीके प्रति शिकायत नहीं। अपनी नियतिको वह मौन रहकर स्वीकार करती है। अपेक्षाकृत असंस्कृत समाजसे संबद्ध होते हुए भी, उसका जीवन-क्रम असंस्कृत नहीं जान पड़ता।

१८. हरिलक्ष्मी

'हरिलक्ष्मी'में नारी-हृदयके मौलिक तत्त्व—कोमलता तथा सहानुभूतिका उद्‌घाटन अत्यंत मार्मिक ढंगसे हुआ है। कहानीमें दो प्रमुख नारी पात्र हैं—हरिलक्ष्मी तथा मँझली बहू। बुआजीको पार्श्व-चरित्र कहा जा सकता है। हरिलक्ष्मी एक समृद्ध तथा वयस्क ज़मींदारकी दूसरी पत्नी है। प्रकृतिकी वह बहुत सरल तथा कोमल है। गर्वकी भावना कभी उसके मनमें प्रवेश नहीं कर पाती। उसका हृदय किसीके भी दुःख-दैन्यको देखकर अपने आपको अपराधी समझने लगता है। अधिक वार्तालाप-प्रिय न होनेके कारण उसकी सहानुभूतिका समुद्र अंदर ही अंदर लहराता रहता है। साथ ही साथ उसके व्यक्तित्वमें कुछ ऐसी अवशता तथा निरीहता है कि वह इच्छा रहते हुए भी दूसरोंके प्रति किये जानेवाले अन्यायका प्रतिकार नहीं कर पाती। गहरी

सहानुभूति तथा कर्मगत अक्षमताने मिलकर उसके व्यक्तित्वको संवेदनशील होते हुए भी नितांत निरुपाय बना दिया है। इसीलिए सब प्रकारसे संपन्न होनेपर भी हरिलक्ष्मी सदैव पीड़ित दिखाई देती है। दूसरोंकी वेदनाने उसे जर्जर कर दिया है। उसका व्यक्तित्व भावनाओंका पुंजीभूत समूह होकर रह गया है, जिसमें इच्छा ही इच्छा है, शक्ति नहीं।

मँझली बहू हरिलक्ष्मीके रिश्तेमें लगनेवाले देवरकी पत्नी है। कमला-का जीवन केवल अभावोंकी एक करुण गाथा है, परंतु इन अभावोंके कारण उसके आत्म-सम्मानमें कहीं भी कमी नहीं आ सकी है। यहाँतक कि वह हरिलक्ष्मीकी सहायताको भी दृढ़तापूर्वक अस्वीकार कर देती है। उसके व्यक्तित्वकी शालीनता तथा सहिष्णुताने उसे महिमान्वित कर दिया है। आवश्यकतासे अधिक वह कभी बात नहीं करती। सारे कष्टोंको चुपचाप सहन करते जाना उसका स्वभाव बन गया है। वह सदैव किसी-न-किसी काम-काजमें लगी रहती है। जीवनके अविराम संघर्षमें थकना वह जानती ही नहीं। अकेले ही सारी विषमताओंके बीच चलते रहना उसकी नियति है। इसके बाद भी वह कुछ चाहती है, ऐसा नहीं जान पड़ता।

बुआजीका कहानीमें बहुत अधिक उल्लेख नहीं हुआ है। वार्तालाप तथा आचरणमें कृत्रिमताके साथ, उनके व्यक्तित्वमें कर्कशता भी है। उनकी वाचालता प्रायः परनिंदाका ही रूप लेती है। उनका दृष्टिकोण संकीर्ण तथा वाणी तिक्त है। कमलाके प्रति उनकी अप्रसन्नताकी कोई सीमा नहीं। उसे नीचा दिखानेका अवसर वे सदैव ही खोजती रहती है।

१६. अनुराधा

अपने कथा-साहित्यमें शरत् बाबूने स्थान-स्थानपर निश्छल स्नेहकी शक्ति तथा महिमाको अंकित किया है। 'अनुराधा' इसी वर्गकी कहानियों-में से एक है। पुरुषकी कटुता तथा विरुद्धताको नारीका स्नेह किस प्रकार बदल सकता है, यही इस कहानीकी संवेदना है।

बाईस-तेईस वर्षकी अविवाहित अनुराधा सब प्रकारके अभावोंके बीच किसी प्रकार जीवन व्यतीत कर रही है। अचानक एक दिन गाँवके ज़मींदार

विजय बाबूकी आज्ञा होती है कि वह उनका घर खाली करके अन्यत्र चली जाय। विजय स्वयं इस कार्यके लिए अनुराधाके पास जाता है। साथमें उसका लड़का कुमार है। कहानी यहींसे प्रारंभ होती है, परंतु उसका अंत होता है वहाँ, जहाँ विजय अपने मातृ-विहीन एकमात्र पुत्रको अनुराधाके संरक्षणमें छोड़कर वापस कलकत्ते आ जाता है, इस विचारके साथ कि कभी अवसर मिलनेपर वह अनुराधाको अपनी पत्नी बना सकेगा।

अनुराधाका चरित्र यद्यपि प्रियावर्गके ही अंतर्गत आता है, परंतु उसके आचरणसे स्पष्ट पता चलता है कि उसके व्यक्तित्वमें मातृत्वके तत्त्वोंका पूर्ण विकास हुआ है। विजयका पुत्र कुमार तो उसे अपनी माँके स्थानापन्न मान लेता है। ऐसा जान पड़ता है कि अनुराधाके अदम्य यौवनकी समस्त अपूर्ण वासनाएँ वात्सल्यके अप्रतिहत स्रोतमें एकदम विलीन हो गई हैं। अनुराधाका व्यवहार अत्यंत नम्र, शालीन तथा परिष्कृत है। उसका बातचीत करनेका ढंग प्रभावोत्पादक है। घोर विपन्नता भी उसके चरित्रको कहीं कटु नहीं बना सकी है। उसका भद्र आचरण सबके ऊपर है, जो विरुद्ध जनोंके हृदयको भी जीत लेता है। अत्यंत स्नेहमय होनेपर भी कोई उसके प्रति निकटताका अनुभव नहीं कर पाता। यह नम्र पार्थक्य उसकी व्यवहार-कुशलता द्वारा ही संभव है। उसके संपूर्ण व्यक्तित्वमें जो स्निग्धता है, वह नारीके प्रिया तथा जननी रूपोंके सम्मिलनमें ही प्रायः मिल पाती है। और आश्चर्यकी बात यह है कि वास्तविक अर्थमें न अनुराधा प्रिया ही है, और न जननी ही। स्नेहके अविरल प्रवाहने जहाँ उसके चरित्रको बहुत सरस तथा मधुर बनाया है, वहीं आचरणकी कठोरताने उसके मांसके विद्रोहको एकदम दबा दिया है। कुल मिलाकर उसका चरित्र बहुत संतुलित तथा मर्यादित है, और संभवतः शरत्‌के आदर्श नारीत्वके बहुत समीप है।

अनुराधाके ठीक विपरीत इस कहानीमें विजयकी भाभी प्रभाका चरित्रांकन हुआ है। उसके व्यक्तित्वमें कृत्रिमता तथा छिछलापन है। अंग्रेजी संस्कृतिके अंधानुकरणने उसके दृष्टिकोणको बहुत सतही बना दिया है। विना किसी आस्था तथा निष्ठाके उसका व्यक्तित्व एकदम खोखला हो

गया है। वह जिस वर्गकी नारी है, उसका मूल मंत्र स्वार्थ है। उच्च शिक्षा प्राप्त करनेपर भी उसके उद्देश्य ऊँचे नहीं हो पाते। शरत् बाबू इस प्रकारके पात्रोंको प्रायः अपने उपन्यासों तथा कहानियोंमें लाये हैं, और इस वर्गकी नारियोंका उन्होंने बड़े सजीव ढंगसे चित्रण किया है। प्रभा इसी श्रेणीका एक अत्यन्त संक्षिप्त चरित्र है।

२०. शुभदा

पूरे आकारका उपन्यास होनेपर भी 'शुभदा'को इस परिशिष्टमें सम्मिलित करनेका एक प्रधान कारण यह है कि इसे शरत् बाबूकी रचनाओंकी समयानुक्रमणिकामें ठीक-ठीक नहीं रखा जा सकता। उनकी मृत्युके उपरांत प्रकाशित होनेपर भी, यह उनकी प्रारंभिक कालकी रचना है। इसके लेखन-समयका निर्धारण ठीक-ठीक नहीं हो सका है। शरत्-साहित्यके गंभीर अन्वेषक तथा समीक्षक श्रीव्रजेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्यायके अनुसार तो यह 'चंद्रनाथ' तथा 'देवदास' से भी पहलेकी कृति है ('शरत्-परिचय' : पृष्ठ १०, पाद-टिप्पणी)। इसीलिए चरित्रांकनके दृष्टिकोणसे यह बहुत अपरिपक्व जान पड़ती है।

'शुभदा' में नारी-चरित्रोंकी संख्या कम नहीं है। पुरुष-पात्रोंकी अपेक्षा नारी-पात्र ही घटना-क्रममें अधिक प्रधान हैं; परंतु इनमें से एक भी चरित्र ऐसा नहीं है जो पूर्णतः विकसित हुआ हो। चरित्र-चित्रणके दृष्टिकोणसे वे सबके सब अप्रौढ़ हैं।

उपन्यासके कथानकमें शुभदा तथा उसकी दोनों पुत्रियों, ललना तथा छलनाका महत्त्वपूर्ण स्थान है। शेष कात्यायनी, रासमणि, विंदो, विंदोकी माता, कृष्णप्रिया तथा जयावती या तो पार्श्व-चरित्र हैं या स्थानीय चरित्र। शरत् बाबूका यह संभवतः अकेला उपन्यास है, जिसमें कोई भी नारी-चरित्र जीवंत नहीं बन सका है। इसका प्रधान कारण यह जान पड़ता है कि इसके किसी भी नारी पात्रकी कोई अपनी विशेष संवेदना नहीं है।

शुभदाको एक प्रकारसे इस कहानीकी नायिका माना जा सकता है। कठोर विषमताओंके बीच भी अपने आपको स्थिर बनाये रखना उसका स्वभाव

बन गया है। धैर्य, आत्म-त्याग तथा आत्म-सम्मान उसके व्यक्तित्वके प्रधान गुण हैं। विपत्तियोंने उसके साहसमें वृद्धि की है, कमी नहीं। संघर्ष ही मानो उसकी नियति बन गया है।

ललना तथा छलना, दोनोंने अपनी मातासे अधिकांश चारित्रिक गुण प्राप्त किये हैं। दोनोंके चरित्रमें दृढ़ता तथा साहसिकताका पूर्ण उन्मेष हुआ है। अपने परिवारके प्रति उनका मोह अपरिसीम है। दैन्य तथा विपन्नताने उनमें आत्मनिर्भरताका संचरण किया है। अपने जीवन-क्रमको निर्धारित करनेमें वे स्वयं समर्थ हो सकी हैं।

कात्यायनी एक ग्रामीण वेश्या है। किसी भी प्रकारके मूल्योंसे रहित उसका जीवन मायाचारमें ही बीतता है। किंतु शुभदाके पति हारानके प्रति उसकी सच्ची सहानुभूति है। घरके प्रति उसकी नितांत विमुखता कात्यायनीको ज़रा भी अच्छी नहीं लगती।

वृद्धा रासमणिका चरित्र उपन्यासमें कुछ अच्छा बन सका है। वाणीकी कटु होनेपर भी उसका हृदय बहुत निश्छल है। विंदो, विंदोकी माता तथा कृष्णप्रिया अपनेसे अधिक दूसरोंकी बातमें रुचि रखनेवाली स्त्रियाँ हैं। परनिंदामें उनका विशेष मन लगता है। जयावती वेश्या होनेपर भी स्वभाव की अच्छी है। उसके व्यक्तित्वमें सहानुभूति तथा उदारता है। उसकी माँका व्यक्तित्व ठीक इसके विपरीत है। वह कलह-प्रिय तथा कर्कशा है। किंतु अकारण ही वह भी किसीको कष्ट नहीं पहुँचाती। वह आसानीसे रुष्ट और उतनी ही आसानीसे प्रसन्न होनेवाली स्त्री है। उसके मनमें किसी प्रकारका स्थायी विद्वेष नहीं है।

परिशिष्ट--३

शरत्के नारी-पात्रोंकी सामाजिक पृष्ठभूमि

जिस युगमें शरच्चंद्र अपने उपन्यासों तथा कहानियोंका सृजन कर रहे थे वह युग बंगालके सामाजिक इतिहासमें अपना एक विशेष महत्त्व रखता है। कुछ तो राष्ट्रीय चेतनाकी जागृतिके फलस्वरूप और कुछ पाश्चात्त्य संस्कृतिके संक्रमणके फलस्वरूप, सुधार-आन्दोलनकी लहर इस प्रदेशके निवासियोंके ऊपर अपना काफ़ी गहरा रंग चढ़ा चुकी थी। ब्राह्मो समाजकी स्थापना हुए इतना समय हो गया था कि उसके नियमों तथा अनुशासनोंके अंदर भी रूढ़िका प्रवेश हो चला था। ब्राह्मो समाजके अतिरिक्त कई अन्य छोटे-मोटे सुधारवादी आन्दोलन भी अपनी जड़ जमानेके प्रयत्नमें थे, किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि तत्कालीन बंगाली समाजकी मान्यताओं तथा आचरणोंपर सबसे अधिक प्रभाव ब्राह्मो समाजका ही था। समाजका एक बड़ा वर्ग यद्यपि अभी अपने प्राचीन हिंदू धर्ममें ही बँधा हुआ था, फिर भी ब्राह्मो समाजके अनुयायियोंमें प्रभावशील तथा महत्त्वपूर्ण सदस्योंकी संख्या कम नहीं थी। जो भी हो, उस समय कलकत्तेमें ब्राह्मो समाजके आंदोलनके फलस्वरूप जातीय विभेदोंके विरोधमें आवाज़ उठाई जा रही थी, सती-प्रथाको बंद करनेका प्रयत्न किया जा रहा था तथा स्त्री-शिक्षाको प्रोत्साहन दिया जा रहा था। बंगालके गाँवोंको सुधारकी यह लहर अबतक भी बहुत प्रभावित न कर सकी थी।

ब्राह्मो समाजकी अधिकांश धाराएँ तत्कालीन नारी समाजसे संबद्ध थीं। स्वयं उसके संस्थापक राजा राममोहन राय स्त्री-सुधारके प्रबल समर्थक थे। बहु विवाह, बाल-विवाह तथा अनमेल विवाहका उन्होंने

विरोध किया था; विधवा-विवाह तथा स्त्री-शिक्षाके वे हामी थे, तथा पर्दा-प्रथा और सती-प्रथाको भी समूल उखाड़ फेंकनेका उन्होंने यत्न किया था। बहुत-सी कुरीतियोंका मूल कारण कुलीनताकी भावना थी। राजा राममोहन रायने इन विभेदक तत्त्वोंकी भी बहुत निंदा की थी। इस प्रकार उनके प्रयत्नोंके फलस्वरूप लोग तत्कालीन बंगालकी नारीकी दुरवस्थाको तो कम-से-कम पहचान ही सके थे। उसे दूर करनेकी बहुत-सी चेष्टाएँ सफल भी हुई, इसमें कोई संदेह नहीं।

शरत्‌चंद्रने जिस समय लिखना प्रारंभ किया था, उस समयतक सुधारवादी आंदोलनके कुछ-कुछ शुभ प्रभाव तो परिलच्छित होते थे, परंतु उसकी तीव्रता बहुत कुछ नष्ट हो चुकी थी। गाँवोंमें सुधारका संदेश पहले भी नहीं पहुँचा था, इसलिए वहाँकी दशा तो बहुत ही गिरी हुई थी। कलकत्तेमें भी सुधारकी प्रत्येक लहरके साथ अनिवार्य रूपसे आनेवाला कठमुल्लापन प्रवेश पा चुका था। इस प्रकार कुल मिला-जुलाकर एक महान् सुधारकको जन्म देनेकी तैयारियाँ फिरसे पूर्ण हो गई थीं। परंतु इस बारका सुधारक अपने पूर्वागतोंकी परंपरामें न था। सुधारके लिए उसने अधिक मनोवैज्ञानिक साधनोंको अपनाया। अपने उपन्यासों तथा कहानियोंमें उसने बंगालका इतना यथार्थ चित्र उपस्थित किया कि उसे पढ़कर लोग स्वयं ही सुधारके लिए आकुल हो उठे।

अशिक्षित होना एक बड़ा अभिशाप है जो सदाके लिए दृष्टिको अवरुद्ध कर देता है। बंगालके तत्कालीन नारी समाजके साथ भी ठीक यही बात हुई। अपनी पुस्तक 'वुमेन ऑफ बंगाल'में श्रीमती मार्गरेट एम० उरक्वार्ट लिखती हैं, "यद्यपि लड़कियोंकी शिक्षामें लोगोंकी अभिरुचि है, परंतु अभीतक इसे कार्य रूपमें परिणत करनेका यत्न नहीं किया गया; यहाँतक कि शिक्षाका जो प्रबंध उपलब्ध भी है उसका भी उपयोग नहीं किया जाता।" जैसा कि लेखिकाने आगे स्वयं बताया है, यह शिक्षाका अभाव बहुधा बालविवाहके कारण है। बहुत कम अवस्थामें ही लोग लड़कियोंका विवाह करनेके लिए यत्नशील रहते थे, और इसके परिणाम-स्वरूप उनकी शिक्षा

प्राय: नहींके बराबर होती थी। इस शिक्षाके अभावके कारण अंधविश्वासों तथा रूढ़ियोंका प्रवेश बहुत आसानीसे समझा जा सकता है।

सामाजिक संतुलन बिगड़ जानेके कारण कन्याके विवाहमें काफ़ी अधिक दहेज़ दिया और लिया जाने लगा था। यह इसीका फल था कि उस समयके बंगालमें पुत्रीका जन्म प्राय: एक शोचनीय घटना हो गई थी। इसी-के साथ-साथ कुलीनताकी प्रथा भी जुड़ी हुई थी। क्योंकि लड़कीका विवाह एक बहुत ही सीमित वर्गमें किया जा सकता था, इसलिए उपयुक्त वरका मिलना प्राय: असंभव हो गया था। इन दोनों प्रथाओंका सम्मिलित परि-णाम यह हुआ कि बाल-विवाह तथा बहु-विवाह अधिकाधिक संख्यामें होने लगे। बहु-विवाहके अंतर्गत प्राय: अनमेल विवाह भी होते थे। पचास-पचपनके बुड्ढेका विवाह तेरह-चौदह वर्षकी लड़कीसे हो जाना एक साधारण बात थी।

बहुत छोटी अवस्थामें विवाह कर देनेका एक धार्मिक कारण भी था। श्रीमती उरक्वार्टके अनुसार, "लड़कीकी अपने पिताके घर रहनेकी अवधि यथासंभव संक्षिप्त की जाती थी.....माता-पिताका यह पुनीत कर्त्तव्य माना जाता है कि वे लड़कीको अपने संरक्षणसे उसी अवस्थामें दान कर दें जब कि उसका कौमार्य नितांत असंदिग्ध है। प्रचलित परंपराओंके अनुसार आठ वर्षकी आयु बहुत पवित्र मानी जाती है, क्योंकि साधारण विश्वासोंके अनुसार इसी अवस्थामें शिवकी पत्नी गौरीका विवाह हुआ था।" इसी भावनाके कारण बाल-विवाह सामान्य धर्मका एक अंग माना जाता था। एक निश्चित अवस्थातक विवाह न कर देनेके दंड-स्वरूप लड़कीके पिताको जातिसे बहिष्कृत कर दिया जाता था। अत: वंश-मर्यादा तथा कुलीनताकी रक्षाके लिए अधिकांश पिता लड़कीके सुख-दुखकी ज़रा भी चिंता किये बिना उसका विवाह बहुत कम अवस्थामें ही कर दिया करते थे। इसके फलस्वरूप जब कभी अनमेल विवाह होते थे तो प्राय: १८–२० वर्षकी आयु-तक पहुँचते-पहुँचते अधिकांश सधवाएँ विधवा हो जाती थीं। प्रथम यौवनमें ही विधवा हो जाना बहुतोंकी नियति बन गया था; और क्योंकि

विधवा-विवाह एकदम निषिद्ध था, इसलिए विधवाओंकी एक बड़ी संख्या समाजके लिए एक विकट समस्या बन गई थी। विधवाओंकी दुर्दशाका वर्णन उस युगके सामाजिक इतिहासमें स्थान-स्थानपर मिलता है।

यदि ध्यानसे देखा जाये तो उपर्युक्त सभी समस्याएँ एक-दूसरेके साथ अनिवार्य रूपसे संबद्ध जान पड़ती हैं। उस युगका पूरा सामाजिक ढाँचा ही ऐसा था कि उसमें नारी-जातिकी समस्याओंका उचित ढंगसे पर्यवेक्षण नहीं हो पाता था। अपने धर्म तथा विश्वासोंको समाज काफ़ी अंशोंमें विकृत कर चुका था और बाहरकी सभ्यता तथा संस्कृतिको वह अग्राह्य समझता था। ऐसी स्थितिमें अधिक दुर्भाग्यका भागी स्त्री जातिको ही बनना पड़ा। जबरन सती करानेकी प्रथा जिस युगमें प्रचलित थी, उस युगमें नैतिक मान्यताओंका कितना अधिक विघटन हो चुका था, यह स्पष्ट ही है।

शरत्च्चंद्र तथा उनके कुछ पूर्वके समयमें पारिवारिक जीवनमें भी बहुत अव्यवस्था आ गई थी। सम्मिलित परिवारकी प्रथा अकाट्य थी। पिता-पितामहके जीवन-कालमें ही लड़केका अलग रहने लगना एक अकल्प्य बात थी। इसका परिणाम यह हुआ कि पारिवारिक जीवनमें सुख-सुविधाके स्थानपर कलह, असंतोष तथा वैरने अपना स्थान बना लिया। स्त्रियोंकी सहिष्णुताका अनुचित लाभ उठाया गया, परंतु जब उसकी भी सीमाका अतिक्रमण हो गया तो फिर ऐसी व्यवस्थामें नित नई दुरभिसंधियोंके अतिरिक्त और फिर चारा ही क्या रहा? गृह-कलह प्रायः ही स्थायी वैमनस्य तथा वैरका रूप धारण कर लेता था। और इस प्रकार सम्मिलित परिवार तबतक अलग नहीं होता था, जबतक कि उसके सदस्योंका पारस्परिक कलह तथा असंतोष अपनी चरम सीमातक न पहुँच जाये।

धर्ममें जड़ निष्ठा संभवतः पुरुषोंसे अधिक स्त्रियोंका गुण होता है। तत्कालीन बंगालमें धर्मका यह मिथ्या आचरण इतना अधिक बढ़ गया था कि उसकी मूल आत्मा लगभग नष्ट हो चुकी थी। परंपरासे चले आनेवाले आचारोंका बिना उनका रहस्य समझे हुए पालन करना धार्मिक जीवनका एकमात्र चिह्न था। इन मिथ्या आचारोंमें अशिक्षाके कारण स्त्रियोंकी

ही आस्था अधिक थी। समय व्यतीत करनेका कोई अन्य साधन न होनेके कारण वे या तो कलह और परनिंदामें रत रहती थीं, या फिर इस धार्मिक कर्मकांडको करते रहनेमें ही उनका समय जाता था। स्पष्ट है कि इन दोनों ही प्रकारके कार्योंमें वृद्धाओंको अवसर अपेक्षाकृत अधिक रहता था।

धर्मके रूपमें इस प्रकारकी विकृतियाँ आनेपर अंधविश्वासोंका अधिकाधिक संख्यामें प्रचलित होना एक स्वाभाविक परिणाम है। इन रूढ़ियों तथा अंधविश्वासोंसे समाजका बौद्धिक स्तर एकदम जर्जर हो उठता है। धर्मकी प्रथम मान्यता सहिष्णुताका विघटन भी इसीके फलस्वरूप होता है। ऐसे समयमें नैतिक मूल्य तथा मर्यादाएँ भी धीमे-धीमे लुप्त होने लगती हैं, और एक प्रकारसे समाजमें गत्यवरोधकी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। शरच्चंद्रके समयमें यह गत्यवरोध बहुत कुछ अपना रूप स्पष्ट कर चुका था, और उनका कलाकार मन इससे अत्यंत विक्षुब्ध हो उठा था। इसीलिए शरत्‌में सर्वत्र एक रूमानी भावना दिखाई पड़नेके बावजूद, उनमें 'सोशल कंटेंट'का कहीं अभाव नहीं दिखाई देता।

शरच्चंद्रके समयके समाजका जो एक संक्षिप्त चित्र ऊपर प्रस्तुत किया गया है, उससे यह जान पड़ सकता है कि तत्कालीन समाज पतनके निम्नतम स्तरोंतक पहुँच चुका था। परंतु बात ठीक ऐसी ही नहीं है। उचित संदर्भमें अध्ययन करनेसे स्पष्ट हो जायगा कि १९ वीं शताब्दीके उत्तर भारतमें कुछ अंतरोंके साथ लगभग सर्वत्र ही ऐसी स्थिति थी। बंगालमें कुछ विशेष कारणोंसे स्त्री जातिकी दुर्दशा अवश्य ही कुछ अधिक थी। इसके अतिरिक्त आंग्ल संस्कृतिके साथ सर्वप्रथम संपर्क पानेके कारण, वहाँ संस्कृति-संघर्ष भी कुछ अधिक तीव्र हो उठा था। शेष उत्तर भारतमें इस संस्कृति-संघर्षके आनेतक वहाँके निवासी इससे भलीभाँति परिचित हो चुके थे। बंगालकी नारियोंकी दुरवस्थाको देखकर तत्कालीन बहुत-से कलाकारोंने उसके विरुद्ध आवाज़ उठाई, परंतु शरच्चंद्रका विद्रोह सबसे अधिक सशक्त, तर्कपूर्ण तथा प्रभावोत्पादक था। अपने समाजकी कुरीतियोंका जहाँ उन्होंने चित्रण

किया, वहीं वे उसकी अमिट आस्था तथा मर्यादाका भी अंकन करते रहे। इस संबंधमें उनका दृष्टिकोण कभी निराशावादी नहीं रहा।

स्त्री-समाजकी वकालत शरच्चंद्रने नितांत बौद्धिक स्तरपर की है। उनका निबंध 'नारीका मूल्य' उनके गहन अध्ययन, चिंतन तथा संवेदन-शीलताका सूचक है। भलेको बुरेसे अलग करना वे भलीभाँति जानते थे। प्राचीन तथा नवीनमें जहाँ भी जो कुछ अच्छा तथा शुभ है, वह उनके लिए ग्राह्य है। इसी सिद्धांतका प्रतिपादन उन्होंने अपने साहित्यमें किया है—निबंधोंमें एक ढंगसे तथा उपन्यासों और कहानियोंमें दूसरे ढंगसे। उनकी कलाका चरम उद्देश्य पतितको सहानुभूति देना तथा उसे ऊपर उठाना रहा है। उनके समाजमें जितना ही अधिक मूल्योंका विघटन हुआ था, उसी अनुपातसे उनकी कलामें निखार आया है। बंगालके नारी-समाजके लिए शरच्चंद्रने जो भी कुछ किया, उसका सही-सही मूल्यांकन आनेवाले युगके सामाजिक इतिहासकार ही कर सकेंगे। जिस कार्यको बड़े-से-बड़े सुधारक भी एक साथ मिलकर नहीं कर पाये, उस कार्यको शरत्‌की कलाने मानो अनायास ही संपन्न कर दिया। इस दृष्टिकोणसे, बंगालके नारी-समाजको मुक्ति (Emancipation) दिलानेका श्रेय बहुत कुछ शरच्चंद्रको दिया जा सकता है।

———

शरच्चंद्रकी रचनाओंकी समयानुक्रमणिका

[इस तालिकामें दिये गये वर्ष बँगला समयके अनुसार हैं । साधारणतः बंगाब्दमें ५९३ जोड़नेसे ईसवी सन्की संख्या प्राप्त होती है । शरच्चंद्रकी अधिकांश रचनाओंका प्रथम प्रकाशन तत्कालीन बंगाली पत्र-पत्रिकाओंमें हुआ था । अतः उनका वास्तविक रचनाकाल उनके प्रथम प्रकाशन-कालके कुछ ही पूर्व माना जा सकता है ।]

वर्ष	रचना	पत्रिका तथा मास
१३०९	मंदिर	....
१३१४	बड़दिदि [बड़ी बहिन]	'भारती' : वैशाख-आषाढ़
१३१९	रामेर सुमति [सुमति]	'यमुना' : फाल्गुन-चैत्र
	काशीनाथ	'साहित्य' : फाल्गुन-चैत्र
	बोझ	'यमुना' : कार्त्तिक-पौष
	बाल्यस्मृति	'साहित्य' : माघ
१३२०	चंद्रनाथ	'यमुना' : वैशाख-आश्विन
	बिंदुर छेले [बिन्दोका लल्ला]	'यमुना' : श्रावण
	विराजबहू	'भारतवर्ष' : पौष-माघ
	पथ-निर्देश	'यमुना' : वैशाख
	परिणीता	'यमुना' : फाल्गुन
	आलो औ छाया	'यमुना' : आषाढ़-भाद्र
	अनुपमार प्रेम	'साहित्य' : चैत्र
	चरित्रहीन [आंशिक]	'यमुना' : कार्त्तिक-चैत्र (एवं १३२१ में)

वर्ष	रचना	पत्रिका तथा मास
१३२१	पंडित मौशाइ [पंडित जी]	'भारतवर्ष' : वैशाख-श्रावण
	निष्कृति [आंशिक]	'यमुना' : वैशाख
	मेजदिदि [मझली वहन]	'भारतवर्ष' : कार्त्तिक
	दर्पचूर्ण	'भारतवर्ष' : माघ
	आँधार आलो	'भारतवर्ष' : भाद्र
	हरिचरण	'साहित्य' : आषाढ़
१३२२	पल्ली समाज [ग्रामीण समाज]	'भारतवर्ष' : आश्विन, अग्रहायण-पौष
	श्रीकांत—प्रथम पर्व	'भारतवर्ष': माघ-चैत्र (एवं वैशाख-माघ १३२३
१३२३	वैकुंठेर विल	'भारतवर्ष' : ज्येष्ठ-श्रावण
	अरक्षणीया	'भारतवर्ष' : आश्विन
	देवदास	'भारतवर्ष' : चैत्र (एवं वैशाख-आपाढ़ १३२३
१३२३	निष्कृति [समाप्त]	'भारतवर्ष' : भाद्र, कार्त्तिक, पौष
	गृहदाह	'भारतवर्ष' : माघ-चैत्र (एवं वैशाख-आश्विन आग्रहायण-फाल्गुन १३२४; पौष-चैत्र १३२४; आषाढ़-आग्रहायण, पौष-माघ) ।

१३२४	स्वामी	'नारायण' : श्रावण-भाद्र
	एकादशी वैरागी	'भारतवर्ष' : कार्त्तिक
	दत्ता	'भारतवर्ष : पौष-चैत्र (एवं वैशाख-भाद्र १३२५)
	श्रीकांत-द्वितीय पर्व	'भारतवर्ष' : आषाढ़-भाद्र, आग्रहायण-चैत्र (एवं वैशाख-आषाढ़, भाद्र-आश्विन १३२५)
१३२५	मामलार फल	'पार्वती' : आश्विन
	विलासी	'भारती' : वैशाख
१३२६	छवि	'आगमनी' : पूजा वार्षिकी
१३२७	वामुनेर मेये [ब्राह्मणकी बेटी]	आश्विन
	देना पावना [लेन-देन]	'भारतवर्ष' : आषाढ़-आश्विन, पौष, चैत्र (एवं ज्येष्ठ, श्रावण, कार्त्तिक, चैत्र १३२८; वैशाख-श्रावण, आश्विन-कार्तिक, माघ-चैत्र १३२९; वैशाख, आषाढ़-श्रावण १३३०)
	श्रीकांत-तृतीय पर्व [आंशिक]	'भारतवर्ष' : पौष-फाल्गुन (एवं वैशाख, आषाढ़, भाद्र-आश्विन, पौष १३२८)

१३२९	महेश	'वंगवाणी' : आश्विन
	अभागीर स्वर्ग	'वंगवाणी' : माघ
	पथेर दावी [पथ के दावेदार]	'वंगवाणी' : फाल्गुन-चैत्र (एवं वैशाख-आषाढ़ भाद्र, आग्रहायण-फाल्गुन १३३० ज्येष्ठ, आश्विन-कार्त्तिक, पौष-माघ १३३१; ; वैशाख ज्येष्ठ-भाद्र, कार्त्तिक, फाल्गुन १३३२; वैशाख १३३३)
१३३०	नारीर मूल्य [पुस्तकाकार]	(चैत्र, वैशाख-आषाढ़, भाद्र-आश्विन १३२० की 'यमुना' में श्रीमती अनिलादेवीके नामसे प्रकाशित)
	नवविधान	'भारतवर्ष' : माघ-फाल्गुन (एवं वैशाख, आषाढ़, आश्विन-कार्त्तिक १३३१)
१३३२	हरिलक्ष्मी	'वसुमती' : शारदीया
	परेश	'शरतेर फूले' : भाद्र
१३३४	षोड़शी [पुस्तकाकार]	श्रावण
	शेष प्रश्न (पत्रिका में प्रकाशित अंश पुस्तकाकार उपन्यास से कुछ भिन्न है।)	'भारतवर्ष' : श्रावण-कार्त्तिक, माघ-चैत्र (एवं ज्येष्ठ-श्रावण, कार्त्तिक, पौष, फाल्गुन १३३५; वैशाख, श्रावण, कार्त्तिक, पौष, फाल्गुन, चैत्र, १३३६; चैत्र १३३७; वैशाख १३३८)
	सती	'वंगवाणी' : आषाढ़

१३३५	रमा [पुस्तकाकार]	श्रावण
	तरुणेर विद्रोह	(१८ अप्रैल १९२९ ई०)
१३३८	श्रीकांत-चतुर्थ पर्व	'विचित्रा' : फाल्गुन-चैत्र (एवं वैशाख-माघ १३३९)
१३३९	स्वदेश और साहित्य	भाद्र
	विप्रदास	'विचित्रा' : फाल्गुन-चैत्र (एवं वैशाख-आषाढ़, आश्विन, फाल्गुन १३४०; वैशाख, श्रावण-भाद्र, कार्त्तिक-माघ १३४१ इसके पूर्व १० परिच्छेद तक १३३६-३८ की 'वेणु' में प्रकाशित,
१३४०	अनुराधा	'भारतवर्ष' : चैत्र
१३४२	विराजबहू [नाटक-पुस्तकाकार]	श्रावण
	विजया [नाटक-पुस्तकाकार]	पौष
१३४५	शुभदा	ज्येष्ठ (शरत् बाबूकी मृत्युके उपरांत प्रकाशित, यद्यपि इस उपन्यासका अधिकांश लेखकके रचनाकालके प्रारंभिक भागमें लिखा गया था।)

[उपर्युक्त सामग्री श्री व्रजेन्द्रनाथ वंद्योपाध्याय लिखित 'शरत्-साहित्य-परिचय' पौष, माघ, फाल्गुन १३५२ की 'शनिवारेर चिठि' से ली गई है। बादमें इस सामग्रीका समावेश वंद्योपाध्यायजी की 'शरत्-परिचय' शीर्षक पुस्तकमें भी किया गया है। 'शरत्-साहित्य-संग्रह' के अबतक प्रकाशित भागोंके परिशिष्टमें दी हुई प्रथम प्रकाशनकी भी तिथियाँ लगभग यही हैं।]

प्रस्तुत ग्रन्थमें प्रयुक्त शरच्चंद्रके हिन्दी संस्करणोंका परिचय

नाम	अनुवादक	सन्	प्रकाशक
१. बड़ी बहिन (शरत्-साहित्य १०)	—रामचंद्र वर्मा	१९५० ई० :	हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई
२. सुमति (शरत्-साहित्य १)	—धन्यकुमार जैन	१९४९ ई० :	हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई
३. चंद्रनाथ (शरत्-साहित्य ३)	—रामचंद्र वर्मा	१९४३ ई० :	हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई
४. बिंदो का लल्ला (शरत्-साहित्य ८)	—धन्यकुमार जैन	१९४७ ई० :	हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई
५. विराज बहू	—ठाकुरदत्त मिश्र	१९४५ ई० :	किताब महल, इलाहाबाद
६. परिणीता (शरत्-साहित्य १२)	—धन्यकुमार जैन	१९४६ ई० :	हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई
७. चरित्रहीन	—कार्त्तिकेय चरण मुखोपाध्याय	१९५० ई० :	हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता
८. पंडितजी (शरत्-साहित्य ११)	—रामचंद्र वर्मा	१९४६ ई० :	हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई
९. मँझली बहिन (शरत्-साहित्य ११)	—रामचंद्र वर्मा	१९४६ ई० :	हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई
१०. ग्रामीण समाज (शरत्-साहित्य १९)	—रामचंद्र वर्मा	१९४७ ई० :	हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई
११. अरक्षणीया (सरस्वती सिरीज़ ६५)	—रूपनारायण पांडेय		इंडियन प्रेस, इलाहाबाद

१२. श्रीकांत प्रथम पर्व (शरत्-साहित्य ४) —हेमचंद्र मोदी १९४७ ई० : हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई

श्रीकांत द्वितीय पर्व (शरत्-साहित्य ६) —हेमचंद्र मोदी १९४६ ई० : हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई

श्रीकांत तृतीय पर्व (शरत्-साहित्य ७) —धन्यकुमार जैन १९५० ई० : हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई

श्रीकांत चतुर्थ पर्व (शरत्-साहित्य २२) —कमल जोशी १९४९ ई० : हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई

१३. देवदास (शरत्-साहित्य १०) —रामचंद्र वर्मा १९५० ई० : हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई

१४. दत्ता (शरत्-साहित्य १८) —सुंदरलाल त्रिपाठी १९४७ ई० : हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई

१५. गृहदाह (शरत्-साहित्य १६-१७) —धन्यकुमार जैन १९४८ ई० : हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई

१६. ब्राह्मण की बेटी (शरत्-साहित्य ५) —धन्यकुमार जैन १९४० ई० : हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई

१७. लेन-देन —हरिदास शास्त्री तथा गोपालचंद्र वेदांत शास्त्री १९४० ई० : इंडियन प्रेस, इलाहाबाद

१८. पथ के दावेदार (अधिकार)
(शरत्साहित्य १३–१४) —धन्यकुमार जैन १९४६ ई० : हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई

१९. नवविधान (सरस्वती सिरीज़) इंडियन प्रेस, इलाहाबाद

२०. शेष प्रश्न —कमलाप्रसादराय शर्मा, बी० ए० १९४९ ई० : साहित्य-सेवक-कार्यालय, बनारस

२१. विप्रदास —कमलाप्रसादराय शर्मा, बी० ए० १९४७ ई० : साहित्य-सेवक-कार्यालय, बनारस

——:००:——

सहायक पुस्तकें

अंग्रेजी—

१. उरुखार्ट, मार्गरेट एम० वुमेन ऑफ़ बेंगाल १९२७ ई० : एसोशिएसन प्रेस, कलकत्ता
२. मदान, इंद्रनाथ शरत्‌चंद्र चटर्जी—हिज़ माइंड एंड आर्ट १९४४ ई० : मिनर्वा पब्लिशर्स, लाहौर
३. मित्रा, शिशिरकुमार : कल्चरल फ़ेलोशिप ऑफ़ बेंगाल १९४६ ई० : कल्चर पब्लिशर्स, कलकत्ता
४. सेनगुप्त, एस० सी० शरत्‌चंद्र :—मैन एंड आर्टिस्ट १९४५ ई० : सरस्वती लाइब्रेरी, कलकत्ता
५. हुमायूँ कबीर शरत्‌चंद्र चटर्जी पद्मा पब्लिकेशन, बंबई

बंगाली—

१. कन्हाईलाल घोष : शरत्‌चंद्र १३५७ (बँगला वर्ष) : कन्हाई लाल घोष, ८१, शिमला स्ट्रीट, कलकत्ता
२. व्रजेन्द्रनाथ वंद्योपाध्याय : शरत् परिचय १३५७ (बँगला वर्ष) : रंजन पब्लिशिंग हाउस, कलकत्ता
३. शैलेश विशी : विप्लवी शरत्‌चंद्रेर जीवन प्रश्न ज्योति प्रकाशालय, कलकत्ता
४. श्रीकुमार वंद्योपाध्याय : बँगला उपन्यास १३५४ (बँगला वर्ष) : विश्वभारती ग्रंथालय, कलकत्ता
५. श्रीकुमार वंद्योपाध्याय : वंग साहित्य उपन्यासेर धारा १९४८ ई० : मॉडर्न बुक एजेंसी, कलकत्ता
६. सुबोधचंद्र सेनगुप्त : शरत्‌चंद्र १३५६ (बँगला वर्ष) : ए० मुखर्जी एंड कंपनी लिमिटेड, कलकत्ता
७. सुरेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय : शरत् परिचय ओरिएंटल बुक कंपनी, कलकत्ता

हिन्दी—

१. गुप्त, मन्मथनाथ : शरच्चंद्र किताब महल, इलाहाबाद
२. जोशी, इलाचंद्र : शरच्चंद्र—व्यक्ति और कलाकार १९५४ ई० : अशोक प्रेस, पटना
३. मदान, इंद्रनाथ : शरत्‌चंद्र—चिंतन व कला हिंदी भवन, इलाहाबाद
४. शरत्‌चंद्र चट्टोपाध्याय : नारी का मूल्य १९४६ ई० : हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई
५. शरत्‌चंद्र चट्टोपाध्याय : —शरत् निबंधावली १९५४ ई० : हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई
६. शरत्‌चंद्र चट्टोपाध्याय : —शरत् पत्रावली १९५२ ई० : हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई

अनुक्रमणिका

प्रत्येक नारी पात्रके नामके आगे उस कहानी अथवा उपन्यासका नाम दिया गया है, जिसमें उस पात्रविशेषका अंकन हुआ है अनुक्रमणिकामें दिये हुए अंक पृष्ठ-संख्याके सूचक हैं।

[अ]

अंबिका बाबूकी पत्नी (**दर्पचूर्ण**) ३१७

अघोरमयी (**चरित्रहीन**) ६०, ६१, ७३,

अचला (**गृहदाह**) २२, ५१, ५७, १४१, १५०-१६८, ३०६

अन्नदा (**विप्रदास**) २८५, २९७

अन्नदा (**श्रीकांत**) ४७, १०८, ११६-११८, १२०, १२२, १२३, १६२, ३०३, ३२४

अन्नपूर्णा (**बिंदोका लल्ला**) ३५-३९, ४१, ४८

अनुपमा (**अनुपमाका प्रेम**) ३१५, ३१६

अनुपमाकी भाभी (**अनुपमाका प्रेम**) ३१६

अनुपमाकी माँ (**अनुपमाका प्रेम**) ३१६

अनुराधा (**अनुराधा**) ३२७, ३२८

अपर्णा (**मंदिर**) ३१०

अपूर्वकी माँ (**पथके दावेदार**) १९६, १९७, २०६, २१५, २१६

अभया (**श्रीकांत**) ६०, १०८, १११, ११७-११३, १७४, १८७, २११, २३५

अभागिनी (**अभागिनीका स्वर्ग**)

अमीना (**महेश**) ३२५, ३२६

अलका (**लेन-देन**) देखो षोड़शी

[इ]

इंदुमती (**दर्पचूर्ण**) ३१६, ३१७

[उ]

उमा (**नवविधान**) २१८, २३२

उषा (**नवविधान**) २१७-२३२

[ए]

एलोकेशी (**बिंदोका लल्ला**) ३६-३८, ४०, ४८, १०२

[क]

कमल (**शेष प्रश्न**) २२, ४७, ४८, ५५, ६०, ६१, ६३, ११९, १२३, १६३, १७४, १८१, १८७, १९३, २११, २१२, २३३-२७२, २७६-२२८, २८९, ३०२, ३०६

कमललता (**श्रीकांत**) १०८,१०९, ११२, १२३-१२५
कमला (**काशीनाथ**) ३१०, ३११
कमला (**हरिलक्ष्मी**) ३२६, ३२७
करुणामयी (**पथके दावेदार**) देखो अपूर्वकी माँ
कल्याणी (**विप्रदास**) २८५, २९५, २९६, २९८,२९९
कृष्णप्रिया (**शुभदा**) ३२९, ३३०
कात्यायनी (**शुभदा**) ३२९, ३३०
कादंबिनी (**मझली बहिन**) ८४, ९०, ३०५
कामिनी (**चरित्रहीन**) ६०, ६८,७४
कामिनीकी माँ (**ग्रामीण समाज**) ९६
कालीतारा (**ब्राह्मणकी बेटी**) १६९, १७२, १८०, १८१
काशीनाथकी माँई (**काशीनाथ**) ३११
किरणमयी (**चरित्रहीन**)४७, ५८-७०, ७२-७५, ८१, ११९, १२१, १२३, १७४, १८७, २११, २३५, २८०, ३०२, ३०४, ३०६
कुंजकी सास (**पंडितजी**) ८३,३०७
कुशारी पत्नी (**श्रीकांत**) १०९, ११४, १२७
कुसुम (**पंडितजी**) ७६-८३

[ग]

गंगामणि (**मुकद्दमेका नतीजा**) ३२३, ३२४
गंगामणिकी देवरानी (**मुकद्दमेका नतीजा**) २३३, ३२४
गिरिबाला (**बोझ**) ३१२
गुणेन्द्रकी मौसी (**पथ-निर्देश**) ३१३, ३१४
गौरी (**एकादशी वैरागी**) ३२२

[च]

चंद्रमुखी (**देवदास**) १२९, १३६-१४०
चक्रवर्त्ती गृहिणी (**श्रीकांत**) १०९, ११२, १२७
चारुबालाकी माँ—मनोरमा (**परिणीता**) ५७

[छ]

छलना (**शुभदा**) ३२९, ३३०
छोटी बहू (**अरक्षणीया**) १०२, १०३
जगततारिणी (**चरित्रहीन**) ६०, ७३
जगद्धात्री (**ब्राह्मणकी बेटी**) १७१-१७४, १७७-१८०
जयावती (**शुभदा**) ३२९, ३३०
जलदबाला (**देवदास**) १३४, १४०

[ट]

टगर (**श्रीकांत**) १०९, १२६

[द]

दयामयी (**विप्रदास**) ४६, ४८,

८२, २८५, २८६, २८८, २९५, २८९, २९१, २९२, २९४, २९७-२९९, ३०५, ३०८, ३१९
दिगंबरी (**सुमति**) २५-२७, ३१, ३२, ४०, १०२, १७८, ३०७
दुर्गा (**अरक्षणीया**) ९७-९९, १०१-१०५
देवदासकी भाभी (**देवदास**) १४०
देवदासकी माँ (**देवदास**) १२९, १३२, १४०

[न]

नयनतारा (**निष्कृति**) ३२०, ३२१
नरिनी (**दत्ता**) १४२, १४५, १४८-१५०
नलिनी (**बोझ**) ३११, ३१२
नवतारा (**पथके दावेदार**) १९६, १९७, २०३, २११ २१५
नृत्यकाली (**बोझ**) ३१२
नारायणी (**सुमति**) ३३-२८, ४०, ८२, ८४, ३०५, ३०७, ३२३
नीला (**निष्कृति** ३२१
नीलिमा (**शेष प्रश्न**) २३४-२३५, २३७, २५५, २६२, २६३, २७४-२८०

[प]

पद्मा (**श्रीकांत**) १०९, १२७
प्रकृति (**विप्रदास**) २८६, २९९
अतुल (**प्रकाश और छाया**) ३१४, ३१५
प्रभा (**अनुराधा**) ३२८, ३२९
पार्वती (**देवदास**) १२९, १३०-१३६, १३८-१४०
पारोकी दादी (**देवदास**) १२९, १४०
पारोकी माँ (**देवदास**) १२९, १४०
पुटी (**विराज बहू**) ४३, ४५, ४८, ४९
पुटूं (**श्रीकांत**)–१०९, १२६, १२७
प्यारी (**श्रीकांत**) देखो राजलक्ष्मी

[ब]

बर्मी स्त्री (**श्रीकांत**) १०९, १२७
बिंदु (**बिंदोका लल्ला**) २७, ३५-४१, ८४, ३०७, ३२३
बिलासी (**बिलासी**) ३२४
बुआजी (**गृहदाह**) १५३, १६८
बुआजी (**हरिलक्ष्मी**) ३२७
बुआजी (**श्रीकांत**) १०९, १२७
बिजली बाई (**अंधकारमें आलोक**) ३१७, ३१८
बेला (**शेष प्रश्न**) २३५, २७५, २७६, २७८-२८२
बैरिस्टर पत्नी (**विप्रदास**) २८६, २९९

[भ]

भवानी (**वैकुंठका दान-पत्र**) ३१८, ३१९
भामिनी (**अरक्षणीया**) १०३, १०४

भारती (**पथके दावेदार**) १९६-२११, २१३-२१६, २९१
भारतीकी महरी (**पथके दावेदार**) १९७, २१६
भुवनेश्वरी (**परिणीता**) ५२, ५६, ५७, ८२, ३०५
भैरव आचार्यकी पत्नी (**ग्रामीण समाज**) ९६
भैरव आचार्यकी पुत्री (**ग्रामीण समाज**) ९६

[म]

मणिशंकरकी पत्नी (**चंद्रनाथ**) ३३
मनोरमा (**देवदास**) ४८, १३२, १३६, १४०
मनोरमा (**वैकुंठका दान-पत्र**) ३१९
मनोरमा (**शेष प्रश्न**) २३३-२३६, २४४, २५१, २५१, २६९-२७४
महेश्वरी (**चरित्रहीन**) ५९, ६०, ७४
मातो (**बोझ**) ३१२
माधवी (**बड़ी बहिन**) १९-२३, ६१, ९१, १३०,३०६
मानदा (**पथ-निर्देश**) ३१३
मालती (**श्रीकांत**) १०९, १२७
मालिनी (**शेष प्रश्न**) २३५, २८२
मा-शोये (**तसवीर**) ३२५
मुक्ता (**स्वामी**) ३२२
मनुआकी माँ (**वैकुंठका दान-पत्र**) ३१९
मोहिनी (**विराज बहू**) ४६, ४८, ४९
मृणाल (**गृहदाह**) १५२, १४३, १५६, १५७, १५९, १६०, १६४-१६८, १९३
मैत्रेयी (**विप्रदास**) २८६,२९७,२९८

[य]

यशोदा (**देवदास**) १३४, १४०
यज्ञदत्तकी बुआ (**प्रकाश और छाया**) ३१५
योगमाया (**बोझ**) ३१२

[र]

रमा (**ग्रामीण समाज**) ९२-९५,१८२
रमाकी मौसी (**ग्रामीण समाज**) ९५
राजबाला (**बोझ**) ३१२
राजलक्ष्मी (**श्रीकांत**) १०८-११८, १२०, १२२, १२६
राधारानी (**अंधकारमें आलोक**) ३१७, ३१८
रायगृहिणी (**बड़ी बहिन**) २३,२४, २७, ४०
रासमणि (**बोझ**) ३१२
रासमणि (**शुभदा**) ३२९, ३३०

रासी ब्राह्मनी (**ब्राह्मणकी बेटी**) १७२, १७३, १७६-१७८
राक्षसी (**गृहदाह**) देखो वीणापाणि

[ल]

ललना (**शुभदा**) ३२९, ३३०
ललितकी माँ (**अनुपमाका प्रेम**) ३१६
ललिता (**परिणीता**) ५१-५७, ६१, ८१, ९९, १३०, १४२, १४९
ललिताकी माँई (**परिणीता**) ५७

[व]

वंदना (**विप्रदास**) ४८, २८३-२९८
वंदनाकी मौसी (**विप्रदास**) २८३, २८६-२८८, २९०,२९८, २९९
विंदुवासिनी (**काशीनाथ**) ३११
विंदो (**शुभदा**) ३२९, ३३०
विंदोकी माता (**शुभदा**) ३२९, ३३०
विजया (**दत्ता**) १४१-१५०
विधु (**बोझ**) ३१२
विभा (**नवविधान**) २१७-२१९, २२२-२३२
विमला (**दर्पचूर्ण**) ३१६, ३१७
विराज बहू (**विराज बहू**) ४२, ५०, ५५, ६१, ८१, ९१, २६३, ३०१, ३०५
विश्वेश्वरी (**ग्रामीण समाज**) ९२, ९५
वीणापाणि (**गृहदाह**) १५३, १६०, १६१, १६८
वृंदावनकी माँ (**पंडितजी**) ७६, ७७, ७९, ८२, ८३
व्रजेश्वरी (**पंडितजी**) ८३

[श]

शांति (**बड़ी बहिन**) २३
शिवचंद्रकी स्त्री (**बड़ी बहिन**) २३
शिवानी (**शेष प्रश्न**) देखो कमल
शुभदा (**शुभदा**) ३२९, ३३०
शैलजा (**निष्कृति**) ३२०, ३२१
षोड़शी (**लेन-देन**) १८३-१९४, २३५

[स]

संध्या (**ब्राह्मणकी बेटी**) १७१-१७६ १७८-१८०
सत्येन्द्रकी माँ (**अंधकारमें आलोक**) ३१८
सत्येन्द्रकी माँ (**बोझ**) ३१२
सती (**विप्रदास**) २८४-२८८, २९२, २९५-२९७
सरयू (**चंद्रनाथ**) २९-३४, ४८
सरोजिनी (**चरित्रहीन**) ५९, ६०, ७०, ७१, ७३-७४
सरला (**बोझ**) ३११
स्वर्णमंजरी (**अरक्षणीया**) १००-१०२, ३०७

सावित्री (चरित्रहीन) ५८-६०, ६९-७२, ७४, ७५, ३०४
सिद्धेश्वरी (निष्कृति) ३२०,३२१-
सुदरी (विराज बहू) ४९
सुनंदा (श्रीकांत) १०९, ११४, १२६
सुमित्रा (पथ के दावेदार) १९६, १९७, २०१, २०८-२१५, २३५
सुरबाला (चरित्रहीन) ५८-६१, ३०४, ६४, ६५, ७२-७५,
सुरमा (प्रकाश और छाया) ३१४, ३१५
सुरेशकी माँ (अनुपमा का प्रेम) ३१६
सुलोचना (चंद्रनाथ) ३३-३४
सुलोचना (पथ-निर्देश) ३१२, ३१३
सौदामनी (स्वामी) ३२१,३२२
सौदामिनीकी माँ (स्वामी) ३२२
सौदामिनीकी सास (स्वामी) ३२२

[ह]

हरकाली (चंद्रनाथ) ३१, ३२
हरिबाला (चंद्रनाथ) ३०,३१,३३
हरियाकी माँ (गृहदाह) १५ ३,१६८
हरिलक्ष्मी (हरिलक्ष्मी) ३२६, ३२७
हेम (पथ-निर्देश) ३१२, ३१३
हेम (लेन-देन) १८५, १८७, १९०, १९३
हेमकी माँ (लेन-देन) १८४,१६२, १६४
हेमनलिनी (विप्रदास) २८६, २९९
हेमांगिनी (मॅझली बहिन) ८२, ८४-९०, ३०५, ३०७, ३२३
हेमांगिनी (बैकुंठका दान-पत्र) ३१९

[क्ष]

क्षेन्ती (ग्रामीण समाज) ९६

[ज्ञ]

ज्ञानदा (अरक्षणीया) ९७-१०५,१३०
ज्ञानदा (ब्राह्मणकी बेटी) १६९, १७२, १७७, १८१

सुरुचिपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

दार्शनिक, आध्यात्मिक, धार्मिक

भारतीय विचारधारा	श्री मधुकर एम. ए.	२)
अध्यात्म-पदावली	श्री राजकुमार जैन एम. ए.	४।।)
कुन्दकुन्दाचार्यके तीन रत्न	श्री शोभाचन्द्र 'भारिल्ल'	२।
वैदिक-साहित्य	पं० रामगोविन्द त्रिवेदी	६)
जैन-शासन	पं० सुमेरचन्द्र दिवाकर	३)

उपन्यास, कहानियाँ

मुक्ति-दूत [उपन्यास]	श्री वीरेन्द्रकुमार जैन एम. ए.	५)
संघर्षके बाद	श्री विष्णु प्रभाकर	३)
गहरे पानी पैठ	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२।।)
आकाशके तारे : धरतीके फूल	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२)
पहला कहानीकार	श्री रावी	२।।)
खेल-खिलौने	श्री राजेन्द्र यादव	२)
अतीतके कंपन	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३)

उर्दू-शायरी

शेरो-शायरी	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८)
शेरो-सुखन [पाँचों भाग]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२०)

कविता

वर्द्धमान [महाकाव्य]	श्री अनूप शर्मा	६)
मिलन-यामिनी	श्री हरिवंशराय 'बच्चन'	४)
धूपके धान	श्री गिरिजाकुमार माथुर	३)
मेरे बापू	श्री हुकमचन्द्र 'बुखारिया'	२।।)
पंच-प्रदीप	श्रीमती शान्ति एम. ए.	२)
आधुनिक जैन-कवि	श्रीमती रमारानी जैन	३।।।)

संस्मरण-रेखाचित्र

हमारे आराध्य	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
संस्मरण	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
रेखा-चित्र	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	४)
जैन-जागरणके अग्रदूत	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५)

ऐतिहासिक

खण्डहरोंका वैभव	श्री मुनि कान्तिसागर	६)
खोजकी पगडण्डियाँ	श्री मुनि कान्तिसागर	४)
चौलुक्य कुमारपाल	श्री लक्ष्मीशंकर व्यास एम. ए.	४)
कालिदासका भारत [१]	श्री भगवतशरण उपाध्याय	४)
कालिदासका भारत [२]	श्री भगवतशरण उपाध्याय	४)
हिन्दी जैन-साहित्य का सं० इतिहास	श्री कामताप्रसाद जैन	२।।।=)

ज्योतिष

भारतीय ज्योतिष	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६)
केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	४)
करलक्खण [सामुद्रिक शास्त्र]	प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी	।।।)

विविध

द्विवेदी-पत्रावली	श्री बैजनाथसिंह विनोद	२।।)
जिन्दगी मुसकराई	श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	४)
रजतरश्मि [एकांकी नाटक]	डॉ० रामकुमार वर्मा	२।।)
ध्वनि और संगीत	प्रो० ललितकिशोरसिंह	४)
हिन्दू-विवाहमें कन्यादानका स्थान	श्री सम्पूर्णानन्दजी	१)
ज्ञानगंगा [सूक्तियाँ]	श्री नारायणप्रसाद जैन	६)
रेडियो-नाट्य-शिल्प	श्री सिद्धनाथकुमार एम. ए.	२।।)
शरत् के नारीपात्र [आलोचनात्मक]	प्रो० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४।।)

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस